RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

कहानी अंक

वर्ष : 5, अंक : 20
जनवरी-मार्च 2021
मूल्य 50 रुपये

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

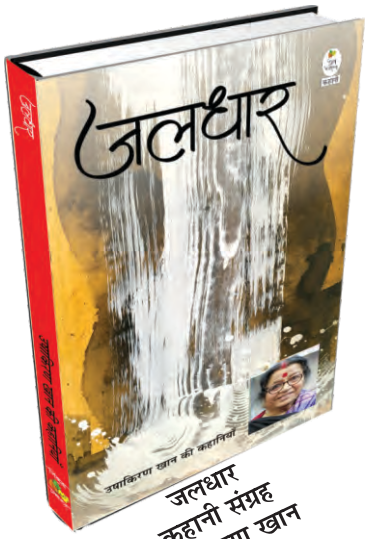

जलधार
कहानी संग्रह
उषाकिरण खान

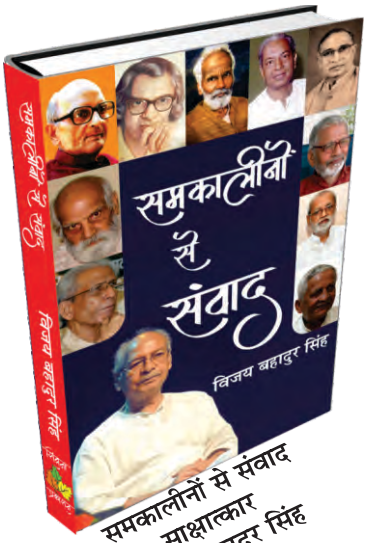

समकालीनों से संवाद
साक्षात्कार
विजय बहादुर सिंह

विमर्श दृष्टि - पंकज सुबीर की कहानियाँ (आलोचना)
डॉ. राकेश कुमार

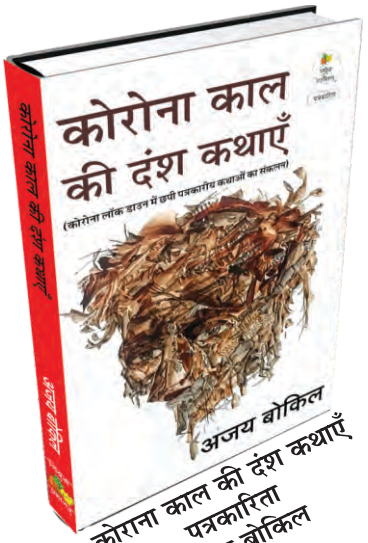

कोराना काल की दंश कथाएँ
पत्रकारिता
अजय बोकिल

भूरी आँखें घुँघराले बाल
कहानी संग्रह
अनुपमा तिवाड़ी

काग भुसण्ड
उपन्यास
राजीव तनेजा

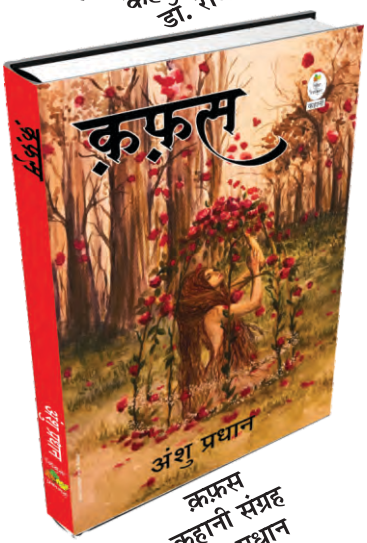

क़फ़स
कहानी संग्रह
अंशु प्रधान

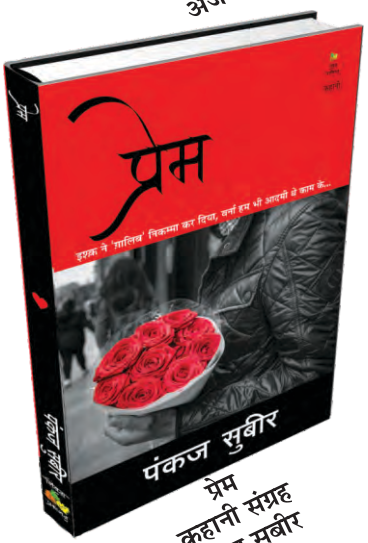

प्रेम
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

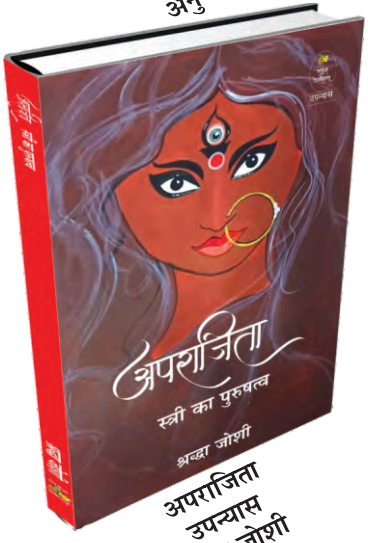

अपराजिता
उपन्यास
श्रद्धा जोशी

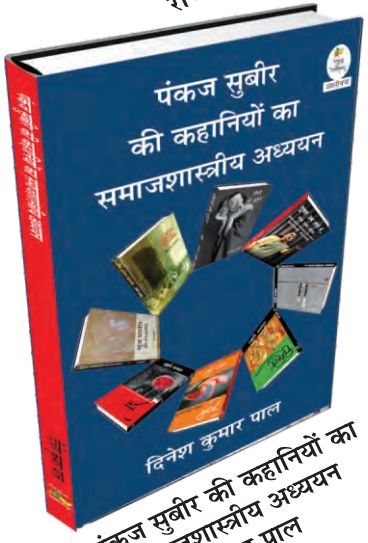

पंकज सुबीर की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
दिनेश पाल

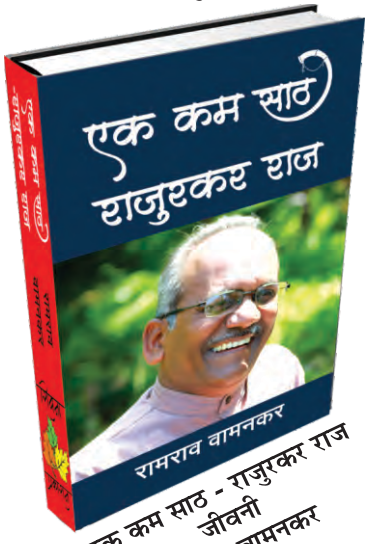

एक कम साठ - राजुरकर राज
जीवनी
रामराव वामनकर

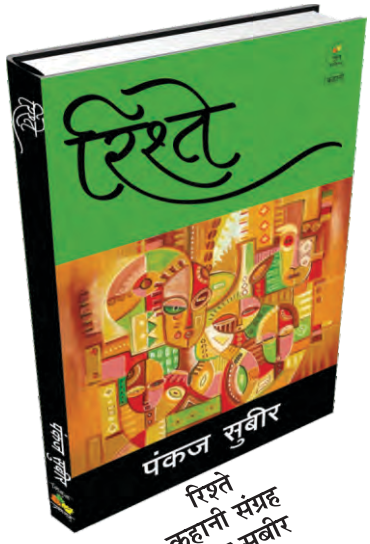

रिश्ते
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 20, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2021
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

आवरण चित्र
वेदांश मिश्रा

रेखाचित्र
रोहित प्रसाद

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 20,

त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2021

संपादकीय 3

कथा कहानी

जहाँ हवाओं की पीठ पर छाले हैं!!
अनघ शर्मा 5

सपने का वादा
पुष्पा सक्सेना 10

देहरी छुड़ाई
रमेश खत्री 16

अनकहा कुछ
अरुणा सब्बरवाल 21

मन का कोना
नीलिमा शर्मा 26

मुझे विपुला नहीं बनना
अभिज्ञात 32

महकती मुहब्बतों के मौसम
डॉ. गरिमा संजय दुबे 35

घायल पंखों की उड़ान
अर्चना मिश्र 38

चन्नर के बहाने से
विनय कुमार 42

यही ठीक होगा
डॉ. अनिता चौहान 46

फूलों के आलते में रेत की दीवार
डॉ. उपमा शर्मा 49

लघुकथाएँ

मधुर मिलन
डॉ. पुष्पलता 48

महिलाओं का जुगाड़
मीरा गोयल 51

इतिहास
डॉ. वीरेंद्र कुमार भारद्वाज 59

भाषांतर

कैडिटे मकल
(जंगल की बेटी)
मलयालम कहानी
डॉ. अम्बिकासुतन मंगाड
अनुवाद- डॉ. षीना ईप्पन 52

आलेख

रचना और आलोचना का आपसी रिश्ता
नंद भारद्वाज 54

हम शब्दों के ऋणी हैं
डॉ.शोभा जैन 71

व्यंग्य

एक भेंट मंत्री जी से
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल 56

कैसे हो - बढ़िया हूँ
अखतर अली 58

शहरों की रूह

कलकत्ता उर्फ़
कोलकाता
पल्लवी त्रिवेदी 60

शार्लोट
एक घरेलू मेट्रो सिटी
रेखा भाटिया 65

निबंध

आधी रात का चिंतन
डॉ. वंदना मुकेश 69

लिप्यांतरण

भूबल (उर्दू लघुकथा)
नीलम अहमद बशीर
लिप्यांतरण- डॉ. अफ़रोज़ ताज 73

कविताएँ

वसंत सकरगाए 74

श्रीविलास सिंह 75

नरेंद्र नागदेव 76

अनामिका अनु 77

नमिता गुप्ता "मनसी" 78

ग़ज़ल

दीपक शर्मा 'दीप' 79

आख़िरी पन्ना 80

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

संपादकीय

पूरे विश्व में चौथा ऑनलाइन रेवोल्यूशन आया है

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

वर्ष 2021 में पदार्पण कर चुके हैं। चुनौतियों से भरा वर्ष 2020 इतिहास बन कर विदा हो गया... वर्ष 1918 प्रथम विश्व युद्ध के अंत का समय ऐसा ही समय था, जो इतिहास में दर्ज है, जिस वर्ष विश्व में स्पैनिश फ़्लू फैला था। ठीक उसी तरह 2020 में पूरे विश्व में कोविड-19 फैला और इतिहास में दर्ज़ हो गया। 1918 में स्पैनिश फ़्लू प्रथम विश्व युद्ध के सैनिकों द्वारा फैला और 2020 में कोविड-19 ग्लोबलाइज़ेशन की देन है, चीन से शुरू हो कर पूरी दुनिया में फैल गया। 102 साल बाद इतिहास ने स्वयं को दोहराया है। पूरे विश्व की आज वैसी सी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ हो गई हैं, जैसी 1918 में थीं, जब स्पैनिश फ़्लू ने लोगों पर प्रहार किया था। 1918 का पूरा डेटा न होने से अंदाज़ा है पचास मिलियन से सौ मिलियन तक लोग मरे; जबकि आज की बनिस्बत तब जनसंख्या बहुत कम थी। मृत्युदर के आँकड़े वर्ष 2021 आने के बाद भी कम नहीं हुए। पूँजीवादी और विकसित देश अमेरिका में तो हर रोज़ मरने वालों की संख्या बढ़ रही है... हालाँकि अविकसित देशों ने स्थितियों पर बेहतर तरीके से काबू पा लिया है। 1918 में अमरीका की जो स्थिति थी, वही आज है। अमेरिका के इतिहास में स्पैनिश फ़्लू और कोविड-19 दोनों महामारियों का समय एक जैसे कारणों से याद रखा जाएगा। दोनों महामारियों में राजनेताओं ने लोगों के जीवन और उसके महत्त्व को नज़रअंदाज़ किया, महामारी से बचने के लिए सुरक्षा को लेकर लापरवाही का रवैया अपनाया, देश से ऊपर राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरक सोच के हावी होने की वजहें कभी भूली नहीं जाएँगी। इतिहास स्वयं को बार-बार इसलिए दोहराता है कि आने वाली पीढ़ियाँ उन ग़लतियों को समझें, उनसे सीखें और भविष्य में उन्हें दोहराएँ नहीं। लगता है इतिहास की ग़लतियों से किसी ने कुछ नहीं सीखा; जबकि इतिहास लिखा ही जाता है भविष्य सँवारने के लिए।

वैक्सीन के घर -घर पहुँचने और उसका असर देखने में ही 2021 के छह से नौ महीने तो लग जाएँगे। पूरे विश्व की परिस्थितियाँ तब तक कैसी होंगी, कुछ नहीं कहा जा सकता।

1918 की महामारी के बाद सेकंड इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन आया था। पूरी दुनिया के जो आज

संपादकीय

विकसित देश माने जाते हैं, उनके विकास में इस रेवोल्यूशन का अहम योगदान रहा है। 1950 में तीसरा डिजिटल रेवोल्यूशन आया था और अब कोविड ग्रस्त काल में ऐसा महसूस हो रहा है, पूरे विश्व में चौथा ऑनलाइन रेवोल्यूशन आया है।

1918 का इंडस्ट्रियल रेवोल्यूशन बहुत देर से अविकसित देशों में पहुँचा था। संपर्क साधनों की कमी थी; लेकिन अब पूरे विश्व बल्कि अविकसित देश ऑनलाइन रेवोल्यूशन से अधिक लाभान्वित हुए हैं, आगे और अधिक लाभ इन देशों को मिलेगा। हर देश के व्यापार, शिक्षा और आपसी संवाद को इस रेवोल्यूशन ने समृद्ध किया है।

वैसे तो 2020 में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के अनुभव हुए हैं। अनगिनत परिवारों ने अपने प्रिय जन खोए हैं। परिवार करीब भी बहुत आए हैं। पारिवारिक, सामाजिक और साहित्यिक मोर्चों पर लोगों की सोच में अंतर आया है। मानवता के दर्शन भी हुए और अमानवीय संवेदनाएँ भी देखने को मिलीं।

2020 में लॉक डाउन के दौरान रचा गया साहित्य 2021 में पढ़ने को मिलेगा। 2020 में कला और साहित्य के क्षेत्र में वर्चुअल संवादों की बाढ़ आई; जिसमें वे भी साहित्यकार कहलाए गए, जिनकी एक भी पुस्तक पाठकों ने नहीं पढ़ी।

साहित्य जगत् ने 2020 में अपने बहुत से उत्तम हीरे खो दिए। जिनकी क्षति पूर्ति कभी नहीं हो सकती। पर उनका रचा हमेशा हमारे दिलों में जीवित रहेगा।

उम्मीदों और आशाओं के साथ विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम 2021 का मंगलकामनाओं के साथ स्वागत करती है और दुआ माँगती है कि सभी स्वस्थ रहें और पूरे विश्व में शांति, सुख और समृद्धि फैले।

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

एक छोटे से घर में रहने वाली यह मधुमक्खियाँ हमें बताने का प्रयास करती हैं कि दुनिया इतनी भी छोटी नहीं है कि हम सब के रहने के लिए छोटी पड़े। लेकिन, यह दुनिया छोटी तो तब पड़ती है, जब हम सहकारिता को छोड़कर व्यक्तिगत होने लगते हैं। दुनिया हमारे लिए नहीं हमारे लालच के लिए छोटी है।

जहाँ हवाओं की पीठ पर छाले हैं!!

अनघ शर्मा

१ : उसके सामने जो दृश्य चल रहा था उसमें दूर तक दीवारों पर खून के छींटे बिखरे हुए थे और फ़र्श पर एक आदमी औंधे मुँह पड़ा था, जिसका चेहरा धीमे-धीमे कैमरे के फ़ोकस से ग़ायब हो रहा था। दृश्य देख कर उसे उल्टी सी आई, वह कुर्सी से उठा और सीधे सिनेमा हॉल से बाहर निकल आया। रात की हवा गरम थी और उसे उसमें समंदर का नमक घुला महसूस हो रहा था। चलते हुए उसने देखा की उसकी चप्पल अँगूठे के पास से टूट गई है, उसने चप्पलें उतार कर हाथ में उठा लीं और आगे बढ़ गया। अचानक उसे कुछ याद आया, वह रुका, कमीज़ की ऊपरी जेब टटोली और एक प्लास्टिक का कार्ड निकाल कर देखा। ये कार्ड उसका इस नए देश में रहने का परमिट था। चलते-चलते वह समंदर के पानी तक आ पहुँचा था, उसके पैर के पास से एक केंकड़ा रेंगता हुआ गुज़रा तो वह पीछे खिसक रेत पर वापस आ गया। वह वहीं किनारे पर रेत में लेट गया और चप्पलें सिर के नीचे लगा लीं। दूसरे किनारे से उठती हुई आवाज़ें उसके पास तक आते-आते एक अजब तरह के सुर में ढल गई थीं; इन आवाज़ों ने उसके सामने एक नया दृश्य खड़ा कर दिया।

इस बदले हुए दृश्य में न खुल कर फैला हुआ समन्दर था, न रात और न ही रेत थी। इस दृश्य में अब बीहड़ में खड़ी एक इमारत थी, जिसकी चारदीवारी में बंद छोटे आँगन में एक जंगली पेड़ के नीचे कुछ बच्चों के सिर में तेल मलती औरतों की छाया दिखती थी। उसकी बंद आँखों में पुतलियाँ कसमसाईं और उन्होंने इस दृश्य को कुछ कस के पकड़े रहने की कोशिश की। कोई उसे दूर से देखता तो ऐसे महसूस होता कि वह नींद में छटपटा रहा हो; पर वह नींद में देख रहा था कि कुछ बच्चे बरसात में उस जंगली पेड़ की डाली पकड़ कर खेल रहे हैं जिनके पास एक औरत खड़ी है। वह उस औरत का चेहरा नहीं देख पाता, उसे बस एक साड़ी दिखती है जिसकी किनारी का रंग नारंगी से उतर के पीले गुलाबी में बदल गया था और जिस पर बरसात के पानी की छींट पड़ी हुई है। उसने करवट बदली, उसे महसूस हुआ जैसे कि वह औरत उसके सिरहाने खड़े हो कर कुछ गुनगुना रही हो। वह चाहता था कि आँखें खोल कर उसके चेहरे को देख ले पर उसके कान उस आती आवाज़ पर ठिठक गए।

"हम गवनवा न जइबे हो झूलनी बिना.....
अमुआ की डारी पड़ रहीं बुन्दियाँ, अचरा से उलझे लहरिया
लहरिया हो झूलनी बिना....."

वह कुछ देर वैसे ही लेटा रहा और जब पसीने से पीठ भीगने लगी तो उठ कर बैठ गया। उसने कलाई पर बँधी घड़ी पर नज़र डाली, रात के धुँधले उजाले में उसने देखा की सवा बजा है। वह खड़ा हुआ और चप्पलें पहन लीं। उसके साथ कोई और भी उठ कर खड़ा हुआ, शायद एक छोटा बच्चा, शायद एक नहीं उम्र के अलग-अलग पड़ाव पर कई और बदलते चेहरे भी उस बच्चे के साथ उठ खड़े हुए। उसने पलट कर उन्हें एक मुस्कान दी और आगे बढ़ गया। उसने एक नज़र अपने हाथों पर डाली, जाने किस अजब सी बीमारी के चलते उसकी दोनों बाहें सूखती जा रहीं थीं। उसके चेहरे पर कुछ देर पहले आई मुस्कान अब ग़ायब हो गई थी। वह मन ही मन यह मान चुका था कि यह संसार बहुत नीचा, छिछला, बेहूदा है और इसी नीचे गिरे हुए, छिछले, बेहद बेहूदे संसार में उसे किसी बहुत ख़ास के लिए पारस पत्थर ढूँढ़ना जिस से वह उसके सभी दुखों को सुख में बदल सके; पर इस खोज में उसे अभी न जाने कितना लोहा पलटना है वह नहीं जनता।

अनघ शर्मा
द्वारा सुधांशु शर्मा, पी - 48 बी, संजय नगर, सेक्टर 23, ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201002
मोबाइल - 9311178837, 8377003833
ईमेल- anaghsharma@hotmail.com

चलते-चलते उसने अपनी दोनों बाहें मोड़ कर सीने से लगा लीं। बहुत छुटपन से बल्कि बचपन के शुरू होने से पहले ही उसमें यह आदत घर कर गई थी कि डरने पर, घबराने पर, बेचैन होने पर उसके हाथ ख़ुद-ब-ख़ुद छाती से जा लगते थे और अब उसके हाथ अक्सर ऐसे ही रहते हैं। वह अब सड़क पर आ गया था, शहर इतनी रात बीतने के बाद भी पूरी तरह सोया नहीं था, सड़क पर ट्रैफिक बदस्तूर जारी था। उसने साथ खड़े बच्चे का हाथ थाम लिया ताकि सड़क संभल कर पार की जा सके।

"माँ से मिले? बच्चे ने पूछा।

बच्चे की बात सुन वह कुछ बोला नहीं पर उसकी आँखें भर आईं, इस चक्कर में वह सड़क को ठीक से देख नहीं पाया और सामने से आती हुई एक कार उसके हाथ से टकराती हुई गुज़र गई, ड्राइवर ने बंद काँच के पीछे से कुछ कहा जिसे वह सुन नहीं सका। उसने घूम कर देखा उसकी हथेली की पकड़ से निकल बच्चा हवा में गुम हो चुका था और अब उसके साथ एक तेरह-चौदह साल का लड़का था, जिसने बच्चे की तरह उससे कोई सवाल नहीं किया बल्कि बिना उसकी तरफ़ देखे कहना शुरू कर दिया।

"हम और तुम किन-किन हंगामों के बीच अपने-अपने खाने में ग़लत चाल चल के नक्शे से बाहर पटक दिये गए हैं। अब ऐसी अजब सी जगह हैं जहाँ से लौटने के लिए किस तरफ़ पाँव उठाना होगा यह भी नहीं मालूम। हम तो यह भी नहीं जानते कि चलने-रुकने के बीच इस जगह खड़े हो कर हम किसका इंतज़ार कर रहे हैं।"

"पर क्या अतीत में डूब कर साँस भरना आसान है कहीं?" उसने लड़के से पलट कर पूछा।

"तुम्हारा कमरा आ गया है।" लड़के ने उसकी बात का उत्तर न दे कर कहा।

उसने कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए देखा कि वह बच्चा और लड़का अब साथ हैं और बिना उसकी तरफ़ देखे वापस लौट रहे हैं। वह कमरे में आया, पसीने से भीगी कमीज़ उतारी, पंखा चलाया और अटैची में रखी एक छोटी थैली निकाली जिसमें एक नाक की लौंग थी जिस पर एक लाल मोती जड़ा हुआ था। वह जा कर बिस्तर पर लेट गया और देर तक उस लाल मोती पर हाथ फिराता रहा। उसके सरहाने एक आवाज़ आ कर बैठ गई थी। वह उस आवाज़ में डूबता-उबरता सो गया।

'हम गवनवा न जइबे हो नथुनी बिना.....

चाँदी की नथुनी और वा में लाल मोती, हमने देखि एक नार पहने नथुनी

नार हो नथुनी बिना.....

२ : उसके जीवन में दृश्यों की आवाज़ाही इतनी बेढंगी थी कि वह कभी भी उन्हें एक सीध में रख के नहीं देख पाया। उसका पहला दृश्य ही ग़लत उम्र में उभरा था, यह वह दृश्य था जिसे दूसरे दृश्य के बाद उसके सामने आना चाहिए था; इस एक गड़बड़ ने जीवन भर उसके दृश्यों का तारतम्य बिगाड़ कर रख दिया। उसकी याद में पहला दृश्य तब उभरता है जब वह कोई साढ़े सात या आठ साल का रहा होगा।

पहले दृश्य के बाबत उसे इतना ही याद है कि एक दुपहर वह नानी से चिपका हुआ सो रहा था, लू की गर्मी दरवाज़े, खिड़कियों की झिर्रियों से रगड़ खाती कमरे में आ रही थी और कमरे को गरम बना रही थी। जब वह उठा तो दिन ढल चुका था पर नानी उसके पास नहीं थीं। वह कमरे से निकल सड़क की तरफ़ बाहर आ गया। वह कितनी देर यूँ ही बैठा रहा तब उसने दूर से नानी को आते देखा। जाने ऐसा क्या था कि उसे नानी की चाल में लड़खड़ाहट दिखी, उनके चेहरे में कुछ ही घंटों में अजीब सा एक बदलाव आ गया था, जिसे वह पहचान ही नहीं पा रहा था। नानी के साथ पीछे-पीछे सुजीत भाई सा भी आ रहे थे। वे लोग सुजीत भाई सा के घर ही में किराए पर रहते थे।

"ये लो सुजीत पकड़ो इन्हें और तुम्हारी जेब से जितना पैसा लगा आज उसका हिसाब मान लो बेटा, कोई कमी-बेसी रही हो तो देख लेना।" नानी घर में घुसीं और अपने हाथ में पकड़ी दो पतली चूड़ियाँ सुजीत भाई सा के हाथ में पकड़ा दीं। यहीं पहली बार उसने इन चूड़ियों के साथ उस नाक की लोंग की झलक देखी थी, जिस पर लाल मोती जड़ा हुआ था। वह लपक कर नानी की तरफ़ बढ़ा तो उन्होंने उसे धीमी आवाज़ में झिड़क दिया।

'न छूना नहीं अभी, पहले नहा लेने दो हमें।' उससे यह कह, वह आँगन में खड़ी सुजीत भाई सा की पत्नी से बोलीं-

"मीना सूतक लगे हैं तुम शुद्धि तक इसके खाने का इंतज़ाम अपने चौके से देख लेना।" इतना कह कर वह गुसलखाने में घुस गईं।

सूतक और शुद्धि उस दिन पहली बार सुने ये शब्द आज तक उसके ज़हन में चिपके हैं और जब चाहें उसके सामने आ जाते हैं। उस एक दिन के बाद वह आज तक कभी खुश नहीं रहा। क्या था उस दिन नानी की आवाज़ में जिसे सुन कर उसके अन्दर की ज़मीन सूख गई थी।

दूसरा दृश्य उसके जीवन में तब उभर के आता है जब वह कोई ग्यारह साल का रहा होगा। इस दृश्य में वह नानी के पास लेटा हुआ है और नानी उसके सिर में तेल लगा रही हैं, नज़दीक ही एक बोरी पर धूप दिखाने के लिए गेहूँ रखे थे जिनकी गंध वहाँ तक तैरती आ रही थी।

"मेरा जन्म कहाँ हुआ था नानी?"

"हैं....." इस प्रश्न पर वह कुछ चौंकी, फिर तुरंत ही सँभल गईं।

"मैं कहाँ पैदा हुआ था नानी?" उसने दुबारा पूछा।

"जेल में।" वह उसके सिर में तेल मलते हुए बोलीं।

इस जवाब से उसके दिल में कुछ दरक गया। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और करवट ले कर सिर नानी की गोद में छुपा लिया। इन आँखों में इस बार उसे चारदीवारी में बंद आँगन में कपड़े धोती औरत दिखी जिसके नज़दीक एक चार साल के आस-पास का बच्चा बैठा हुआ था। वह उस कपड़े धोती हुई औरत का चेहरा नहीं देख पाता,पर उसे महसूस होता है कि वह औरत बीच-बीच में उस बच्चे के सिर पर हाथ फेरती जाती है और हमेशा की तरह एक गीत भी गा रही है जिसकी धुन पर वह बच्चा अपना सर हिला रहा है।

'हम गवनवा न जइबे हो होरी खेले बिना.....

छींट की सारी और रंग-पिचकारी, हमने देखि लाल सांझ फागुन की

फागुन हो होरी खेले बिना.....

हम गवनवा न जइबे हो बिछिया बिना.....

सावन में घुल रही लाल-लाल महावर, महावर में चमके हो गोरी अँगुरिया

अँगुरिया हो बिछिया बिना....."

वह कई दिन इस कशमकश में डूबा रहा कि नानी से कैसे पूछे की उसकी माँ ने ऐसा क्या किया था जो वह जेल गईं। फिर एक दिन उसने पूछ ही लिया।

"माँ को जेल क्यूँ हुई थी नानी?"

.....

उसके तीसरे दृश्य में बड़ा घालमेल है। इस दृश्य के उसके जीवन में आने के बाद उसका थोड़ा-बहुत बचा हुआ संतुलन भी ख़त्म हो गया था। अब वह जहाँ पाँव रखता था वहाँ कीचड़ निकल आती थी, और उसे जहाँ कीचड़ नज़र आती बाद में पता चलता कि वह जगह तो ख़ासी सूखी और ठोस थी, जिस पर वह आसानी से अपना घर खड़ा कर सकता था। यह जो दृश्य था, यह उसने देखा नहीं था यह उसे दिखाया गया था। नानी कहती जा रहीं थीं और वह देखता जा रहा था।

"यमुना के चौड़े पाट से तीन हाथ घूम कर, रेत का टीला पार करते ही सामने बड़े अहाते में मुरैना वाले नाथ साब और लाला साब का मकान था। मकान कुछ-कुछ मझोले आकार की हवेली जैसा ही था। इन्हीं नाथ साब और लाला साब के पिता कारेलाल कोई सालों पहले मुरैना से अपनी गज़क की दो रेहडियाँ, कुछ इमरतबान ले कर आगरे आये थे। कारेलाल जब मुरैना से आगरे आये थे तो उनकी पत्नी की गोद में तीन साल के नाथ साब थे और इसके तेईस साल बाद कारेलाल के दूसरे बेटे लाला साब हुए। लाला जब पैदा हुए तब तक नाथ ख़ुद बाल-बच्चे वाले थे, एक दो साल का लड़का भी था पुष्पेन्द्र। इसी पुष्पेन्द्र के लिए तेरी माँ का रिश्ता गया था। बात चली, पत्री मिली, लगुन-टीका भी तय ही था कि नाथ साब बोले चाचा के होते भतीजे की शादी पहले कैसे हो सकती है। कायदे से तो पुष्पेन्द्र का ही बियाह पहले होना चाहिए था, वह लाला से दो साल बड़ा था। नाथ साब के ही ज़ोर डालने पर सुमन की कुंडली लाला साब से मिलवाई; और देखो नासपीटी की कुंडली मिल भी गई। कोई ज़रा भी कमी-बेसी होती, तो तेरे नाना फट से इस रिश्ते से पीछे हट जाते। पर होनी जो चाहे।" नानी ने उसे क़िस्सा सुनाते हुआ कहा।

"फिर क्या हुआ? उसने पूछा।

"फिर जो हुआ? उसके बाद कुछ होने की गुंजाइश ही नहीं रही। सवा साल ही हुआ था शादी को कि एक दिन लाला ने पुष्पेन्द्र की हत्या कर सब ठीकरा सुमन के ऊपर फोड़ दिया। कहते हैं कि जब पुलिस आई तब सुमन पुष्पेन्द्र के कमरे में ही थी। साड़ी खून में सनी हुई थी और वह वहीं पलंग से टिकी खड़ी थी। लाला साब ने बयान दिया कि सुमन का रिश्ता पहले पुष्पेन्द्र के लिए आया था पर शादी लाला साब से होने के बाद भी इन दोनों में कोई संबंध बना रहा और फिर प्रमाण तो ज़ाहिर है सब पर। हम लोग कुछ कर ही नहीं पाए उस के लिए। छपैटी वाला घर भी बिका पर कुछ काम नहीं बना; फिर तेरे नाना के जाने के बाद इस किराये के घर में आना पड़ा।"

उसे लगा कि जैसे ये सब कहते-कहते नानी की आवाज़ भर्रा सी गई है।

३ : सुजीत भाई सा ने उसे यहाँ आने से पहले एक कमीज़, एक जीन्स, एक नाइट सूट और एक जोड़ी चमड़े की चप्पल अपनी तरफ़ से दिला दी थीं। वह मना करता रहा पर वह नहीं माने, कहने लगे कि..... 'दूसरे देश जा रहे हो तो एक-दो जोड़ी अच्छा, नया कपड़ा होना चाहिए साथ में, जाते ही जाते पहले दिन काम पर पुराने कपड़े पहन कर जाओगे क्या।'

वह खाड़ी के इस देश में एजेंट को पैसे दे कर उसकी मार्फ़त आया था। कुछ पैसा नानी ने चाँदी, छल्ला बेच के, गिरवी रखकर इकट्ठा किया, कुछ सुजीत भाई सा ने उधार दिया था और बाकी बचे पैसे के लिए तय हुआ था कि वह वहाँ जा कर जो भी कमायेगा, बचायेगा उसमें से पहले एजेंट का बकाया चुकाया जाएगा।

चलते वक़्त नानी ने उसके हाथ में एक पीली थैली थमा दी। उन दिनों ऐसी थैली छोटे सुनारों के यहाँ ही मिलती थी। उसने थैली को अटैची में कपड़ों के नीचे रख दिया। वह जानता था कि इसमें ऐसा कुछ है जिसे नानी नहीं चाहतीं कि वह उनके सामने खोल कर देखे। यहाँ पहुँचने पर उसने सबसे पहले इसी थैली को खोल कर देखा था। इसमें वही नाक की लौंग थी।

उसकी नींद में आजकल एक अजब सी छटपटाहट घर कर गई है। वह आँखें बंद करता है और खुद को एक बड़े हॉल में खड़ा पाता है। इस बड़े कमरे में एक तरफ़ औरतों का प्रार्थना घर है पर वह इसे देखने से चूक जाता है। उसको आँखों के सामने औरतों का एक झुण्ड नज़र आता है; दूर तक फैली हुई साड़ियों पर फॉल टाँकती औरतें हैं वहाँ पर वह जिन्हें ढूँढ़ रहा है वह उसे कहीं नज़र नहीं आतीं।

वह देर तक करवट बदलता रहा और फिर उठ कर घर के बाहर निकल गया। सड़क के किनारे-किनारे चलता हुआ वह गोल पहाड़ी के उस हिस्से पर जा पहुँचा, जहाँ सीधी खड़ी चट्टान थी और जिसे देखने रोज़ कई सैलानी आया करते थे।

घाटी के सीने के ठीक ऊपर सीधी खड़ी चट्टान के एक कोने से खड़े हो कर उसने नीचे झाँका..... आँख में देर तक तैरता हुआ पानी का एक कतरा कोने तक आया, इकठ्ठा हो कर एक बूँद में बदल छलछलाने को बैचैन होने लगा। उसने हथेली फैला कर उस बूँद को थाम लिया। नीचे घाटी में देख सोचना शुरू कर दिया।

जैसे मिट्टी में उग आते हैं खरपतवार
जैसे जल में उगता है जीवन
जैसे उग आती है छाया में धूप
जैसे दुःख में भीतर उग जाता है मन
जैसे घाटी में उठ खड़ा होता है पहाड़
वैसे ही आँख में फिरता है पानी.....

इसके बाद उसके सोचने का क्रम बिगड़

जाता है और मन में चल रही अजब सी खाम-ख़्याली रुक जाती है और हमेशा से अन्दर गूँजती हुई धुन उसके कानों के नज़दीक आ कर गुनगुनाने लगती है।

'हम गवनवा न जइबे हो हँसुली बिना.....

हमने हेरी चंदा की दो-दो रतियाँ, हमने देखि एक जागी-जागी चकोरिया

चकोरिया हो हँसुली बिना.....'

उसने सोचा कि क्या होता अगर वह उस आँसू को फिसलने देता। क्या गिरते हुए वह किसी पत्थर से टकरा जाता या सब से बचते-बचाते दूर कोने की घास में डूब जज़्ब हो जाता। इधर-उधर देख उसने उड़ती हुई बौराई सी हवा के कान में फुसफुसा के कहा कि आँख से उतरा सबसे पहला आँसू का क़तरा यकीन का और उसके बाद का पूरा दरिया गैरयकीनी का होता है; पर अच्छा तैराक तैरने की तैयारी के बजाय पहले ही क़तरे को हथेली में थाम लेता है.....यह क़तरा ही मोती है जिसे थामने की कोशिश में उम्र अपनी ज़द्दोजहद की चारदीवारी में घूमती रहती है।

हवा ने ठिठक के पहले उसे देखा फिर बीमारी से कमज़ोर हुए उसके हाथों को, और बिन पूछे ही मानों उससे पूछा लिया कि-

"तुमने आँसू के किस कतरे को, किस हथेली में थामा था?"

इस बात पर उसने चौंक कर अपने बाज़ुओं को देखा जो कि बार-बार खाँसने ने लरज़ जाते थे।

उसने देखा हवा की गोल कलाई पर जो हड्डी है, उसके कोने पर समूचा रेगिस्तान रेत के एक कन में छुपा बैठा है। उसने हवा की कलाई को बड़े एहतियात से थामा कि ज़रा सी धमक से, ज़रा सी जुम्बिश से वह रेगिस्तान कहीं दरक के बिखर न जाए। उसने कलाई को पकड़े- पकड़े कहना शुरू कर दिया.....

"क्या तुमको पता है कि बाज़ू और पाँव दोनों एक सी बनावट वाली सीढ़ियाँ है बस इनके क्रम अलग-अलग हैं। अक्सर ये सीढ़ियाँ चप्पू की तरह काम करती हैं, जो धारा के साथ चलो तो बाज़ू दुख जाते हैं और उलट चलो तो पाँव। जानते तो हम सभी हैं कि सफ़र के शुरू होने से ख़त्म तक की दोनों ही सूरतों में ये सीढ़ियाँ घिस कर ग़ायब हो जाएँगी। छोटे पत्थर तो नदी के पानी में बह कर एक जगह से दूसरी जगह पहुँच ही जाते हैं, पर बड़ी चट्टानों का क्या? वो हर दम पानी की चोट से रेशा-रेशा घुल कर पानी का नमक तो बढ़ा देती है पर ख़ुद अपने आप से हाथ धो बैठती हैं। मुझे लगता है कि कभी मैं घर से निकलूँ और किसी को तलाशूँ या किसी राह चलते अजनबी को एकदम ही चौंका कर कहूँ कि तुम्हारी ज़िंदगी तभी भली है जब तुम ख़ुद को बड़ी चट्टान बनने से रोक सको।

हवा ने उसे देखा, धीरे से उसके हाथ से अपनी कलाई निकाली और कहा.....

"बावरे हो क्या? हर रोज़ किसी अजनबी को ढूँढ़ना सही नहीं। जी के क़िस्से जाने-परखे लोगों पर ही खोलने चाहिए, राह चलतों को क्या बयान देना।"

हवा की कलाई से दरक के रेगिस्तान उसके पैरों के नीचे आ लगा, जिसमें वह अब धीमे-धीमे धँसता जा रहा था। हवा टूट कर घाटी में किस पत्थर की ओट में जा गिरी वह देख नहीं पाया।

वह जब तक उसे ढूँढ़ पाता तब तक किसी दूसरे हवा के झोंके ने आ उसके कानों में फुसफुसा के कुछ कहा जिसे वह सुन नहीं पाया.....

४ : अठारह की उम्र तक आते-आते उसके अन्दर बेचैनी और रोष साफ़ दिखने लगे था। वह बात-बेबात लोगों से लड़-भिड़ जाता था, कहीं कुछ बस नहीं चलता, तो घर का ही सामन तोड़ने लग जाता। उसे ऐसा लगने लगा था कि उसके सामने सब कुछ दो हिस्सों में बँटा हुआ है और इस बँटवारे में एक तरफ़ उसकी कमज़ात, कीच भरी नाली सी बजबजाती आवारा भटकती हुई ज़िंदगी थी और दूसरी तरफ़ लाला साब के शीशे से साफ़ महल, मकान थे। ऐसे ही कभी-कभी वह सपने में अपने पैरों को कीचड़ में सना पाता और देखता कि उसके हाथ दूसरी तरफ़ एक कोठी की ओर बढ़े जा रहे हैं। वह चाहता है कि आगे बढ़ कर इस कोठी को छू कर देखे पर उसके पैर जड़ हो जाते हैं। उसे महसूस होता है कि देखते ही देखते किसी अँधेरे कोने से निकल कर कई सारे राज-मिस्त्री अपने हाथों में बेलचे, कुदालें, कन्नियाँ, फावड़े, ले कर उसके सामने आन की आन उस कोठी को दो फाड़ कर देते हैं। उसे नज़र आता है कि उस मलबे पर खड़े हो कर जैसे उसकी तरफ़ देख लाला साब हँस रहे हों। उसके कानों में जाने किन की बे-चेहरा आवाज़ें गूँज जाती हैं.....

"सही खेल गए लाला।"

"भतीजा तो मारा ही और बीबी भी किनारे लगाई।"

"अब अपने मन माफ़िक की लाएगा कोई।"

"पसंद से तो यह वाली शादी भी की थी।"

"बीबी के कुछ दिन चढ़े हैं क्या।"

"शायद चौथा या पाँचवा।"

"इनका है या पुष्पेन्द्र का?"

"कौन जाने।"

"च्च्च्च्च्"

"सही खेल गया सच में।"

वह इन आवाज़ों से डर के वहाँ से दौड़ कर हटना चाहता है पर उसके पैर कीचड़ में फँस कर रह जाते हैं और लाला साब उसे ऐसा छटपटाते देख कर हँसते रहते हैं।

.....

सुजीत भाई सा ने ही उसे एक दिन ले कर बृजेश की दुकान पर खड़ा कर दिया और कहने लगे की वह यहाँ प्लम्बरी का काम सीखे और बाद में कुछ पैसे जोड़ कर चाहे तो अपना ख़ुद का काम डाल ले या यहीं काम करता रहे। वह कुछ महीनों तो उनके कहे के हिसाब से काम करता रहा। पहले वह नानी को रामस्वरूप की नमकीन बनाने की दुकान पर छोड़ता जहाँ वह नमकीन, चना-ज़ोर-गरम और मठरी-समोसे बनाने का काम किया करती थीं, उसके बाद वह अपनी दुकान पर आया करता था। फिर धीमे-धीमे वह दुकान से ग़ायब रहने लगा, कोई जान पाता कि वह काम पर नहीं जा रहा उससे पहले ही वह एक दिन घबराया हुआ आया और सुजीत भाई सा के पैरों से लग गया। उसकी आँखों से आँसू

बहे जा रहे थे।

"क्या हुआ?" भाई सा ने घबरा के पूछा।

"मैंने शायद उन्हें मार दिया?"

"किन्हें?"

"मुरैना वाले लाला साब को?"

"क्या किया?"

"मैं कई दिन से आगरे जा उन पर नज़र रखे हुए था। आज कोई साथ नहीं था उनके, तो मौका देख उनके ऊपर अद्धे से चोट कर आया।

"तुम घर जाओ मैं पता करके आता हूँ।"

भाई सा ने उससे इतना ही कहा और बाहर निकल, दुकान बंद कर सीधे बस-अड्डे की राह ली। अगली सुबह जब तक वह लौटे नहीं उसे धक्-धक् ही होती रही कि क्या पता किसी ने उसे हमला करते देख लिया हो। क्या पता उसकी बस के पीछे पुलिस लग गई हो और अब उस तक पहुँचने वाली हो।

सुजीत भाई सा घर पहुँच कर सीधे नानी से मिले और उन्हें सारा वाक़या बता दिया। उन्होंने नानी को यह भी बताया की लाला साब ठीक हैं और उन्हें कुछ नहीं हुआ बस ईंट की चोट से ज़रा सिर खुल गया था तो कोई पाँच-छह टाँके लगे हैं।

फिर उसी दिन यह तय हुआ था कि उसे जैसे भी हो वहाँ से बाहर निकालना है, वरना कल को जाने क्या हो जाए।

.....

वह घाटी के सिर ऊपर अभी भी वैसे ही खोया सा खड़ा हुआ था कि हवा के दूसरे झोंके ने उसके कान में एक बार और फुसफुसा कर ग़ायब होने से पहले कहा

"हवाओं को आख़िर एक दिन बड़ी चट्टानों में बदलना ही पड़ता है; भले ही यह भली बात नहीं।"

उसके पैरों से लिपटा हुआ रेगिस्तान अब सिमट कर चट्टान के पास बैठा था और उसी से कन्धा टिकाये ख़ामोशी भी वहीं थी। उसने देखा की ख़ामोशी के बालों में रेत के जुगनू झिलमिला रहे हैं। उसने अपनी आँखें बंद कर सिर झुका लिया। सिर के बोझ से झुकते-झुकते गर्दन अब ऐसी जगह आ कर थम गई थी जहाँ से वह बंद आँखें लिए भी अपने दिल में झाँक सकता था। उसने देखा कि उसका दिल एक दम खाली है..... जैसे एक बड़े कमरे में निर्वात आ कर पसर जाए, एक ख़ला कहीं से उठ कर आये और चुपचाप मुफ़ीद जगह पा कर अपना डेरा डाल ले।

दिल की गहराइयों से पार उतर कर उसने स्मृति की एक बंद गली में घुसना चाहा, पर इस गली में आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं था। उसने खुद को बहुत टटोल के देखा तो यह पाया कि उसकी स्मृति बस किसी गंध और टूटे-टूटे चित्रों के सहारे इस जगह ठिठकी खड़ी है; यूँ भी बचपन से उसे बहुत लंबे समय तक कुछ याद नहीं रहता था। घड़ी भर को किसी अज़ाब की तरह याद सिर पर आती और फिर पल भर ही में बरसात के पानी की तरह उतर के ज़मीन में समा जाती।

उसके नथुने फड़फड़ाए और साँस ने जाने कितने सालों पीछे की तेल में भुनती सूखी लाल मिर्च की धसक खींच के गले से नीचे उतार ली। खाँसी का एक हल्का सा दौरा उठा और फिर साँस खुद ही सम पर आ गई। उसकी आँखें अभी भी बंद थीं और उन बंद आँखों में से एक में अल्युमिनियम की बड़ी-बड़ी देगों में उबलता हुआ काला चना था, तो दूसरी में तेल के बड़े कढ़ाहे में वही चने तले जा रहे थे। अब उसकी आँख में एक पतले चबूतरे के साथ जुड़ा एक छोटा कमरा तैर गया जिसके एक कोने में एक गड्ढा था। उसने देखा कि एक कमर झुकी आकृति वहाँ बैठ कर उस गड्ढे में उन चनों को डाल कर कूट रही थी, तभी किसी खोह से निकल कर एक हाथ बढ़ कर आया और उसे झकझोर गया। दृश्य उसकी आँख में मिट चुका था पर अब भी उसने अपनी बंद पलकें नहीं खोली थीं। उसे लगा की उसके एक कंधे पर हल्का सा दबाब पड़ रहा है, उसने आँखें खोल, गर्दन घुमा के देखा और कंधे पर चोंच मारते परिंदे को हाथ से झटक कर उड़ा दिया। परिंदा हवा में फड़फड़ाया और फिर उसके नज़दीक आ कर रुक गया। सहमे हुए परिंदे ने हिम्मत कर उसकी उठी हुई हथेली पर अपने पाँव टिका लिए और उसकी तरफ़ देख कर कहना शुरू कर दिया.....

"तुम बहुत भावुक हो..... और बहुत भावुक लोगों से मिल कर आपको ऐसा लगेगा जैसे आपके अंदर का पानी कहीं सूख के ग़ायब हो गया है। इन के मन दरारों से इतने पटे होते हैं कि कभी भी कुछ सहेज नहीं पाते। हर भावना, हर इच्छा, हर उत्कंठा आँखों से बह जाती है। भावुक लोग रेगिस्तान जैसे होते हैं जिन के मन में सदा रेत और धूल के बवंडर मँडराते रहते हैं। किसी सूखे पेड़ को सींचने के लिए बहुत पानी लगता है, पलकों से झरती हुई बूँदें अक्सर इतनी खारी होती हैं कि आप उनसे किसी ठूँठ की प्यास बुझा नहीं सकते। ठूँठ तो बहुत दूर की चीज़ है, आपकी खुद की इतनी-इतनी गीली आँखें आपको नमी और ठंडक नहीं दे के जातीं बल्कि उल्टे जलन और किसी आँख की दवा की दरकार दिए जाती हैं। सूखे पेड़ों से उड़ कर परिंदे बस पिंजरे में जा कर ही टिकते हैं।

उसने आँखें बंद कीं और सोचा कि उसे ख़ुद को ठूँठ होने से बचाना है। आँख की नमी को अच्छे कारण के लिए बचा कर रखना है, जीवन के दृश्यों का तारतम्य फिर बैठाना है। उसने तय किया कि वह काम करेगा, पैसे जोड़ेगा और सब लेन-देन चुका कर सुजीत भाई सा के हाथ में बचा हुआ पैसा रख कर कहेगा कि मीना भाभी के हाथ में माँ की जो दो चूड़ियाँ पड़ी हैं वह उसे दे दी जाएँ। वह उन्हें नानी को पहना देगा और फिर उन्हें नानी की कलाइयों में देखेगा तो महसूस करेगा कि वे मानों माँ के ही हाथ हों।

वह उठा खड़ा हुआ पैंट से रेत झाड़ी और कमरे की तरफ़ चल दिया। उसकी उँगली पकड़े हुए उसके संग वही छोटा बच्चा चल रहा था जिसे एक दिन नानी जेल से अपने साथ ले आकर आईं थीं। उसके भीतर से निकल वो गीत भी इन दोनों के संग कदम ताल करता हुआ चले जा रहा था।

"हम गवनवा न जइबे हो कंगनवा बिना.....

जैसे टिकुली सा चमके गोरा-गोरा चंदा,
गोरी की यूँ चमके गोरी रे कलाई

कलाई हो कंगनवा बिना....."

000

सपने का वादा

पुष्पा सक्सेना

कॉलेज का पहला दिन था। इस कॉलेज में आते ही शशि को यहाँ देख कर नेहा खुश हो गई थी। वो दोनों इंटरमीडिएट के बाद अलग हो गई थीं। शशि भले ही अभिन्न सहेली नहीं रही थी, पर नए कॉलेज में पुरानी परिचिता का मिल जाना अच्छा लगा था। बड़े स्नेह के साथ शशि पुरानी परिचिता नेहा को डिपार्टमेंट के साथियों से मिलाने ले गई थी। शशि, के साथ नेहा को आते देख कर सारे लड़के उसका परिचय जानने को नेहा के चारों ओर घिर आए थे, पर सफ़ेद कमीज़-पैन्ट वाला वह लड़का सारे शोरगुल से उदासीन कंप्यूटर में आँखें गड़ाए बैठा था। हमेशा से नेहा ने अपनी सुन्दरता पर लड़कों को आहें भरते देखा था। कोई नेहा की उपस्थिति को यूँ नकार दे, उसके लिए यह नया अनुभव था। उसकी उदासीनता नेहा को अपना अपमान लगा था। उस युवक के पास जा कर उसने पूछा था-

"क्या आपको मेरा परिचय नहीं चाहिए?"

"जितना सुना, काफी है।" लैप- टॉप से नज़र उठाए बिना उसका जवाब मिला था।

"आपके यहाँ अगर कोई नया मेहमान आए तो क्या उसका ऐसे ही स्वागत करते हैं?"

"यह तो मेहमान पर निर्भर करता है। क्लास में नए-पुराने सब साथी होते हैं, मेहमान नहीं। ज़रूरी काम पूरा करना है।" कुछेक पलों को नेहा पर नज़र डाल फिर उसने कंप्यूटर में सिर गड़ा लिया।

"वैसे एक नए साथी पर नज़र डाले बिना उसे पहचानेंगे कैसे?" नेहा हार मानने वाली नहीं थी।

"अपरिचय से मेरी मित्रता है। परिचय बढ़ाने की चाह नहीं, प्लीज़ मुझे डिस्टर्ब मत कीजिए, मुझे कुछ ज़रूरी काम करना है।" उस युवक ने उत्तर दिया।

"कमाल है, आपकी नई साथिन हूँ, क्या मेरे लिए एक मिनट का समय भी नहीं दे सकते?" उसके रूखे व्यवहार से चिढ़ कर नेहा ज़िद पर उतर आई थी। अपमान से पागल सी हो गई थी।

"आपसे कहा ना, एक ज़रूरी काम कर रहा हूँ, आपके परिचय से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण इस कार्य को पूरा करना है। वैसे भी बाहर बहुत से साथी आपका इंतज़ार कर रहे हैं, यहाँ खड़ी हो कर प्लीज़ मुझे डिस्टर्ब मत कीजिए।" राम ने रुखाई से कहा।

अपने उस अपमान–अवज्ञा ने नेहा को तिलमिला दिया। मुख्य मंत्री के चीफ सेक्रेटरी की इकलौती सुन्दर बेटी से उसके माँ-पापा तक ने कभी ऊँची आवाज़ में बात नहीं की है, क्या समझता है यह अपने को, एक दिन इसका गर्व चूर-चूर ना किया तो मेरा नाम नेहा नहीं। मन ही मन में प्रतिज्ञा कर डाली थी। उसके ज़िद्दी स्वभाव को घर-बाहर सब जानते थे, हमेशा जो

पुष्पा सक्सेना
13819 NE 37TH PL, Bellevue, WA 98005, USA
मोबाइल: 425 869 5679
ईमेल: pushpasaxena@hotmail.com

निश्चय किया पूरा कर के ही चैन लिया। राम को घमंडी कहने पर शशि ने समझाया भी था-

"नेहा, राम घमंडी नहीं बल्कि उसकी परिस्थितियों ने उसे गंभीर बना दिया है। वह ज़रूर विभागाध्यक्ष का कोई महत्त्वपूर्ण काम कर रहा होगा, सारे प्रोफ़ेसर और सब साथी उसे प्यार करते हैं। उसने कभी किसी लड़की को लड़की की तरह देखा ही नहीं, उसके लिए हम सब बस उसके साथी हैं, वह ना किसी का घनिष्ठ मित्र है ना ही किसी का दुश्मन।"

"अरे तू इन लड़कों को नहीं जानती। अपने को सबसे अलग दिखा कर हीरो बनना चाहते हैं। मैंने न जाने कितने राम जैसे लड़कों को अपने पीछे दीवाना बनते देखा है, एक दिन इसे अपने पीछे पागल ना बनाया तो मेरा नाम नेहा नहीं।" क्रोध में नेहा ने प्रतिज्ञा कर डाली।

"तू हार जाएगी, नेहा। मेरी बात मान, राम एक सच्चा, मेधावी, सरल हृदय वाला युवक है। सबकी सहायता करने में वह प्रसन्नता का अनुभव करता है, बदले में कोई चाह नहीं रखता। वह दूसरों से बहुत अलग है, इसीलिए सब उसे प्यार करते हैं। तू खुद देख लेगी, हेड उस पर कितना विश्वास रखते हैं। प्लीज़ राम को हराने की ज़िद मत कर वरना पछताएगी।"

काश शशि की बात समझ पाती, पर नेहा पर तो अपने अपमान का बदला लेने का जुनून सवार था। कोई उसका ऐसे अपमान कर सकता था, इस बारे में तो सपने में भी नहीं सोच सकती थी। दो-तीन दिन बाद फिर राम के पास गई थी, क्लास में वह हमेशा अकेला ही बैठता था। उसके पास खाली जगह देख कर पूछा था-

"आपके पास बैठ सकती हूँ?"

"अगर कहीं और जगह नहीं है तो बैठ जाइए।" इतना कह कर, अपना लैप टॉप उठा कर वह दूसरी बेंच पर चला गया।

"अरे वाह, मेनका का जादू भी हमारे विश्वामित्र पर नहीं चला।" सबकी हँसी ने नेहा को तिलमिला दिया।

लड़कों की हँसी से नेहा पागल हो उठी। ऐसा अपमान कैसे सह सकूँगी। नहीं उसे इस अपमान का बदला चुकाना ही होगा। उसे नीचा दिखाने की उसी दिन दूसरी बार फिर

प्रतिज्ञा कर डाली। इस विश्वामित्र को अपने पैरों पर ना झुकाया तो मेरा नाम नेहा नहीं।

क्या राम के लिए नेहा की वो नफ़रत थी या प्यार की पहल? उसके पहले किसी ने नेहा की ऐसी अवहेलना नहीं की थी। अपने पहले के अनुभवों से वह जानती थी किसी भी पुरुष को अपने पैरों पर झुकाने के लिए बस उसके अहं को बढ़ावा देकर, उसके अन्दर के सोए पुरुष को जगाना होता है। एक दिन राम को अकेला देख कर भोलेपन से राम से क्षमा माँगी थी-

"माफ़ कीजिएगा, आपको अनजाने ही डिस्टर्ब करती रही। असल में मैं आपकी तरह कंप्यूटर प्रोजेक्ट और प्रेजेंटेशन में अच्छी नहीं हूँ सोचा आपकी हेल्प से काम जल्दी कर सकूँगी, आप जीनियस जो ठहरे।"

"मैं कोई जीनियस नहीं आपका साथी हूँ, आपको जब भी मेरी हेल्प चाहिए ज़रूर करूँगा, साथी होने की वजह से यह तो मेरा फ़र्ज़ है।" गंभीरता से राम ने कहा था।

नेहा की बातों पर विश्वास कर, उदार राम नेहा को हिम्मत रखने और मेहनत करने को उत्साहित करता। नेहा जानती थी, उसकी कमज़ोरी से राम को सहानुभूति होती, उसका सुप्त पुरुष नेहा की मदद कर के संतुष्ट होता था। नेहा जानती थी, किसी लड़की द्वारा की गई प्रशंसा पुरुष के अहं को तुष्ट करती है। इसीलिए उसकी हर बात को मुग्ध भाव से सराहती।

"एक बात बताऊँ राम, मुझे सफ़ेद रंग पसंद नहीं था, पर तुम्हारे व्यक्तित्व से इन सफ़ेद कपड़ों का मूल्य बढ़ जाता है।" यह सच था राम का तेजस्वी व्यक्तित्व सफ़ेद वस्त्रों में और भी निखर आता था।

यह तो बाद में शशि से पता चला था, पिता की आकस्मिक मृत्यु के बाद उसकी माँ ने बड़ी कठिनाइयों से उसे पाला है। उसके पास बस दो या तीन जोड़ी सफ़ेद कपड़े ही थे, इस कारण उसके कपड़ों की गिनती नहीं की जा सकती थी। वैसे भी राम ने अपना कंप्यूटर का ज्ञान बढ़ाने के समक्ष कब अपने कपड़ों पर ध्यान दिया था?

सेमेस्टर के बाद कॉलेज के विद्यार्थी पिकनिक पर जाने को उत्साहित थे। सब नेहा के साथ को लालायित थे, पर उस दिन नेहा के एक अंकल बाहर के शहर से नेहा से मिलने आने वाले थे। उनकी प्रतीक्षा के कारण नेहा पिकनिक में नहीं गई, पर उसने अपनी इस बात का लाभ उठाया। नेहा को पता था, राम ऐसे कार्यक्रमों में नहीं जाता था। लाइब्रेरी में बैठे राम से मिल कर यही कहा था-

"सब साथी पिकनिक के लिए गए हैं, अगर तुम जाते तो मैं ज़रूर जाती।"

उस दिन पहली बार राम ने गंभीरता से कहा था "मैं तुम्हारी मित्रता के योग्य नहीं हूँ, तुम्हारे साथ मित्रता के लिए दूसरे बहुत से लड़के उत्सुक हैं।"

यह बात क्या नेहा से छिपी थी, पर राम से यही कहा था- "जिन लड़कों से मेरी मित्रता की बात तुम कर रहे हो, उनके लिए लड़की से मित्रता और उससे लाभ उठाना बस खेल होता है। कोई भी समझदार लड़की एक ऐसा जीवन साथी चाहती है, जो सच्चा और गंभीर हो, अपनी मेधा के बल पर आकाशीय ऊँचाइयाँ छू सके। जिसके पास धन ना हो, पर प्यार की अगाध संपत्ति हो।"

उस समय इतना बड़ा झूठ कैसे आसानी से बोल गई थी क्या जानती थी, उस दिन का बोला झूठ एक दिन उसके जीवन का सत्य बन जाएगा।

"ऐसी बातें सिर्फ किताबों में या फिल्मों में होती हैं, वास्तविक जीवन में लड़कियाँ ऊँचे पद वाला धनी जीवन साथी ही चाहती हैं।"

राम ने अपने अनुभव से कहा।

"शायद तुम्हारा किसी ऐसी लड़की के साथ इस तरह का अनुभव रहा हो, पर मेरी सोच दूसरी है। एक बात कहना चाह रही हूँ, जब से तुमसे मिली हूँ मुझे ऐसा लगता है, मेरा स्वप्न-पुरुष भी कोई तुम जैसा विशिष्ट युवक ही हो सकता है। तुम सबसे कितने अलग हो।" नेहा ने मीठी आवाज़ में कहा था।

उस दिन के बाद से राम की नज़रें कुछ बोलने लगी थीं, राम नेहा के साथ सहज हो चला था। नेहा भी राम के सानिंध्य में अपने को बहुत सुरक्षित महसूस करती थी। अभी तक उसे अपने आसपास मँडराने वाले युवकों का ही अनुभव था जो उसके सौन्दर्य के दीवाने होते। उसे खुश करने के तरीके अपनाते, पर राम उन सबसे कितना अलग था। नेहा की मदद करते समय उसकी मेधा नेहा को मुग्ध कर जाती, कितनी आसानी से वह बड़ी से बड़ी समस्या का कुछ क्षणों में समाधान कर जाता। सच्चे दिल से वह नेहा की सहायता करता। नेहा को एक सफल विद्यार्थी के रूप में आगे बढ़ने को उत्साहित करता।

नेहा राम के साथ वाली बेंच पर बैठने लगी थी। साथियों के व्यंग्य उन्हें परेशान नहीं करते। कोई भी समस्या आने पर राम की मदद से नेहा आसानी से समस्या का समाधान कर लेती। राम नेहा की सहायता करके साथी होने का फ़र्ज़ सच्चे दिल से निभाता था। राम के साथ समय व्यतीत करना नेहा को अच्छा लगने लगा था। भविष्य के चमकीले सपने देखने की जगह यथार्थ की कठोर भूमि पर जीते हुए, आत्मविश्वास से चमकता उसका चेहरा नेहा को मुग्ध कर जाता। उसकी मेधा नेहा को विस्मित करती। वह भूल गई इसी राम ने कभी उसकी अवज्ञा की थी, और नेहा ने उस अपमान का बदला लेने उसे अपने पैरों पर झुकाने की प्रतिज्ञा की थी।

राम का साथ नेहा को प्रिय लगता। वह जानती थी साथ के बहुत से युवक उसके साथ मित्रता करने के कई तरह के तरीके आज़माते, पर अब नेहा को जैसे किसी की ज़रूरत ही नहीं रह गई थी। राम के निश्छल स्वभाव के पारस ने जैसे नेहा को बदल दिया था। नेहा

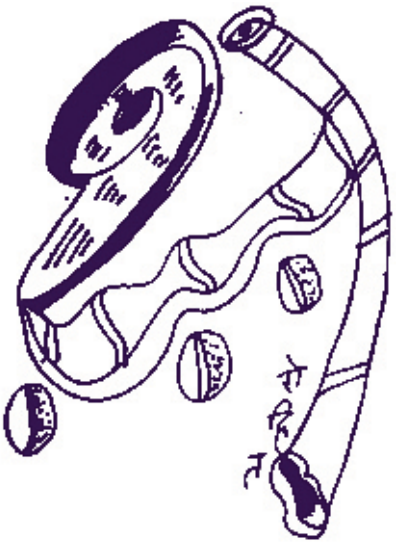

स्वयं अपने इस परिवर्तन को लक्ष्य कहाँ कर सकी थी? खाली समय में दोनों अपने अनुभव शेयर करते। कभी-कभी अपने बचपन की शैतानियाँ सुनाता राम जैसे बच्चा बन जाता। उसकी बातें नेहा को हँसा जातीं। राम का दुखद अतीत सुनती नेहा की आँखें भर आतीं। राम की वृद्धा माँ गाँव में अपने भाई के साथ रहती थी। अपनी माँ को सुखी बनाना राम का संकल्प था। नेहा सोचती, उतने कष्टों में राम कैसे इतना मेधावी बन सका।

"राम अगर तुम्हारी जगह मैं होती तो परिस्थितियों के आगे हार मान जाती और कुछ नहीं कर पाती।"

"नहीं ऐसा कभी नहीं होता वरना हम दोनों कैसे मिल पाते?" राम ने पहली बार मज़ाक किया।

"अच्छा तो जनाब मज़ाक भी कर सकते हैं।" नेहा हँस रही थी।

अब दोनों जैसे एक-दूसरे के पूरक जैसे बन गए थे। कॉलेज ख़त्म होने के बाद अक्सर पास के पार्क में कुछ देर के लिए रुक जाते। नेहा के आग्रह के बावजूद राम ने कभी रेस्तराँ में जाने की उसकी कोई बात स्वीकार नहीं की। अपनी वास्तविकता से वह परिचित था। ट्यूशन और स्कॉलरशिप से मिलने वाले पैसे वह ऐसे शौक पर खर्च नहीं कर सकता था।

एक दिन अचानक पार्क से बाहर आते हुए नेहा का पैर एक पत्थर पर पड़ गया। नेहा का पैर मुड़ गया दर्द से नेहा की आँखों से आँसू बह निकले। राम व्याकुल हो उठा। नेहा को खड़ा हो पाना कठिन था, बिना कुछ सोचे राम नेहा को गोद में उठा, उसे पास की डिस्पेंसरी में भागता सा ले गया।

नेहा के पैर को एक्ज़ामिन कर डॉक्टर ने एक पेन-किलर टैबलेट और मरहम दे कर क्रेप बैंडेज पैर पर लपेट कर कहा-

"घबराने की कोई बात नहीं है, मामूली मोच है, दो दिन में ठीक हो जाएगी।"

दूसरे दिन कॉलेज में नेहा की अनुपस्थिति का समय काट पाना राम को कठिन लग रहा था वह समझ नहीं पा रहा था उसे क्यों ऐसी बेचैनी हो रही थी। बहुत सोचने के बाद जो समझ सका वह असंभव ही था। नहीं, नेहा को पा सकने का वह सपना भी नहीं देख सकता। उसे अपने मन पर नियंत्रण रखना होगा। पर क्यों उसकी अनुपस्थिति उसे व्याकुल कर रही थी?

वापिस आई नेहा को देख राम खिल उठा, अपनी सोच का जवाब उसे नेहा से ही लेना होगा।

"कैसी हो नेहा, अब दर्द तो नहीं है?" राम की आवाज़ में कंसर्न था।

"थैंक्स राम, तुम्हारी कृपा से लंगड़ी होने से बच गई वरना मेरी शादी भी नहीं हो पाती।"

"ऐसा क्यों कहती हो, अगर तुम्हें कोई सच्चा प्यार करने वाला इंसान मिले जिस के पास सिर्फ मेधा और योग्यता हो जिसे तुम्हारे अलावा और कुछ नहीं चाहिए तो?" राम ने सवाल किया।

"तो उसे ही अपना जीवन साथी बनाना चाहूँगी।" उसकी बात अधूरी काट कर जवाब दिया था।

"ठीक है, तुम्हारी इच्छा पूरी होने में कोई बाधा कहाँ है, जो चाहोगी मिलेगा।" राम मुस्कुराया था।।

राम कंप्यूटर विभाग से एम् एस कर के प्रोफ़ेसर बनना चाहता था। हेड उसे कंप्यूटर का जीनियस कहते थे, पर नेहा ने उसे प्रशासनिक सेवा में जाने की सलाह दी थी। उससे कहा था- "असल में राम तुम जैसे इंटेलिजेंट और ईमानदार इंसान प्रशासनिक सेवा में जा कर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार जैसी बुराइयों को समाप्त कर देश में सुधार ला

सकते हैं।" अपने मन की बात नेहा ने कही थी।

"तुम मेरे बारे में ऐसा सोचती हो, नेहा? सच कहूँ तो अब भी यकीन नहीं होता तुम जैसी लड़की मुझ जैसे साधारण इंसान को इतना महान् बना सकती है। डरता हूँ कहीं यह सपना टूट ना जाए। अपनी ज़िंदगी की सच्चाई जानता हूँ।" राम गंभीर था।

"तुम्हें नहीं पता तुम क्या हो, तुम किसी भी लड़की का सपना हो सकते हो।" सच्चाई से नेहा ने कहा।

"मुझ पर इतना भरोसा है, नेहा। सच अपनी किस्मत पर विश्वास नहीं होता। तुम्हारा सपना पूरा करना ही अब मेरे जीवन का लक्ष्य है। कभी मेरा साथ तो नहीं छोड़ोगी, नेहा?" प्यार भरी नज़र से राम ने पूछा।

"कभी नहीं, तुम्हारे साथ अपने को पहचान सकी हूँ, राम।" नेहा ने दृढ़ता से कहा।

"मेरे बारे में जान कर क्या तुम्हारे पेरेंट्स मुझे स्वीकार कर सकेंगे, नेहा? हम दोनों के बीच ज़मीन आसमान का अंतर है, नेहा। कभी सोचता हूँ, तुम्हें इतना ना चाहा होता।"

"ठीक कहते हो, हम दोनों में अंतर तो ज़रूर है। तुम इतने बुद्धिमान हो, तुम्हारी मेधा के आगे मैं तो शून्य हूँ। जानते हो मैंने अपने मम्मी-पापा को हम दोनों के प्यार के बारे में सब कुछ बता दिया है। उनसे कह दिया है, तुम्हारे अलावा किसी और के साथ विवाह नहीं करूँगी, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।"

"तुम ठीक कह रही हो, हम दोनों एक-दूसरे के इतने करीब आ चुके हैं कि अब हमें अपने विवाह का फैसला कर लेना चाहिए। मेरा वादा है, जब तक प्रशासनिक सेवा में सफल नहीं हो जाता हमारा विवाह स्थगित रहेगा। इस बार एक्ज़ाम दे रहा हूँ, मुझे विश्वास है मैं सफल रहूँगा। तुम मुझे इसी रूप में तो देखना चाहती थीं ना?" बहुत प्यार और विश्वास से राम ने कहा था।

"मुझे भी उसी दिन का इंतज़ार है, राम।"

"अगर ऐसा है तो कल ग्रैंड पार्टी की शाम है, वैसे तो मै ऐसी पार्टीज़ में नहीं जाता, पर कल स्पेशल दिन है, पार्टी में ज़रूर आऊँगा। पार्टी के खुशनुमा माहौल में तुम्हें एक

सरप्राइज़ देना है।" प्यार से राम ने कहा।

"सरप्राइज़ के लिए तो आज की रात काटनी कठिन होगी। कल पार्टी में आना ही पड़ेगा।" मुस्कुराती नेहा ने कहा।

पिछले कुछ दिनों से राम उससे कुछ कहना चाहता था। वैसे दोनों ही आजीवन साथ निभाने की बातें करते थे। नेहा समझ गई आज राम उसे प्रोपोज़ करने वाला था। यही उसका सरप्राइज़ होगा। नेहा भूल चुकी थी, जिस राम को अपमानित करने का उसने निश्चय किया था, कब अनजाने ही वह उस राम की तीव्र मेधा, सादगी और सच्चाई के मोहपाश में बँध चुकी थी। अब वह जान चुकी थी कि राम से उसे सच्चा प्यार हो गया था। राम जैसा मेधावी और सच्चा प्यार करने वाला जीवन साथी मिलना सौभाग्य ही था। राम के सिवा अब वह किसी और के विषय में सोच भी नहीं सकती।

नेहा से बात कर के राम अपने घर की तरफ जा रहा था कि कॉलेज के गार्ड ने आकर राम से कहा-

"राम भैया जी आपको सामने वाले होटल में बुलाया गया है। वहाँ आपसे मिलने के लिए कोई आए हैं।"

"तुमसे ग़लती हो रही है, उस होटल में किसी और को बुलाया गया होगा।"

"नहीं भैया जी, यह देखिए कागज़ पर आपका ही तो नाम है।" राम ने देखा कागज़ पर उसका नाम और कॉलेज का नाम लिखा हुआ था। असमंजस की स्थिति में राम ने होटल की तरफ कदम बढ़ाए थे।

राम को देखते ही होटल के मैनेजर ने उसके स्वागत में कहा-

"आप चीफ सेक्रेटरी साहब के परिचित हैं, हमें तो पता ही नहीं था, सामने वाले वी आई पी रूम में शर्मा जी और मिसेज़ शर्मा आपका इंतज़ार कर रहे हैं। वेटर, राम साहब को उनके कमरे तक पहुँचा आओ।"

कमरे में प्रविष्ट होते राम ने सोफे पर एक दबंग व्यक्तित्व वाले पुरुष और उनकी पत्नी को विस्मय से देखा। संस्कारवश राम उनके चरण-स्पर्श के लिए झुकने लगा तो शर्मा जी ने कठोर स्वर में कहा-

"इस एक्टिंग की ज़रूरत नहीं है। यही सब कर के जाल फैलाया है।"

"जी, मैं समझा नहीं। आपका परिचय जान सकता हूँ?"

"तुम्हारी औकात ही कहाँ जो हमें जान सको, इतना समझ लो, अगर तुम अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आए तो ज़िंदगी से हाथ धो बैठोगे। तुम जैसों का किसी अमीर लड़की को फँसा कर एक बार में अमीर बन जाने का सपना अच्छी तरह से समझता हूँ। मेरी भोली-भाली बेटी नेहा को अपनी बातों में बहका कर क्या सोचा था, तुम अपने षड्यंत्र में जीत जाओगे।"

"नहीं सर, यह सच नहीं है। नेहा और मैं, हम दोनों सच्चे हृदय से एक-दूसरे को चाहते हैं। आज ही नेहा ने मुझे बताया कि उसने आपसे कहा है, वह मेरे अलावा किसी और के साथ विवाह नहीं करेगी।" शान्ति से राम ने अपनी बात कहनी चाही।

"होश में रहो, कहाँ गँवई गाँव का एक मामूली इंसान, कहाँ वह महलों में पली एक राजकुमारी। जानते हो दो सप्ताह बाद उसका विवाह लन्दन में पोस्टेड आई एफ़ एस के साथ होने जा रहा है। अगर अपनी और अपनी माँ की सलामती चाहते हो तो खबरदार जो तुमने नेहा से हमारी इस मुलाक़ात के बारे में एक शब्द भी कहा।"

"आपको बताना चाहूँगा सर, भले ही मैं गाँव से हूँ, पर कॉलेज में सब मेरी मेधा और चरित्र का आदर करते हैं। आपकी जानकारी के लिए मैंने नेहा से वादा किया है, आई ए एस

एक्ज़ाम में क्वालीफाई करने के बाद ही नेहा से विवाह करूँगा। आपसे निवेदन है, हमें अलग मत कीजिए, बस कुछ समय प्रतीक्षा करनी है।" राम ने अनुरोध किया।

"वाह क्या बात है, यह मुँह और मसूर की दाल? तुम्हारा यह सपना पूरा हो या न हो, पर वादा करो, तुम नेहा से आज के बाद कभी नहीं मिलोगे। उससे न मिल पाने का कोई भी बहाना चलेगा। आख़िर प्यार करने के लिए भी तो बातें बनाई ही होंगी। खबरदार जो कल की पार्टी में दिखाई दिए। कल पार्टी के बाद हम नेहा को अपने साथ ले जाएँगे।"

"नहीं, सर ऐसा मत कीजिए। आप मेरे हेड से मेरे बारे में पूछ लीजिए, वह मेरी सच्चाई बता सकते हैं, मुझे यकीन है, हर परीक्षा की तरह इस वर्ष भी कंप्यूटर साइंस की परीक्षा में मैं ही टॉप करूँगा। प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में सफलता भी निश्चित है। नेहा को भी मुझ पर पूरा विश्वास है।"

"बस बहुत सुन लीं तुम्हारी बातें अब एक शब्द भी नहीं। इतना याद रखो, आज इसी वक्त तुम अपने गाँव जा रहे हो, तुम्हारी माँ सख्त बीमार है। यही बात तुम्हारे कॉलेज का गार्ड नेहा को बताएगा। हाँ तुम्हें गाँव तक टैक्सी से जाने का किराया भी टैक्सी ड्राइवर को दिया जा चुका है। साथ में एक पैकेट में तुम्हारे राह-खर्च के लिए एक पैकेट है।"

"माफ़ कीजिए अब और अपमान सहन करने की शक्ति नहीं है। शायद एक दिन आप समझ सकें आप कितने ग़लत थे। पैसे या पोजीशन से इंसान बड़ा नहीं होता बल्कि उसका उदार चरित्र और स्नेही मन जो सच्चे प्यार को समझने की क्षमता रखता हो, उसे बड़ा बनाता है।"

अपनी बात कहता राम तेज़ी से कमरे से बाहर चला गया। मन में झंझावात चल रहा था, यह क्या हो गया ? क्या नेहा यह सह पाएगी, पर नेहा से कुछ कहने, बात करने का भी अधिकार छीन लिया गया था। मिस्टर शर्मा की माँ को लेकर चेतावनी को वह सच नहीं होने दे सकता। काश वह जाने के पहले एक बार नेहा से मिल पाता। कल पार्टी में वह नेहा को सरप्राइज़ देने वाला था, पर आज का यह

सरप्राइज़ क्या वह सह पाएगी? एक घंटे में उसे गाँव ले जाने के लिए टैक्सी आने वाली है। उसे न देख नेहा पर क्या बीतेगी?

होटल में माँ और पापा को देख नेहा विस्मित थी, माँ ने उसे बताया "तुम्हारे पापा को प्रिंसिपल साहब ने ख़ास तौर पर मुख्य अतिथि के रूप में कल की पार्टी के लिए बुलाया है। हमने भी सोचा, अपनी बेटी के कॉलेज का लास्ट प्रोग्राम अटेंड कर ही लें।"

"यह तो बहुत अच्छा हुआ मम्मी, कल तुम और पापा राम से भी मिल लोगे, उससे मिल कर तुम्हें बहुत खुशी होगी।" नेहा के चेहरे पर खुशी की चमक थी।

दूसरी शाम इंजीनियरिंग कॉलेज के विद्यार्थी पार्टी के लिए हॉल में जमा थे। पूरा हॉल विद्युत लड़ियों से सजाया गया था। म्यूज़िक के साथ ड्रिंक्स और तरह-तरह के व्यंजन माहौल को खुशनुमा बना रहे थे। अब इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी करने के बाद सबके अलग-अलग इरादे थे, कुछ आगे मास्टर्स करने की सोच रहे थे तो कुछ कहीं नौकरी खोजने वाले थे।

रंगीन कपड़ों में सज्जित लड़कियाँ लड़कों के आकर्षण का ख़ास कारण थीं। उन सबमें नेहा सबसे अलग चमक रही थी। सुन्दरता के साथ उसकी अदाएँ भी बेहद मोहक होतीं। उसकी हर बात पर लड़के मुग्ध रह जाते। सच तो यह है जिस दिन उसने मुम्बई से आकर उनके साथ चतुर्थ वर्ष में प्रवेश लिया था तो लड़कों की जैसे दुनिया ही सुनहरी हो उठी थी। उसे ले कर सब सपने देखते। एक बस राम ही था जो शुरू में उनकी बातों से निर्लिप्त अपने में सिमटा रहता। उसका ना कोई दोस्त था ना कोई दुश्मन, हाँ हर परीक्षा में प्रथम स्थान उसके नाम ही होता।

अब पार्टी ज़ोरों पर आ गई थी। गीतों की धुन पर डांस होना स्वाभाविक ही था नेहा बेचैनी से दरवाज़े को देख रही थी, अब तक राम क्यों नहीं आया? उसके सरप्राइज़ के लिए वह बेचैन थी। आज मम्मी –पापा भी राम से मिल लेंगे। तभी बाहर से आए अमर ने नेहा के पास आकर उसे बताया-

"राम की माँ बहुत बीमार है। खबर मिलते ही राम तुरंत गाँव चला गया है। तुमसे नहीं मिल सका।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। जाने के पहले एक मिनट को ही मिल जाता।" नेहा का मूड ख़राब हो गया। सारे उत्साह पर पानी फिर गया। अब वह राम से कब और कैसे मिल सकेगी। पापा ने कल ही बता दिया था नेहा उनके साथ घर वापिस जा रही है, उनके साथ उसका टिकट भी फ्लाइट से बुक हो चुका है। राम कब लौटेगा, कुछ पता नहीं। भारी मन से नेहा को जाना ही होगा।

दो माह बाद गाँव से लौटा राम दूसरा ही राम था। गंभीर मुख पर शान्ति के साथ दृढ़ता थी। जैसा कि प्रत्याशित था, राम को परीक्षा में प्रथम स्थान मिला था। हेड ने राम को बधाई दे कर कहा था-

"उम्मीद करता हूँ तुम मास्टर्स में एडमीशन लोगे। टॉपर के रूप में स्कॉलरशिप भी मिलेगी।"

"धन्यवाद सर, पर इस वर्ष मैं प्रशासनिक सेवा की तैयारी करना चाहता हूँ, अगर आप मेरी मदद कर दें तो फर्स्ट इयर के स्टूडेंट्स की कुछ क्लासेज़ दे दीजिए, उसके बदले में आप जो भी देंगे उससे माँ की देख-रेख कर सकूँगा।" गंभीरता से राम ने कहा।

"यह तो बहुत अच्छा सुझाव है, तुम्हारे ज्ञान से स्टूडेंट्स का भला होगा, पर तुम तो कंप्यूटर जीनियस हो, फिर प्रशासनिक सेवा के लिए क्यों जाना चाहते हो?' प्रिंसिपल विस्मित थे।

"मुझे विश्वास है, मेरा कंप्यूटर- ज्ञान प्रशासनिक कार्यों में भी मेरा सहायक होगा, सर।"

"तुम्हारी योग्यता पर मुझे गर्व है, तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।"

गाँव पहुँचने के दो सप्ताह बाद पर राम के नाम नेहा के विवाह का निमंत्रण मिला था। स्तब्ध राम के लिए जैसे सब कुछ समाप्त हो गया। न जाने क्यों मन में आशा का नन्हा सा अंकुर उभर आता, शायद नेहा ने विरोध कर विवाह न किया हो?कुछ देर बाद उसने अपने को समझाया था, नेहा और उसके मिलन में बाधा उसके पेरेंट्स थे, वह जानता है, नेहा जैसी कोमल लड़की अपने माँ-बाप के सामने कैसे विद्रोह कर सकती है। जो भी हो, नेहा ने राम से एक ही बात चाही थी कि वह प्रशासनिक सेवा में जाए और देश के लिए कार्य करे। राम के लिए नेहा का यह सपना, उसे पूरा करना ही होगा। सवेरे फर्स्ट इयर के क्लासेज़ लेने के बाद राम अपनी पढ़ाई करता था। नेहा जैसे उसकी प्रेरणा बन गई थी।

एक वर्ष का समय बीत गया। कई बार राम लन्दन में रह रही नेहा से बात करने की सोचता, पर अब वह पराई अमानत थी, राम की नेहा नहीं, अब उसके जीवन में दखलंदाज़ी करना अनुचित है। वह सच्चे मन से उसकी सुख-शान्ति की प्रार्थना करता। कभी मन में आता क्या उतने सुख ऐश्वर्य में नेहा अब भी उसे याद करती होगी? तुरंत ही अपने ख़्यालों को झटक वह कुछ और करने लगता।

सवेरे का न्यूज़ पेपर देख मिस्टर शर्मा ने पत्नी को आवाज़ दी थी-

"रागिनी, आई ए एस एग्ज़ाम्स के रिज़ल्ट आ गए हैं, तुम्हारे भाई के बेटे ने भी तो एग्ज़म दिया है।"

"हाँ-हाँ ज़रा देखिए, नरेश ने ज़रूर क्वालीफाई किया होगा।" मिसेज़ शर्मा उत्सुकता से भागी आईं।

"देखें कहीं तुम्हारा नरेश आई एफ़ एस में तो नहीं सेलेक्ट हुआ है।" मिस्टर शर्मा ने पत्नी से मज़ाक किया।

अचानक सफल प्रत्याशितों की सूची

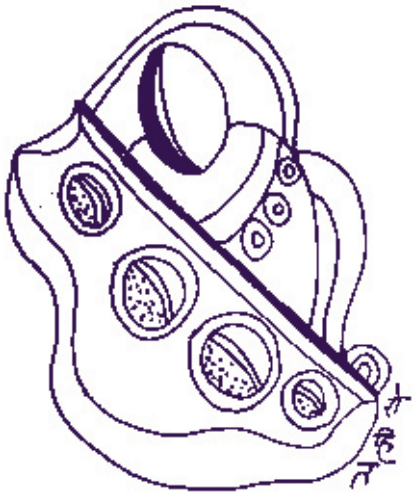

देखते मिस्टर शर्मा के चेहरे का रंग उड़ गया।

"रागिनी, हम नेहा के साथी जिस राम से मिले थे, उसका पूरा नाम राम मिश्रा ही था न?"

"जी हाँ, पर इस समय आपको उसका नाम क्यों याद आ गया?"

"क्योंकि वही राम आई एफ़ एस की सूची में पहले नंबर पर है। हमसे कितनी बड़ी ग़लती हो गई।"

"सच, हमने उसका कितना अपमान किया, नेहा कितना रोती रही,पर हमने उसकी एक भी नहीं सुनी। जानती हूँ, वह अपने को किसी तरह से एडजस्ट कर रही है। मैंने उसे अपनी कसम दी है कि भूल कर भी राम का नाम न ले, पर जानती हूँ, वह राम को आसानी से नहीं भुला सकेगी।"

"हम राम के अपराधी हैं, उससे क्षमा तो माँगनी ही होगी। हमने हीरे को काँच समझा।"

कॉलेज के प्रिंसिपल के रूम में अपने लिए फ़ोन सुन कर राम विस्मित था। दूसरी तरफ से मिस्टर शर्मा की क्षमा याचना का स्वर था-

"राम मिश्रा जी, मैं नेहा का पापा, आपसे क्षमा माँगना चाहता हूँ। अनजाने में जो अपराध हो गया,क्या आप अपने उदार हृदय से हमें क्षमा कर सकेंगे?"

"मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, आप मेरे पिता समान हैं, आप क्षमा नहीं माँगें, आशीर्वाद दीजिए।"

"एक बार यह भी नहीं पूछोगे, नेहा कैसी है?"

"अपने घर में वह सुखी रहे, यही कामना है और कुछ जानने का अधिकारी नहीं हूँ।" शांत उत्तर था।

"तुम नंबर वन पोजीशन पर हो, किस कंट्री में पोस्टिंग लोगे?"

"अपने देश भारत में ही पोस्टिंग लूँगा, विदेश तो पराया होगा।" अचानक राम चुप हो गया।

"माना इंडिया तुम्हारा अपना देश है, पर क्या नए देश देखने की इच्छा न होने का कोई ख़ास कारण है?"

"मेरी यही चाहत है। विदेश में यहाँ की यादें पीछा नहीं छोड़ेंगी, यहाँ उन्हीं यादों के साथ जीऊँगा।"

"एक बात जानना चाहता हूँ तुमने अपनी कंप्यूटर की फील्ड छोड़ कर प्रशासन का क्षेत्र क्यों चुना?"

"बस यही एक बात तो उसने मुझसे, चाही थी?" जैसे राम अचानक कह गया।

"किसकी बात कह रहे हो, क्या नेहा ने.."

उत्तर देने के पहले फ़ोन काट दिया गया था।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

देहरी छुड़ाई

रमेश खत्री

आधी रात को फ़ोन पर सूचना मिली तो हड़कंप मच गया। सूचना ही ऐसी थी कि हड़कंप मचना ही था। जिस पर कोई भी विश्वास नहीं कर सकता और तो और इस बारे में कोई सोच भी नहीं सकता। सूचना देने वाले ने भी बस इतना ही कहा, "ललित जी नहीं रहे.....उनका दाह-संस्कार कल ग्यारह बजे गाँव में ही है... ।" और फ़ोन काट दिया।

अनजान नंबर से आया यह फ़ोन, रात में ही तूफ़ान मचा गया। सोच के जितने भी दरवाज़े होते हैं सभी एक साथ भड़भड़ा गए। ऐसा लगने लगा मानों सिर हवा में उड़ा जा रहा हो, आँखें किसी तूफ़ानी नदी में तैर रही हो और पूरा शरीर किसी रसातल में डूबा जा रहा हो। इसके बाद खुद को सँभालना भारी पड़ गया।

और सँभालता भी तो कैसे, ब्लडप्रेशर सातवें आसमान पर जो जा पहुँचा था। वह तो अच्छा हुआ कि ज़ुबान के नीचे रखने वाला कैप्सूल अभी तक दवाइयों के डिब्बे में था। उसे निकालकर ज़ुबान के नीचे रखते हुए बेटा बोला, "अब मरने वाले के साथ मरा थोड़े ही जावे है, फिर क्यों इतना परेशान हो रहे हो ?"

"पर बेटा ! वो तो इतने अच्छे थे; इतने हँसमुख कि कभी उनको ग़ुस्सा करते नहीं देखा और अचानक ही यह .....?"

"तुम फिर से उनकी ही बातें कर रहे हो ... !"

"अब तेरी बहन का क्या होगा रे बेटा....?"

"..... ।" वो कुछ भी नहीं बोला देखता भर रहा। बोलने को वैसे भी उसके पास था ही नहीं।

मुझे तो इस पर भी आश्चर्य हो रहा था कि उसकी नींद कैसे खुल गई ? पूरी रात ही घोड़े बेच कर सोने वाला व्यक्ति है, वह। एक बार जो बिस्तर पर लेटा तो फिर कुंभकरण ही हो जाता है। सुबह कब की निकल चुकी होती है, आठ-नौ बजने को होते हैं तभी कसमसाता है। तब तक तो मैं तैयार होकर बाहर निकलने को होता हूँ। हर रोज़ लगभग ऐसी ही स्थिति होती है। इधर फैक्ट्री

रमेश खत्री
५३/१७, प्रताप नगर, सांगानेर, जयपुर-३०२०३३
मोबाइल: ९४१४३७३१८८
ईमेल: sahityadarshan@gmail.com

जाने का समय हो रहा होता है और उधर जनाब का उठना होता है। पर जाते-जाते भी झक मार कर चाय तो बनानी ही पड़ती है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि ग़ुस्से में वैसे ही चला आया, तो अगले ने ना तो चाय बनाई और न ही दूध को फ्रिज में ही रखा। शाम को जब घर लौटा तो देखा किचन में रखा दूध फट गया था। अगले ने होटल पर जाकर चाय पी ली थी। तो अब झक मारकर चाय तो बना ही आता हूँ।

ऐसे ही जीवन की गाड़ी हिचखोले खाती हुई चल रही थी; इसके ऊपर अब यह बवाल और आ गया। सोचते हुए आँखें फटी की फटी रह गई। मस्तिष्क अचेत सा हो गया। और सोच की सारी की सारी राहें एक साथ लहराने लगी।

सात साल पुरानी ही तो बात है, जब इसी घर से स्वर्णिका दुल्हन बनकर गई थी। दुल्हन के लिबास में कितनी सुंदर दिख रही थी। मन कर रहा था जी भर कर देखता रहूँ। घर मेहमानों से खचाखच भरा था। और जान को शादी के पचासों काम पड़े हुए थे। इसके चलते ही उसको मन भरकर देख भी नहीं पाया था। उसकी माँ के नहीं रहने के कारण हर काम मुझे ही करना पड़ रहा था। हर रस्म के लिए मेरी ही पुकार होती थी। जी जान से लगा रहा। वह तो जब विदा के समय स्वर्णिका मेरे सीने से लगी तब एहसास हुआ कि अब बेटी जा रही है इस घर से। थोड़ी ही देर में पराई हो जाएगी। इससे पहले तो सब कामों को ऐसे निपटाता रहा था, मानों घर में कोई उत्सव हो। वैसे उत्सव ही तो था, स्वर्णिका की शादी क्या छोटा उत्सव था।

जिस समय दुल्हन के रूप में सजी-धजी लड़की ने अपनी बाहें मेरे गले में डाली और दहाड़ मारकर रोई तब मानों अचानक ही नींद से जाग गया। तब एहसास हो पाया कि कुछ है जो हाथ से छूटा जा रहा है। उसी समय सारे नाते-रिश्तेदार उसे घेरकर खड़े थे। स्वर्णिका दहाड़े मारकर रो रही थी। उसके साथ ही मैं भी वैसे ही फूट-फूट कर रोने लगा। आसपास खड़े सभी रिश्तेदारों की आँखों से आँसुओं की बूँदें बरस रही थी। सब एक दूसरे को देख रहे

थे, और आँसू छलकाए जा रहे थे। बोल कोई कुछ भी नहीं रहा था, बस तभी मैं बोला, "बेटा! आज तू भी मुझे छोड़ कर जा रही है ?"

उस समय स्वर्णिका भरी-भरी नज़रों से मुझे देखने लगी, उसकी आँखों में मानों सावन-भादों समाया हुआ था। जो तेज़ी से बरसने को आतुर था। वह गले लगते हुए बोली, "पापा ! आपने ही तो मुझे इस घर से रुख़सत कर दिया.....क्या मैं आप पर बोझ बन गई थी...?"

मैं भी रोते हुए बोला, "बेटा ! बेटियाँ कभी बोझ नहीं होती...पर उनको तो जाना ही पड़ता है... उनको अपना घर भी तो बसाना पड़ता है बेटा....! तो तू भी अपना घर बसा ले.. अपना नया संसार रच..!" बोलते हुए मन भर आया था। फिर मैंने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "पर अपने उस संसार में.....अपने इस ग़रीब बाप को मत भूल जाना बेटा...इस ग़रीब बाप को मत भूल जाना...!"

"कैसी बात करते हो पापा.....आप भी..!" इसके आगे वह कुछ भी नहीं बोल पाई।

फिर तो कोई भी कुछ भी नहीं बोल पाया सब भरी-भरी नज़रों से एक दूसरे को देखते रहे। बस तभी लड़के के मामा ने कहा, "चलो चलो....गाड़ी में बैठो।"

इसके साथ ही सभी की रुलाई फूट गई और स्वर्णिका तो जैसे दहाड़े मारकर रोने लगी। उस समय वह ऐसे बिलख रही थी मानों अपनी माँ से अलग होते हुए बच्चा बिलखता है। वह भी तो अपना संसार छोड़ कर जा रही थी। जिस घर में अठखेलियाँ खेली थीं, जिस आँगन में घुटनों चलकर बड़ी हुई थी, जिस घर में उसने अपनी आँखें खोली थी और जिस गोदी में खेलते हुए वह बड़ी हुई थी; वह सब यहीं छूट रहा था। अब तो बस इस सब की याद ही रह जाएगी। बस तभी अपनी आँखें पोंछते हुए बोला, "जा बेटा ! जा..अपना नया संसार बसा...यह भी ध्यान रखना बेटा...कभी अपने माँ-बाप का नाम नीचा मत होने देना....कोई तुझको यह ना कहे..कैसे संस्कार दिए हैं तेरे माँ-बाप ने ? जा हमारा आशीष तेरे साथ है।" बोलते हुए उसका हाथ पकड़कर गाड़ी में बैठा दिया। उस समय मेरे सीने पर मानों हिमालय आ बिराजा था। जीवन में इतना भार कभी महसूस नहीं हुआ, जितना उस समय हो रहा था।

थोड़ी देर में गाड़ी स्वर्णिका को लेकर चली गई तो ऐसा लगा, 'मानों सब कुछ चला गया हो !' सब एक दूसरे को खाली-खाली आँखों से देखते रह गए। बेटी के विदा होने के बाद पहली बार मैंने सबको नज़र भरकर देखा था। लगा किसी की आँखों में हर्ष समाया हुआ है, तो किसी की आँखों में दुख। किसी की आँखों में गहन पीड़ा थी। तो किसी की आँखों में कुछ भी नहीं था। इसके साथ ही एक और बात हुई जो सबके साथ एक साथ हुई थी। जो परिवार के सदस्य वहाँ खड़े थे, उनमें बहनें थी, माँ और पिताजी थे, चाचाजी और चाचीजी और उनके लड़के थे। उन सबके मन का जैसे उत्साह एक साथ चूक गया हो। सब के सब ऐसे निढाल हो गए थे मानों किसी ने सारी की सारी ऊर्जा को सोख लिया हो।

फिर कमरे में आते ही माँ और पिताजी तो वैसे ही लमलेट हो गए, बाकी के रिश्तेदार भी अपने काम में लग गए। कुछ तो जाने की तैयारी करने लगे और कुछ जहाँ थे वहीं सरककर सो गए। मेरी आँखों में भी नींद ने घोड़े खोल दिए थे पर रिश्तेदारों की वजह से मैं अपने आपको नींद की दुनिया से बाहर खींच लाया।

इसके साथ ही यह भी महसूस किया था कि बेटा अरविंद भी तो पूरे समय से ही लगा

हुआ है। एक पल के लिए भी साँस नहीं ली। क्या करता शादी में तो लगना ही पड़ता है। उधर प्रतिभा को भी भागते-दौड़ते हुए ही देखा है। छोटी है पर फिर भी लगी हुई है। शादी का काम ही ऐसा होता है। परिवार के सभी सदस्यों को इसमें लगना पड़ता है।

ग़रीब के घर में जब भी ऐसे काम होते हैं, तो परिवार के सभी सदस्यों को उसमें लग जाना पड़ता है। तभी कम पैसों में इज़्ज़त बचाई जा सकती है। नहीं तो यह ऐसा समय होता है, जब आदमी की इज़्ज़त उतरते देर नहीं लगती। आस-पड़ोस के लोग और रिश्तेदार तो इसी ताक में रहते हैं कि 'कब मौका मिले बातों का बतंगड़ बनाने का।' यदि कुछ नहीं भी होता है तो भी ऐसे लोग बातें करने से नहीं चूकते।

लोग तो हर जगह ही कुछ न कुछ मसाला निकाल ही लेते हैं, जिसको बाद में चुगल सके। और वह चुगलते भी हैं, काफी लंबे समय तक। पर जिसको जो करना है करें।

बस तभी पलकें झपकाईं, लगा जैसे जीवन के एक अध्याय के पन्ने को पलट लिया हो, और सामने वही गहन अँधेरा अपनी पोटली खोले हुए खड़ा दिखा। उसी अँधेरे से न जाने कितने चक्रव्यूह निकलते जा रहे हैं और उनमें डूबता जा रहा हूँ। इन सात सालों में न जाने कितनी बार स्वर्णिका ललितजी के साथ यहाँ आई थी। हर बार खिलखिलाती हुई वह जब भी आती ललितजी के साथ ही आतीं। एक-दो रोज़ रहती तो घर में चहल-पहल रहती, ऐसा लगता मानों उत्सव आ गया हो। घर पर बेटी का आना किसी उत्सव से कम थोड़े ही होता है।

वह जब भी इस घर आती तो अपने साथ उत्सव को ले आती। हमेशा हँसती खिलखिलाती रहने वाली स्वर्णिका यहाँ आती तो उसके मन का उत्साह देखते ही बनता था। अपनी उपस्थिति से घर में खुशियों के दीए जला देती। जब तक यहाँ रहती घर में खुशियाँ उमड़ती रहतीं। दिन और रात कब निकल जाते पता ही नहीं चलता। उसका आना किसी त्यौहार की तरह होता था। ललितजी को देख कर मन प्रफुल्लित हो जाता। उनका हँसता

हुआ सौम्य चेहरा, लंबोतरा क़द, और ऊपर को काढ़े हुए बाल आकर्षक लगते। उनसे बात करके भी अच्छा लगता और गर्व महसूस होता। यह उनके व्यक्तित्व की ख़ासियत थी।

लेकिन जब भी वह जाती तो अपने साथ घर की सारी खुशी को भी समेट कर ले जाती। उसके जाते ही घर में मुर्दनी छा जाती, कुछ भी करने को मन नहीं करता, मानों उसके साथ ही मन का सारा उत्साह भी जैसे चुक जाता हो। उस दिन तो फैक्ट्री जाना भी भारी हो जाता। समय बीतने का नाम ही नहीं लेता, जैसे जम जाता पहाड़ सा मन पर। फिर कुछ दिनों में सामान्य होता। मन धीरे-धीरे सँभल पाता।

पर उसका आना और जाना अच्छा लगता। हम सब इंतज़ार करते उसके आने का। वह तो बार त्यौहार पर ही आती थी। पर जब भी बुलाते, दौड़ी चली आती थी। और अपने पल्लू में बाँध लाती वह फूल जो उसके आते ही गमक कर खिल जाते और फिर उनकी सुगंध पूरे घर में फैल जाती। मन मानों पतंग सा हो जाता, ऊँचे आसमान में पेंगे भरने लगता, हाथ ही नहीं आता। जब पिछली बार आई थी तो अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया था, "यार सोनू! तू आती है तो समय का भान ही नहीं रहता। वह ऐसे निकल जाता है मानों हिरनी का बच्चा हो जैसे ऐसे भागता है कि हाथ ही नहीं आता।"

वह मुस्कुरा दी थी। उसके छोटे-छोटे दाँत बाहर को दिखने लगे और उसकी आँखों से झरता अपनत्व का झरना उसकी उठती गिरती पलकों से झर रहा था। वह अपने मुँह से कुछ भी नहीं बोली बस नज़र भरकर देखती रही।

मैं भी उसको वैसे ही अपलक देखता रह गया। घर में और भी सभी लोग थे तो सभी के चेहरे पर हँसी आ गई। बस तभी प्रतिभा बोली, "आप दीदी को बहुत ज़्यादा प्यार करते हो ना....तो आपको ऐसा ही लगता है....वैसे हम भी तो हैं ना घर में...आपने कभी हमसे तो ऐसा नहीं कहा....?"

"बेटा! तुम भी मेरे लिए कम थोड़े ही हो, मेरे लिए तो तुम सब बराबर हो। तुमको हँसते मुस्कुराते हुए देखकर मन खिल उठता है। बेटा, मेरी तो यही चाहना है तुम लोग खूब खुश रहो।'

"तो फिर....?"

"जो मन में आया कह दिया।" बोलते हुए प्रतिभा को देखने लगा।

तभी स्वर्णिका ने प्रतिभा के हाथ पर हाथ रखते हुए उसे हलके से दबा दिया तो दोनों खिलखिला कर हँस दी। उस समय भी ललित जी बैठे हुए यह सब देख रहे थे। वो इस घर में कितनी बार तो आ चुके थे। पर कभी भी उनको ऊँची आवाज़ में बोलते हुए नहीं सुना। कितना सोम व्यक्तित्व, जब भी मिलते चेहरे पर हँसी के फूल खिले रहते थे। उनसे मिलकर हर बार खुशी होती थी।

'तो फिर अचानक ही यह सब क्यों और कैसे?' मानों खुद से ही सवाल कर दिया हो। पर इसका जवाब कुछ भी नहीं था पास में। मन में आया, 'आदमी सोचता क्या है और हो क्या जाता है?'

मैंने भरसक कोशिश की खुद को शांत करने की पर यह तो हाथ में नहीं था मेरे। वैसे यह किसी के भी हाथ में नहीं होता है। पर मेरी प्रकृति के अनुरूप तो यह बिल्कुल भी नहीं था। जिस तरह की हड़बड़ी में अक्सर मैं रहता हूँ; इसके चलते मन भी उतना ही उद्वेलित रहता है। और इसी के चलते कई रोग भी पाल लिए हैं जी को। पर वह तो पूरी तरह से शांत और गंभीर रहने वाले व्यक्ति थे। तो फिर उनके मन में इतना उद्वेलन कैसे आ गया और उन्होंने यह कदम कैसे उठा लिया?' यही प्रश्न लगातार पीछा करता रहा।

फिर करवट ली और सोचने लगा, 'आख़िर ऐसे इंसान ने आत्महत्या कैसे कर ली ?' इस प्रश्न के साथ ही मैंने हाथों को चेहरे पर घुमाया और आँखें बंद करने लगा तो ऐसा लगा मानों आँखों में अंगारे भर गए हों। दोनों हाथों से आँखों को ढाँपे रहा देर तक, तभी ऐसा लगने लगा, 'मानों कई सारी आकाशगंगाएँ एक साथ आँखों में समा गई हों। जिनकी चमक से वह चौंधिया रही हैं। कुछ समझ में नहीं आ रहा, क्या करूँ और क्या ना करूँ ? अब इतनी सी उम्र में ही स्वर्णिका को वैधव्य का दुख भोगना पड़ेगा....? और अब वह करेगी भी तो क्या ?' सोच के कई दरवाज़े अचानक ही भड़भड़ाकर खुलते चले गए। मैं उनको खुलते बंद होते देखता रहा। सीने पर मानों भारी पत्थर आकर जम गया हो। वह हिल भी नहीं पा रहा था। बस तभी आँखों से हाथ हटाया और महसूस करने लगा, 'कहीं यह सब अवचेतन अवस्था में ही तो नहीं हो रहा है। और इसको कहीं मैं ही तो अनुभव नहीं कर रहा हूँ।'

फिर लाख कोशिश के बाद भी पलक तक नहीं झपका पाया, बार-बार स्वर्णिका और ललितजी की छवि साकार हो जाती और कई-कई तरह से बतियाने लगती।

पर यह तो सच है और इसे स्वीकारना ही पड़ेगा, 'ललितजी जो कभी, तैश में नहीं आते थे, ऊँची आवाज़ में बात तक नहीं करते थे। सबके साथ हँसते बोलते रहते थे। ऐसे व्यक्ति के मन में भी न जाने कौनसा ज्वालामुखी तप रहा था। ऐसा व्यक्तित्व भी आत्महत्या जैसे घिनौने कृत्य के लिए तैयार हो गया और रेल की पटरी पर जाकर खड़ा हो गया। गुज़रती हुई रेल ने उसके परखच्चे उड़ा दिए, 'हे ! भगवान् तुमने उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी...जिससे वह ऐसा कर ही नहीं पाता। पर तुम्हें भी कहाँ फुर्सत होगी....तुम तो अपने में ही लगे हुए होंगे ना...? अपनी सेवा चाकरी में....कई बार तो लगता है कि तुम हो ही नहीं, अगर होते तो....ऐसा थोड़ी ही न होता ? जो लड़की इतने व्रत उपवास करती है, तुम्हारी ही सेवा-चाकरी में लगी रहती है, तुमने उसके ही साथ ऐसा कर दिया ? क्या प्रभु तुम उसकी परीक्षा ले रहे हो

?' सोचते हुए मन पत्थर का सा हो गया।

ऐसे ही करवट बदलते हुए रात बीती समय काटना ही भारी हो गया। इस समय में तिल-तिल कर खुद को रेंगते हुए पाया। किसी कीड़े की तरह। रगों में लहू तेज़ी से भाग दौड़ कर रहा था और विचार रेंगते रहे। कुछ समझ नहीं आ रहा 'अब क्या करूँ ? और क्या ना करूँ ?' अपनी नज़रें फिर से छत पर केंद्रित कर दी, 'मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं है, अब इस छोरी का क्या होगा ?' यही सब देर तक सोचता रहा।

रात बीतने का नाम ही नहीं ले रही थी, किसी काले पहाड़ की तरह तनकर सामने खड़ी हो गई, चुनौती देते हुए। यह सब ऐसे ही चल रहा था कि तभी विचार आया, 'क्या सब कुछ मेरे सोचने भर का ही है ? कहीं कुछ भी नहीं बदलता सब कुछ वैसा ही चलता रहता है... बस सोचने की दिशा बदल जाती है और इसी सब के कारण सब कुछ बदल जाता है।'

पूरे पन्द्रह दिन बीत गए हैं। इन पन्द्रह दिनों में सब कुछ बदल गया हो जैसे। सब क्रियाकर्म हो गए। स्वर्णिका की तरफ़ देखते हुए ही मन भर आता है। हर समय हँसते रहने वाली लड़की कैसी पत्थर बन कर रह गई है। नज़र मिलाने की हिम्मत ही नहीं हो रही। मन उस बादल की तरह हो गया जिसमें खूब सारा पानी भरा हो।

जिस तरह से लोगों की भीड़ जमा हुई थी, उसी तरह से एक-एक कर सब चले भी गए। बियायजी साहब का घर भी सूना हो गया और समय भी उनकी आँखों में ही जम कर रह गया किसी आँसू सा। बस तभी बियायजी ने कहा, "अब स्वर्णिका की देहरी छुड़ाने की बारी है।" बोलते हुए उनकी आवाज़ भर्रा गई। मैं उनको देखता रह गया, बोला कुछ भी नहीं।

तो वह ही फिर बोले, "क्या करें हमें तो अपना फ़र्ज़ निभाना ही होगा...जिसको जाना था वह तो चला गया... निर्मोही कहीं का....पर...?" उससे आगे उनसे नहीं बोला गया आँखें भारी हो गई और आवाज़ किसी पत्थर के नीचे दब कर रह गई।

बस तभी अपना हाथ उनके हाथ पर रख दिया, मन तो मानों दोनों का ही मन भर का हो गया था, 'अब यहाँ उसका बचा ही क्या है ?' सोचने लगा।

वह देर तक मेरी तरफ देखते रहे। हम दोनों की आँखें मिलीं और फिर वापस जुदा हो गईं। फिर काफी देर तक कोई कुछ भी नहीं बोला। इसी बीच चाय आ गई। हमने चाय के कप उठा लिए। पर फिर भी एक-दूसरे से नज़रें चुराते रहे। आमने-सामने बैठे होने पर भी एक दूसरे से अलहदा ही थे। गरम चाय को हम घूँट-घूँट पीने लगे। मानों ठहरे हुए समय को हलक के नीचे उतारने की कोशिश कर रहे हो। पर कोशिश के बाद भी वह उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था। वह तो मानों जम गया था बर्फ सा।

तभी स्वर्णिका किसी काम से वहाँ आई, उससे नज़र मिली तो वहाँ भी समय किसी भारी पानी के रूप में जमा हुआ नज़र आ रहा था। जो साफ दिखाई दे गया। पर ना तो वह एक भी शब्द बोली न ही मैं ही कुछ बोल पाया।

उन्होंने खाली कप टेबल पर रख दिया तो कप के साथ जैसे समय का वो टुकड़ा भी टेबल पर जमा हो गया हो।

"तो.....?" बियायजी साहब फिर बोले।

".....।" मैं कुछ भी नहीं बोला, बस उनको देखता रह गया।

"कब....?"

"देखो साहब!... मैं तो आज ही ले जाने की सोच रहा हूँ। पर मैं चाहता हूँ कि पहले उससे बात कर लूँ....फिर जैसा भी वह

कहेगी...उसी के अनुसार.....।" बाकी के शब्दों को यूँ ही अधूरा छोड़ दिया या फिर बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। और कमरे से बाहर निकल गया। बाहर आकर सोचने लगा, 'एक व्यक्ति के चले जाने से कितना कुछ बदल जाता है। पहले इसी घर में कितना हँसी-मज़ाक होता था। सब एक दूसरे की कुशलक्षेम पूछते थे, मान मनोव्वल होती थी। और आज सब कुछ जम गया है किसी गाढ़े शहद सा।' मन भारी हो गया। कुछ भी नहीं रहा दिमाग़ में। सारे के सारे चित्र न जाने कहाँ बिला गए।

बाहर आकर लंबी साँस ली, तो लगा कुछ राहत मिली है। अंदर बैठे हुए तो मानों दम ही घुटा जा रहा था। वहाँ तो जैसे साँस लेना भी दुश्वार हो गया था। पर इस तरह से अचानक बाहर निकल आना भी कहाँ तक ठीक है ? यह तो कूढ़ मगज की निशानी है। क्या करता जब कुछ भी नहीं सूझा तो....और ना चाहते हुए भी वहाँ से उठना पड़ा।

"चलो एक तरह से अच्छा ही हुआ, भले ही बियायजी साहब को अभी अच्छा नहीं लगा हो पर इससे शायद उनको भी राहत मिली होगी, जिस तरह से अभी मुझे मिली है। यह सही है कि जिस तरह से जाने वाला मेरी बेटी के जीवन उजाड़ गया, तो ठीक उसी तरह से वह उनके बुढ़ापे को भी तो निगल गया। इस सबका केवल मुझे ही दुख नहीं है, बल्कि इससे भी बहुत ज़्यादा उनको भी हो रहा होगा। यह अलग बात है कि वह इसको अपने ही अंदर दबाए हुए बैठे हैं। वह तो अपना दुख किसी से कह भी नहीं सकते हैं।' बस तभी अपने हाथों को अपने चेहरे पर घुमा लिया। इससे राहत मिली। मानों इन सारे विचारों को हाथों से अलग कर देना चाहता हूँ। पर ऐसे विचार अलग कहाँ होते हैं भला। वह तो हमेशा ही साथ रहते हैं और अपनी धीमी आँच में धीरे-धीरे पकाते रहते हैं।

बस तभी स्वर्णिका पास में आकर खड़ी हो गई। मैंने जब उसकी तरफ देखा तो वह भरी हुई थी। उसकी आँखों में भादों के बादल समाए हुए थे। मुझे डर लगने लगा कि यदि ज़रा भी कुछ कहा तो बरबस ही बरस पड़ेंगे। एक बार तो लगा, 'इनको बरस ही जाना चाहिए, ताकि मन का गुबार तो बाहर निकले।'

बस तभी ख़याल आया, 'ऐसा ही गुबार तो मेरी अपनी छाती में भी जमा बैठा है। वह कैसे बाहर निकले ?'

"पापा !.. आप बाहर क्यों आ गए ?"

"बस ऐसे ही....।"

"पानी लाऊँ आपके लिए.....?"

"नहीं..... बेटा.....!"

"....." वो कुछ देर वैसी ही भारी आँखों से देखती रही, फिर अपनी नज़रें हटा ली।

"बेटा ! अपने कपड़े लत्ते रख ले....तेरी देहरी छुड़ाने का कह रहे हैं.....!" बोलते हुए जैसे अचानक रुक गया, फिर कुछ देर के बाद याद करके या फिर हिम्मत जुटा कर बोला, "वैसे भी अब तेरा यहाँ पर कौन बचा है...? चल बेटा....समेट ले अपने कपड़े लत्ते....।"

स्वर्णिका की आँखों की कोरों से आँसुओं की लड़ी निकलने लगी थी। वह थोड़ी देर तक देखती रही ऐसे ही निर्विकार सी, फिर अपने आप को खोजते हुए बोली, "पापा ! यह मेरा भी घर है...वह चले गए हैं तो क्या हुआ...?" वह भरभरा कर रो पड़ी मानों अचानक बादल फट गया हो।

"बेटा....?"

"अभी तो चली चलती हूँ आपके साथ...पर कुछ ही दिनों में वापस लौट कर यहीं आऊँगी अपने इसी घर।"

"अब यहाँ पर तेरा कौन है, जिसके लिए तू वापस आएगी बेटा....?" बोलते हुए मेरी छाती भर आई थी।

"पापा ! यहीं मेरा सब कुछ है। यहीं पर मेरे जीवन का आधार है, मैं यहाँ पर उनकी ब्याहता बन कर आई थी.... और अब उनकी विधवा बनकर जी लूँगी ...।" बोलते हुए मेरे सीने से लिपट गई।

हम दोनों की आँखें गंगा-जमुना की तरह बह रही थीं। बस तभी मैंने उसके सिर को सहला दिया। मुझे लगा जैसे मैं खुद को सहला रहा हूँ।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

अनकहा कुछ

अरुणा सब्बरवाल

चर्च के घंटे को सुनते ही वह हड़बड़ा कर उठा। वह समझ नहीं पाया कि मन को इतनी शांति देने वाली आवाज़ आ कहाँ से रही थी। वह यह तो जानता था कि यह चर्च के घण्टे हैं। लेकिन चर्च है कहाँ? उसने मोटा पर्दा हटा कर खिड़की से देखा। बाहर कोहरा ही कोहरा दिखाई दे रहा था। फिर उसने जाली के पर्दे को हटा कर देखा। सब कुछ जैसे धुंध की परतों में लिपटा सा दिखाई दे रहा था। नवंबर का महीना था। पल भर को उसे लगा कि शायद बाहर बर्फ़ पड़ी है। फिर वह स्वयं ही विचार करने लगा कि बर्फ़ होती तो चारों ओर सफ़ेद चादर बिछी होती।

शायद यह आर्द्रता हो सकती थी जो ठंड के कारण घनी होकर बर्फ़ की तरह महसूस हो रही थी। उसने व्हील चेयर पर बैठे-बैठे ही हाथों से शीशे को साफ किया। बाहर एक खूबसूरत बगीचा था। बगीचे में सभी वृक्ष अनावृत खड़े थे। फिर भी कहीं-कहीं कुछ रंग-बिरंगे पतझड़ के पत्ते अभी तक झिलमिला रहे थे।

तभी अचानक दरवाज़े पर दस्तक हुई और सुबह की ताज़ा हवा की तरह एक आवाज़ सुनाई दी, "गुड मॉर्निंग, मिस्टर चोपड़ा।"

"ओह, उसने आने वाली महिला की ओर देखते हुए कहा, "प्लीज़ मुझे मिस्टर चोपड़ा नहीं, रोज़र कहिये। रोज़र... केवल रोज़र कह कर ही संबोधित करिए।"

"रोज़र? आप लगते तो इण्डियन हैं और बोलते भी आप हिन्दी हैं परन्तु नाम रोज़र कैसे?"

"यह भी एक मज़ेदार कहानी है। माँ का दिया नाम तो राघवेन्द्र था। यहाँ आया तो अंग्रेज़ों ने रोज़र रख दिया। उन्हें मेरे नाम का उच्चारण मुश्किल लगता था। अंग्रेज़ों की सहूलियत के लिये बाकी दोस्तों ने नाम बदला तो मैंने भी अपना नाम बदल लिया। नाम क्या बदला, सब कुछ बदल कर रह गया। हालात भी बदल गए। पढ़ने आया था। पॉण्ड्स के लालच में पढ़ाई छोड़ दी और फैक्टरी में शिफ्ट वर्क करने लगा। कितने सपने लेकर आया था मैं लंदन में। अब तो शायद अपने असली नाम का सही उच्चारण भी न कर पाऊँ।" इतना कहते ही उसकी आँख भर आई।

"मैं सिस्टर जूही हूँ। अब पता लगा कि आप सारा दिन कमरे में कैसे बिता लेते हैं। बाहर निकला करें, लोगों से मिलें।"

अरुणा सब्बरवाल
2, Russettings, Westfield Park,
Hatch End, Pinner HA5 4JF, U.K
London
मोबाइल- 07557944220
ईमेल- sab_arun@hotmail.co.uk

"मेरे पास एक साथी है न, संगीत। एक वही तो रह गया है मेरे पास। मैं उसके बिना नहीं जी सकता।"

थोड़ी देर बाद जाते-जाते सिस्टर सोचने लगी कि शायद वह किसी पुरानी चोट का मारा लगता है। कभी रोते-रोते हँस पड़ता है और कभी हँसते -हँसते उदास हो जाता है।

अगले दिन वह बाहर निकला। वृद्धाश्रम देख कर रोज़र हैरान था। वहाँ मरीज़ों की हर सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था। भव्य बैठक में आराम दायक सोफे, टेलिविज़न, भाँति-भाँति के खेल, चाय-कॉफी की सुविधाएँ, सभी कुछ तो था वहाँ। बिल्कुल घर जैसे। सब के लिये है। बुधवार दोपहर को तकरीबन सभी निवासी वहाँ हाई-टी के लिये एकत्र होते हैं ताकि एक दूसरे से जान-पहचान हो जाए। जो स्वयं आने की स्थिति में नहीं होते, उन्हें स्टॉफ लाने की कोशिश करता है। वृद्धाश्रम मल्टीफेथ वरशिप सेंटर भी है। जहाँ जो चाहे, जब चाहे जाकर अपनी आस्था, अपने धर्म के अनुसार प्रार्थना कर सकता है।

बाहर निकलते ही उसने वहाँ एक सुंदर बगीचा देखा। उसमें रंग बिरंगे फूलों की क्यारियाँ थीं। विविध प्रकार के वृक्ष खड़े थे। वहाँ सेब, नाशपती और अंजीर के वृक्ष भी थे। शरद ऋतु होने के कारण सभी पौधों और वृक्षों से पत्ते झड़ चुके थे, टहनियाँ खाली थीं। वहाँ बैठने के लिये बैंच और आरामदायक कुर्सियाँ भी पड़ी थीं।

रोज़र वहीं बैठ कर प्रकृति का आनन्द लेने लगा। मुकेश का गाना गुनगुनाते हुए अचानक उसकी आँख लग गई। लेकिन जल्द ही साँस की सर्द हवा ने उसे जगा डाला। उसने घड़ी देखी, शाम के भोजन का समय हो गया था। अब यहाँ उसे अच्छा लगने लगा था।

कुछ दिन से वृद्धाश्रम में बहुत हलचल होने लगी थी। लगता था जैसे सभी में स्फूर्ति का संचार होने लगा हो। नया चहकता-महकता वातावरण था। जिन मरीज़ों के चेहरों पर हमेशा उदासी छाई रहती थी, अब उन्हीं के चेहरे मुस्कराने लगे थे। वातावरण में इतना बदलाव देख कर स्टॉफ रूम में बैठी नर्सें तथा अन्य कर्मचारी असमंजस में थे कि यह सब हुआ कैसे। क्योंकि यहाँ जो भी आता है, चेहरे पर एक अजीब सी उदासी लेकर आता है। वह अपनी-अपनी यातनाओं से जूझ रहा होता है, जिन्हें कोई दूर तो नहीं कर सकता किंतु दो-चार घड़ी उनके पास बैठ कर उनके दु:ख ज़रूर बाँट सकता है। सभी की अपनी-अपनी वेदना है। सब जानते हैं कि वे यहाँ आये क्यों हैं। एक कर्मचारी ने बताया, "यह सब रोज़र का करिश्मा है। रोज़र सबसे मिलता-जुलता है, उनकी बातें सुनता है।" उसके आचार-व्यवहार से सभी प्रभावित थे।

कल शाम को टहलते-टहलते हुए उसने रिसेप्शन से हॉस्पिस के कुछ लीफलेट्स उठा लिये। पल भर के लिये वह समझ नहीं पाया। उसे सब कुछ धुँधला-धुँधला दिखायी दे रहा था। वह चश्मा लगा कर पढ़ने की कोशिश करने लगा। इससे पहले एक-दो बार उसने हॉस्पिस शब्द कहीं लिखा तो देखा था किंतु उसने कभी उस पर ग़ौर नहीं किया था। लेकिन अब बीस बार पढ़ने पर भी उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह जो कुछ पढ़ रहा था, वह सच था। पढ़ने पर उसे पता चला कि वह कोई अस्पताल या होम नहीं था और न ही कोई वृद्धाश्रम था। ...वह तो हॉस्पिस था, हॉस्पिस ....एक परोपकारी संस्था। लोग यहाँ जीवन के अंतिम पड़ाव पर आते हैं। उन्हें यहाँ भावनात्मक, सामाजिक, आध्यात्मिक और आर्थिक सहायता नि:शुल्क प्रदान की जाती है। उनका उद्देश्य है रोगियों के बचे हुए जीवन को सर्वोत्तम ढंग से जीने के लिये सहायता करना और उनके जीवन में कुछ और दिन जोड़ना। यह देखभाल उनके घर और अस्पताल व क्लिनिक में भी दी जा सकती है। कितनी अवधि के लिये कोई यहाँ रह सकता है, यह अलग-अलग हॉस्पिस पर निर्भर करता है। ....यहाँ रोगियों के धार्मिक व सांस्कृतिक अनुभवों का आदर किया जाता है... उनकी आत्मनिर्भरता के लिये उनके रचनात्मक...कलात्मक हितों का भी ध्यान रखा जाता है। ... अंतिम अवस्था में रोगी को यह विश्वास होना बहुत आवश्यक है कि वह अकेलेपन में नहीं मरेगा। ... यह उनकी अंतिम कड़ी नहीं, सहायता की पहली कड़ी है और भी बहुत कुछ लिखा था उसमें।

... ओह, तो यह मरणासन्न व्यक्तियों का आश्रम था, मरणासन्न रोगियों का अस्पताल। अब उसे समझ आया कि यहाँ आने के बाद उसे कोई डॉक्टर देखने क्यों नहीं आता था। क्यों कोई उसे दवा नहीं देता था। क्योंकि यही यहाँ की व्यवस्था थी, यहाँ का नियम।

वह पूरा पढ़ भी नहीं पाया था कि उसका दिमाग़ चक्करघिन्नी की तरह घूमने लगा। वह गुस्से में अपने मित्र देव को कोसने लगा, जो उसे यहाँ छोड़ गया था। "... साला बता तो देता, कोई सामान समझ कर छोड़ गया है उसे यहाँ मरने के लिये। कहता था वृद्धाश्रम है...इतना बड़ा धोखा?"

रात भर कई सवाल उसके इर्द-गिर्द मँडराते रहे, रात भर वह सवालों में उलझा रहा। अतीत में विचरते-विचरते सोचने लगा, 'आज अगर उसका परिवार होता तो उसके साथ खड़ा होता। आशा तो हमेशा कहती थी कि घर का मतलब सिर्फ़ दीवार-छत और फ़र्ज़ नहीं होता, किंतु मैं तो औरत को 'देने' के अहंकार से कभी मुक्त ही नहीं हो पाया। बस, बात-बात पर पीटना और गालियाँ देना मेरी आदत सी बन गई थी।'

उसे याद आया कि उस दिन वह बहुत रोयी थी। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गई थीं। अपने आँचल को मुँह में ठूँस सिसकियाँ रोकने की चेष्टा करती रही ताकि बच्चे न सुन लें। वह एक ठहरी हुई पहाड़ी बन चुकी थी। उसकी खुद्दारी इतनी घायल हो चुकी थी कि अब उसे परिवार के सम्मुख अपने चित्त विचार की स्वीकृति का भय नहीं था, न ही समाज की चिंता थी उसे।

एक दिन रोज़मर्रा की इस जहालत से तंग आकर आशा ने आक्रोश में जल्दी से रोहन व रुचि को अपने साथ लिया, अपना सामान बाँधा और पूरी दृढ़ता के साथ उसे अपना निर्णय सुना दिया, "मैं जा रही हूँ। मैं बच्चों पर तुम्हारे संस्कारों का प्रभाव नहीं पड़ने दूँगी।"

इतना कह कर वह चली गई। मैंने भी अहंकार में कह दिया "जाओ, कौन परवाह करता है। लेकिन एक बात सुन लो, अपने मर्ज़ी से जा रही हो, तो लौट कर मत आना।"

आशा बार-बार अपने पीछे छूटते घर को मुड़-मुड़ कर देखती रही। बहुत कुछ था जो पीछे छूट रहा था। सिर्फ़ मकान नहीं बल्कि घर भी जिसे उसने तिनका-तिनका करके बनाने की कोशिश की थी।

लेकिन थोड़ी दूर जाने के बाद उसने वापस पलट कर नहीं देखा। वह उसे जाते देखता रहा। फिर उसने झट से ताला बदल लिया।

'काश! उस दिन मैं आशा को रोक लेता।' अचानक ही उसके मन में विचार आया जो अक्सर उसे आकर घेर लेता था।

..... सुबह के दस बज चुके थे। अभी तक उसके कमरे से कोई आवाज़ नहीं आई थी। आजकल वह रोज़ टूटता...बिखरता है और बिस्तर में दफन हो जाता है- एक नई ज़िंदगी की तलाश में। वह अपनी कमज़ोर ज़मीन से परिचित था। वह जान चुका था कि अब उसके कैंसर का आख़िरी पड़ाव था। झूठा आवरण अचानक उसके सामने से हट चुका था। पता नहीं क्यों, अचानक ही वह चुपके से रोने लगा। उसके कानों में वही शब्द गूँजने लगे जो उसने लीफ-लेट्स में पढ़े थे। वह मरणासन्न रोगियों का आश्रम था...मरणासन्न रोगियों का अस्पताल। वह चुप रहने वाला तो कतई नहीं था। सभी हैरान थे कि वह तो सुबह-सुबह चाय न मिलने से बेचैन हो उठता था, उसे चाहिए भी पी.जी. टिप्स नाम का चाय का एक विशेष ब्रैण्ड ही था। कभी-कभी ज़िद्द में आकर वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता।

लेकिन उस दिन सब हैरान थे। जब जूही उसकी चाय ले कर आई, वह गुम-सुम बैठा था।

"रोज़र, बाहर देखा आज, कितने दिनों के बाद धूप खिली है। सब कुछ चमक रहा है। आज तो बाहर बैठने का दिन है। गिलहरियाँ भी खुशी के मारे एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर फुदक रही हैं।" इतना कह कर जूही चली गई। जाते-जाते उसके मेज़ पर पड़े हॉस्पिस के लीफ-लेट्स ने रोज़र के चिड़चिड़े मूड को बयान कर दिया।

दूसरे दिन न जाने कब वह अपने आप को

घसीटता हुआ बाहर बगीचे में आराम कुर्सी पर जा बैठा। वह कभी हँस देता, कभी मुस्कराने लगता और फिर कभी उदास हो जाता। आज इतवार था। उसने देखा, लोगों के रिश्तेदार उन्हें मिलने आ रहे थे। बगीचे में बड़ी हलचल थी। लेकिन वह वहाँ अकेला था-निपट अकेला। कोई नहीं था उसके पास। अभी तक कोई उसे मिलने नहीं आया था।

पुरानी यादों का नश्तर अचानक उसे चुभने लगा। उसके भीतर की पीड़ा उसकी आँखों में दिखने लगी थी। उसने खुद को बरबस रोक रखा था। सब हैरान थे। इतनी उम्र हो गई, क्या उसका कोई परिवार नहीं है। उसने अपने बारे में कभी किसी का कुछ नहीं बताया। अभी तक रोज़र मौत की सोच से उभर नहीं पाया था। वह औरों को देख कर ही मन को समझा लेता, सोचता 'अगर वे लोग हालात से समझौता कर सकते हैं तो मैं क्यूँ नहीं? मौत तो अटल है...एकदम शाश्वत। एक दिन सभी को आनी है। आज तक कोई जन्म-मरण को टाल नहीं सका, तो भय कैसा? हॉस्पिस जैसी संस्थाएँ चल ही रही हैं परोपकारी लोगों की निष्काम भावना से। और मैं? मैं तो अपना परिवार भी न चला पाया।'

बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभी भी उसके पास समय था कुछ सार्थक करने का....।

उसे आज की सुबह और दिनों से अलग लगी। एक ताज़गी भरी सुबह। जो रोम-रोम को पुलकित कर देती है। 'मगर सुबह कैसे अलग हो सकती है। सुबह की प्रकृति तो एक ही है। बदला तो मैं हूँ।' इतना कह कर वह मुस्करा उठा।

आजकल रोज़र अपने कमरे में कम, हॉस्पिस का अन्वेषण करने में ज़्यादा समय बिताता है। हॉस्पिस का वातावरण विपरीत सा हो गया है। सभी रोगी बुधवार की प्रतीक्षा करने लगे हैं। उसने बुधवार की हाई-टी का ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया है। वह रोगियों को चुटकुले, कहानी, कविता, संस्मरण के लिये प्रोत्साहित करने लगा है। लगभग सभी रोगी अपने दु:खों को एक ओर रख अपनी अनमोल और खूबसूरत यादें आपस में बाँटने में लगे हैं। उनमें नूतन संचार उत्पन्न हो गया है। यह कहना भी ग़लत न होगा कि हॉस्पिस का कायाकल्प हो गया है। यही तो हॉस्पिस का उद्देश्य है।

.....नींद से जूझते रोज़र को बारह बज चुके थे। वह बैठक में बैठ कर किताब पढ़ने लगा। रीटा और जूही रात की ड्यूटी पर थीं। वार्ड का चक्कर लगाते समय जूही रोज़र को बैठक में देख कर उसके करीब बैठ गई। कुछ पल संवादहीन से गुज़रे। दोनों उस चुप्पी में अर्थ ढूँढ़ने लगे।

"रोज़र, मुझे लगता है कि तुम्हारी ख़ामोशी कुछ कहना चाहती है। तुम चाहो तो मेरे सामने अपने मन की गाँठें खोल सकते हो।" जूही ने स्नेह से कहा।

रोज़र ने स्थिर निगाह से एक बार उसकी ओर देखा और फिर मुस्कराते हुए बोला, "जो दूसरों के मन की बात जान ले, वह चतुर है। जो अपने आप को जान ले, वह आत्मज्ञानी। मैं तो इनमें से किसी भी फ्रेम में फिट नहीं होता।"

"कोशिश करके तो देखो, हल्का महसूस करोगे। बाकी आपकी इच्छा है।" जूही धीरे से बोली।

रोज़र जूही के प्रबल आग्रह को नकार नहीं सका। उसकी आँखों में अतीत घुमड़ रहा था। एक लंबा कड़वा अतीत। अतीत का झरोखा अनायास ही उसके सामने खुलता चला गया और उसके सामने अतीत एक चलचित्र की भाँति उभर आया। आँखों में उमड़ आने को आतुर अपने आँसुओं को रोकते हुए वह

बोला, ''जूही, रिश्ते पौधों की तरह होते हैं। अगर उन्हें समय-समय पर पानी न दिया जाए तो वे मुरझा जाते हैं। जब हमारा यानी मेरा और आशा का विवाह हुआ तो वह एक अधखिली कली की तरह थी। उसकी शरारत भरी आँखें, उसका अलहड़पन और छल-कपट से अनजान उसकी बातों ने मेरा मन मोह लिया था। मैंने उससे शादी करने की ज़िद्द पकड़ ली। मैं एक अमीर बाप का बेटा और आशा मध्यमवर्गीय परिवार से थी। एक अमीर परिवार से आए रिश्ते को उसके माँ-बाप ठुकरा न सके और वह भी बिना दहेज के। उनके लिये तो यह सोने पर सुहागा था। विवाह होते ही एक धनी माँ-बाप के बेटे ने उस अधखिली कली को खिलने से पहले ही कुचल डाला। मैं यह सब चाहता तो नहीं था किंतु भारतीय धनवान परिवार में पैदा होकर हर मौके का फायदा उठाया मैंने। बचपन से ही मेरे दिमाग़ में यह घोल-घोल कर पिला दिया गया था कि तुम तो लड़के हो, तुम्हारे हज़ारों गुनाह माफ हैं। एक पढ़ी-लिखी लड़की को झूठ बोल कर अनपढ़ लड़के से बाँध दिया गया था। वह अगर कभी सही भी होती तो मेरा अहम् आड़े आ जाता और दो-चार थप्पड़ जड़ कर उसे चुप करा देता। मैंने वही किया जो मैंने अपने घर में अपने पिता को मेरी माँ के साथ करते देखा था। पढ़ा-लिखा होता तो शायद मैं स्थिति को आँकता भी, उसे समझने का प्रयास भी करता। सार्थक तर्क-वितर्क करता। लेकिन मैं तो पौरुष की मानसिकता से ग्रस्त था। उस वक्त न तो मैंने अपनी भावनाओं को समझने का कभी प्रयास किया और न ही उसकी पीड़ा को समझने की कोई कोशिश की। मैं.... मैं .... मैं के अतिरिक्त मैंने अपनी ज़िंदगी में कुछ सीखा ही नहीं। अब पछतावा भी कैसे करूँ? वक्त अब उल्टा चलने वाला तो है नहीं। काश कि मैं वक्त को मैं वापस लौटा पाता। काश कि अपने बच्चों को मैं सीने से लगा सकता। काश कि मैं आशा का हाथ पकड़ कर उससे क्षमा माँग सकता। काश कि अपने बिखरे हुए घर को समेट पाता। काश....।''

कहते-कहते उसका गला रुँध गया। ''सॉरी जूही'' कह कर वह अपने कमरे में चला गया।

... अब तो रोज़र हॉस्पिस में अच्छी तरह बस चुका था। रविवार का दिन था। कुरमुरी सुबह। एक ताज़गी भरी सुबह। ऐसी सुबह जिसे आप अपने सीने में मचलते हुए महसूस करते हैं। जिसकी महक आपके रोम-रोम को पुलकित कर देती है। आप किसी पंछी की तरह उड़ने को बेताब हो जाते हैं। रोज़र को आज देव का बड़ी बेसब्री से इंतज़ार था। देव उसके बच्चों की ख़बर लाने वाला था। वह भी तैयार होकर बगीचे में बैठ गया। क्रिसमस करीब ही था। लोगों के रिश्तेदारों का ताँता लगा था। अँधेरा हो चला था। रोज़र किसी गहरी सोच में पहुँच गया। देव अभी तक नहीं आया था, जिसका उसे इंतज़ार था।

''मिस्टर रोज़र, अंदर चलें?'' जूही ने उसकी सोच की कड़ी को तोड़ा।

''हूँ ...देव आ गया क्या? ... कोई ख़बर लाया?'' उसने उत्सुकता से भर कर कहा। सिस्टर ने केवल सिर हिला भर दिया। साँझ के धुँधलके की तरह उसके मन में भी अँधेरा छा गया था। जूही रोज़र को उसके कमरे में ले गई। पानी पिलाया, थोड़ा रुक कर स्नेह से पूछा, ''आपका दोस्त देव कौन सी ख़बर लाने वाला था, मिस्टर रोज़र? ''

''मेरे बच्चों की...''

''बच्चों की?''

''हाँ, मैं उन्हीं बच्चों को अब ढूँढ़ रहा हूँ, जिन्होंने अपनी माँ के आँसुओं को अपने रुमाल से सुखाया था। अक्सर अपनी माँ के प्रति मेरा बर्ताव देख कर वे बेचारे सहम जाते थे, मानों कुछ पूछ रहे हों। उनकी ख़ामोश और मासूम आँखों में तैरते सवालों का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। बिस्तर में सोते वक्त कोई थपकी भी काम नहीं आती थी। उन्हें घंटों सुबकते देख कर मैं हर बार प्रण लेता था कि आगे से ऐसा नहीं होगा, नहीं पीटूँगा पत्नी को अब... उनकी माँ पर हाथ नहीं उठाऊँगा किंतु एक अहम् था जो हर बार मेरे आड़े आ जाता। मैंने उम्र भर उन्हें अपने से दूर रखा, कभी मिलने तक का प्रयास नहीं किया। अब उन्हीं को ढूँढ़ता फिरता हूँ। आज अगर वे अचानक मिल भी जाएँ, तो मैं शायद उन्हें पहचान भी न पाऊँगा। आज तक मैंने अपने दोनों बच्चों के लिये कुछ नहीं किया। बेटी की शादी में रत्ती भर का सहयोग नहीं किया। बेटे का तो चेहरा भी मुझे याद नहीं। मानव स्वभाव भी कितना जटिल होता है, सिस्टर। कब...क्या जटिलता पैदा कर दे, कोई नहीं जानता। मुझे मेरे अहम् ने इतना खुदगर्ज़ बना दिया। मैं रिश्तों की तिलांजलि देते-देते खाली हो गया। कितना सालता है यह खोखलापन... मैं ही जानता हूँ। सिस्टर जूही... क्या आपको किसी ऐसी एजेंसी का पता है जो मेरे बच्चों को ढूँढ़ दे?''

''हाँ, पुलिस है...सालवेशन आर्मी है, इसके अलावा प्राइवेट एजेंसीस भी तो हैं यहाँ...शायद कोर्ट से पता लग सकता है। बच्चों को मेंटेनेंस तो दी होगी न आपने?'' जूही के एक छोटे से शब्द 'मेंटेनेंस' ने उसे अपराध बोध से भर दिया। उसने शर्मिंदगी से अपना सिर झुका लिया।

आजकल कुछ दिन से उसकी तबीयत ख़राब रहने लगी थी। मौत का डर उसे खाए जा रहा था। आज रोज़र के जनरल प्रेक्टिशनर, डॉक्टर स्मिथ को बुलाना पड़ा। डॉक्टर ने स्टाफ को रोज़र की स्थिति समझाते हुए उसका पूरा ध्यान रखने को कहा और संकेत से उसके रिश्तेदारों को भी सूचित करने को कहा। वह थोड़ा बेचैन था... न जाने उसके भीतर क्या उथल-पुथल चल रही थी। शायद उसका अंतर्मन जाग उठा था। वह उदास...ग़मगीन सा रहने लगा था। उसने स्टाफ से कह ही दिया कि वह क्रिसमस अपने घर पर मनाना चाहता था। लोगों ने उसे बहुत समझाया कि सब तुम्हें मिस करेंगे। किंतु उसने ठान लिया।

उसके दोस्त देव को हॉस्पिस वालों ने उसका घर व्यवस्थित करने को कहा। देव रोज़र के बच्चों को ढूँढ़ने के लिये बहुत से संगठनों और संस्थाओं से संपर्क कर चुका था किंतु निराशा ही उसके हाथ आई थी। अचानक उसे याद आया कि एक दिन उसका बेटा विवेक किसी रोहन चोपड़ा से बात कर रहा था। विवेक से पूछने पर उसने देव को बताया था कि रोहन तो उसका क्लासफेलो

था। विवेक से उसे रोहन के बारे में सारी जानकारी मिल गई थी। अब देव खुश था। वह रोज़र को सरप्राइस देना चाहता था।

रास्ते में देव ने रोज़र को संकेत दे दिया था। बच्चों का पता लगने की बात सुनकर छोटा सा संतोष उसके मन में हिलोरें लेने लगा था। घर पहुँचते ही देव और रोज़र ने क्लीनर को बुला कर पूरा घर साफ करवाया। उसने दोनों बच्चों के क्रिसमस प्रेजेंट, ऐपल के लैपटॉप देव से मँगवा लिये थे। वह खुश था। उसकी आँखों को अपने बच्चों की झलक पाने का बड़ी बेसब्री से इंतज़ार था। इस बार वह क्रिसमस गिफ्ट अपने बच्चों को अपने हाथों से देना चाहता था। वह घबरा भी रहा था कि कहीं उसके बच्चे उससे मिलने से मना न कर दें, कहीं उसका दिल टूट न जाए। समय के साथ-साथ उसकी हालत ख़राब होती चली गई।

"रोज़र प्लीज़ होल्ड ऑन... तुमने जहाँ इतना इंतज़ार किया है, थोड़ी देर और रुक जाओ... अभी कैसे जा सकते हैं, यार। बच्चे रास्ते में हैं...।" देव ने भीगी आवाज़ में कहा।

इधर लंदन में बर्मिंघम के एम सिक्स, मोटर वय में भारी जाम था। ट्रैफिक चींटी की भाँति रेंग रहा था। उन्हें चिंता होने लगी कि इस स्थिति में वे पहुँच भी पाएँगे कि नहीं।

"रुचि, मुझे तो ऐसा लग रहा है जैसे मेरे भीतर मेरा बाप नहीं, कोई अजनबी आदमी है जिससे शायद मैं पहले कभी मिला ही नहीं। कभी ख्वाहिश भी नहीं हुई। आज बीस वर्ष बाद उससे मिलने जा रहा हूँ।"

"मुझे भी ऐसा ही लग रहा है। मुझे तो उनकी सूरत भी याद नहीं, रोहन भैया। आप बड़े हो, आपको तो याद होगा।" रुचि ने पूछा।

"नहीं रुचि, कई बार हाशिये में ठिठके हुए रिश्ते भी हमारे जीवन का हिस्सा होते हैं। चाहे वो हिस्सा कितना छोटा ही क्यों न हो।" रोहन ने उत्तर दिया।

रोज़र खामोशी की जुबान से बड़बड़ा रहा था। मौत का भयावह चेहरा उसे घूर रहा था। कुछ क्षणों की चुप्पी के बाद उसके मन में दर्द का एक ज्वार उठने लगा, "देव तुम्हें नहीं पता... यूँ तो सभी संभावनाओं पर मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है। फिर भी न जाने

क्यों, मेरा साहस जवाब देता जा रहा है। अब तो बच्चों से मिलना भी व्यर्थ लगने लगा है। मैं उनसे माफी भी नहीं माँग सकता। सोचता हूँ यह तो ज़बरदस्ती की बात है, जो छूट गया, वो छूट गया। टूटे हुए शीशे कभी जुड़ते नहीं।"

धीरे-धीरे अनेक धुँधली स्मृतियाँ अतीत के कैनवस पर उतरने लगीं। आँसुओं से उसकी आँखें डबडबा आईं। वह सोचने लगा, 'मैं मुकम्मल होते भी नामुक्कमल रहा... अधूरा। आशा इंसान को तोड़ देने वाले सख्त हालात में भी मुक्कमल रही...। आशा रोशनी बन कर आई थी, आँसू बन कर चली गई। आशा, तुम कब की जीत चुकी हो। क्या कोई अपने परिवार से भी नितांत अपरिचित हो सकता है? घृणा होती है मुझे खुद से। लेकिन एक बात मैं समझ गया हूँ। इस पाप से रिहाई न मुझे मिलेगी, न मेरे अवशेषों को। जन्म-जन्मांतर मुझे इसी तरह भटकाव में रहना होगा... इसी तरह।'

अभी भी उसकी आँखें दरवाज़े पर टिकी थीं। पश्चाताप के भाव उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। रोज़र के प्राण खिसक रहे थे। दिल की गहराई में अब भी रोहन और रुचि मौजूद थे। डूबती आवाज़ में वह बोला, "वक्त किसी का उधार नहीं रखता...समय आने पर सारा हिसाब चुकता कर लेता है।" फिर ड्राइव में कार की आवाज़ सुनते ही रोज़र ने धीमे से कहा, "रो.....ह....न, मेरा बच्चा रोहन...." कहते कहते उसने प्राण त्याग दिये।

तभी दरवाज़ा खुला। रोहन और रुचि ने घर में घुसते ही रोज़र की ओर देखा। वहाँ मौत का सन्नाटा पसरा हुआ था। देव अंकल ने गर्दन हिला कर इशारे में बता दिया कि अब वह नहीं रहे। वे दोनों चुपचाप भावहीन वहीं खड़े रहे। कुछ देर तक रिक्त आँखों से रोज़र को निहारते रहे। चाह कर भी कुछ नहीं कह पाये। शायद उनका रिश्ता सिर्फ नाम का था। उसमें लगाव कभी पैदा ही न हो सका।

कुछ देर बाद देव अंकल ने रोहन को चाबी देते हुए कहा, "सोचो, आगे क्या करना है?" दोनों कुछ देर के लिये ऊपर चले गए। जैसे ही दोनों ने अपना-अपना कमरा खोला, देख कर चकित रह गए। कमरों में सारा सामान जैसे का तैसा रखा था। दोनों के कमरों में उनके बीस वर्ष के जन्म दिन और क्रिसमस के तोहफे बड़ी तरतीब से सजा कर रखे थे। देख कर दोनों स्तब्ध और नि:शब्द खड़े रह गए। सोच रहे थे कि यह कैसा पिता था....जो चाह कर भी बच्चों को खोज कर उन्हें उपहार भेजने की हिम्मत नहीं जुटा सका। दोनों अपने-अपने कमरों की दहलीज़ों पर खड़े थे...एक गहरा मौन फैला हुआ था उनके इर्द-गिर्द। दोनों कुछ कहना चाह रहे थे लेकिन कह नहीं पा रहे थे। कुछ पूछना चाह रहे थे लेकिन पूछ नहीं पा रहे थे। उनकी आँखों में बस एक प्रश्न लटक रहा था।

रोहन और रुचि सिर झुकाए नीचे आये। रोहन ने सभी को संबोधित करते हुए कहा, "इतना प्यार करके भी पापा ने रिश्तों में दीवार खड़ी कर रखी थी। आज मैं जान गया हूँ, उनकी भावनाएँ अनकही ही रहीं। हमारे बीच सच्चाई तो यही है कि वह हमारे पिता थे। ज़िंदगी में कुछ रिश्ते दूर रह कर भी कच्चे धागे की तरह बँधे रहते हैं। मैं पापा का अंत्येष्टि संस्कार करके अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा ...।" उसने नम आँखों से कहा।

इतना कह कर वह अचानक मुड़ा ही था कि दरवाज़े की ओर उसकी नज़र गई।.....वह स्तब्ध रह गया...एकदम अवाक्।

दरवाज़े पर उनकी माँ खड़ी थी....अपना पल्लू मुँह में ठूँसे !!!

000

मन का कोना

नीलिमा शर्मा

हर तरफ अँधेरा था। यूँ तो जब से होश सँभाला खुद को अँधेरे में पाया था। पानी से भरी उस गहरी खाई में मेरा अस्तित्व था भी या नहीं मुझे नहीं मालूम था। मैं कभी मंज़िल पा सकूँगी या नहीं इतना भी नहीं मालूम था। तलवार की नोंक पर मेरी ज़िंदगी थी। मेरे दिमाग़ के किसी सुप्त कोने में यह बात कहीं जाग्रत रही कि मेरे होने को दिल से स्वीकार नहीं किया गया था। मम्मा तो हतप्रभ ही रह गई थीं, जब उनको मेरे अस्तित्व में आने का पता चला था। उन्होंने पापा के साथ धीमी आवाज़ में कितना झगड़ा किया था। मेरे आने के सारे ज़िम्मेवार जैसे पापा अकेले ही थे। पापा ठहरे दबंग आदमी कैसे सुन लेते भला। उनके लिए तो यह उनकी लाइफ का बेस्ट मोमेंट था आख़िर उनका अपना एक अंश अस्तित्व में आने को था।

धीरे-धीरे यह ख़बर हर तरफ फैली। अभी मम्मा के हाथों से लाल चूड़ा भी नहीं उतरा था और वो मम्मा बनने वाली थी। दादी ने कोई उजला दिन देखकर उनका चूड़ा उतरवा दिया था। मैं महसूस कर रही थी कि मेरे आस-पास सब बहुत खुश थे। हर तरफ से मम्मा को हिदायतें दी जा रही थी कि ऐसा नहीं करना, वैसा नहीं करना। मम्मा का मन खुश नहीं था, लेकिन बाकी सबकी ख़ुशी के भाव मुझ तक पहुँच रहे थे। दूसरे माह तक मम्मा बहुत उदास रही। रोज़ाना फ़ोन पर मासी और नानी से देर तक बातें करती रहती थी। फिर धीरे-धीरे उन्होंने भी इस सच को स्वीकार कर लिया कि वो एक जीव को इस धरती पर लाने का माध्यम बन रही हैं।

पापा तो कितने केयरिंग हो गए थे। रसोईघर में फल, मेवे, हरी सब्ज़ियों के ढेर लगे रहते थे। मम्मा को नए-नए कपड़े पहनने का बहुत शौक था। अब उनके लिए नए कपड़े बनते, कभी नए जूते आते कि यह आराम देह हैं यह पहनो। निम्मो बुआ ने मम्मा के लिए दिल्ली से गाउन भी मँगवा लिए थे।

नीलिमा शर्मा
सी 2/113, जनकपुरी, नई दिल्ली-58
मोबाइल- 8510801365

ऐसा नहीं था मैं उनके घर की पहली संतान थी। पापा के बड़े भैया के घर में भी दो बेटियाँ थी। निम्मो बुआ से बड़ी पम्मी बुआ भी थीं जो अमेरिका में सेटल हो गई थीं। निम्मो बुआ का तलाक हो चुका था क्योंकि वह माँ बनने में असमर्थ थीं इसलिए वह भी यही सबके साथ रहती थीं। मम्मा की प्रेग्नेसी का सुनकर सबका उत्साह देखते ही बनता था। मुझे कई बार गर्व होता था कि जब मैं जन्म लूँगी, आस पास कितने अच्छे लोग होंगे न।

कुछ दिन बाद मम्मा ने बात बेबात ज़िद करनी शुरू कर दी थी "यह नहीं खाना, वह नहीं पीना" थकी न होने पर भी थक गई हूँ का बहाना बनाकर कमरे में अकेली पड़ी टी वी देखती रहती। जबकि मेरा मन चाहता था कि आस पास की सब आवाज़ें भी मुझे सुनाई दे।

एक दिन पड़ोस की कांता मासी ने कच्चे नारियल की मींगनी लाकर दी कि यह तीन दिन रोज़ाना सुबह कच्चे दूध के साथ लेनी हैं, बेटा होने के पूरे चांस होंगे। बशर्ते नमक नहीं खाना है। कभी किसी की न सुनने वाली मम्मा ने तीन दिन तक नमक नहीं खाया। मेरा मन भीतर ख़राब होता था लेकिन उनको तो बेटा चाहिए था। एक दिन बड़ी मासी ने किसी पीर की दरगाह से लाया धागा मम्मा की बाँह पर बाँध दिया था। एक बार तो मम्मा को उनकी सहेली ने मोरपंखी दवा खिलाई थी। अजीब से स्वाद की उस दवा को खाने से मम्मा को उल्टियाँ शुरू हो गई। मम्मा ने किसी को भी इसका कारण नहीं बताया और पापा ने अब निम्मो बुआ की ड्यूटी लगा दी थी कि मम्मा के खाने-पीने का ख़याल रखा जाए।

मम्मा को जब भी दूध पीने को दिया जाता तो वो सिर्फ उस गाय का दूध पीती थीं जिसका बछड़ा था। बछिया वाली गाय का नहीं। यह तो शुक्र था कि घर में तीन गाय एक भैंस थी। दूध बाहर से नहीं आता था। "मुझे बाकी गाय के दूध से महक आती है" का बहाना खूब चल गया था। सच कहूँ तब तक तो मुझे भी नहीं पता था कि मैं नर भ्रूण हूँ या मादा।

निम्मो बुआ ने रंग बिरंगे बेलों वाले स्वेटर बुनने शुरू कर दिए, छोटे छोटे झबले सिलने शुरू हो गए। पुरानी चादर फाड़ कर दादी ने

खेसियाँ सिलनी शुरू कर दी। चाहे मुझे गर्मी के मौसम में आना था लेकिन तैयारी दोनों मौसम की थी। गोया मैं कोई ऐसी जनता ट्रेन हूँ जिसका पहाड़ पर आने का वक़्त तो सुबह का है और लेकिन रात को आ रही है।

दादा जी ने घर में सबको हिदायत दे रखी थी कि ख़बरदार जो किसी ने उनकी बहू रानी से कोई काम कहा या परेशान किया। ताई जो दिल्ली रहती थी सर्दी की छुट्टियों में जब घर आईं तो मम्मी के साथ समय बिताने लगी थीं। उनकी दो बेटियाँ थीं और दोनों बेटियों में दो बरस का फ़ासला था। एक बेटे की चाह ने उनको अजीब सा कड़वा बना दिया था। बाद में मुझे मालूम हुआ था कि बेटे की चाह में ताईजी ने दो बार अबोर्शन कराया था। एक पल को मीठी बातें करती-करती कब वो विष उगल दें, कहा नहीं जा सकता था। मुझे मम्मा का ताईजी के साथ बैठना ज़रा नहीं सुहाता था। तन की गोरी मन की काली ताईजी मेरी मम्मा के साँवले रंग पर अपनी कलुषिता का रंग चढ़ाकर जैसे प्रसन्न होती थीं।

शायद भीतर से तो ताई चाहती थीं कि बिटिया ही हो ताकि उनका वट कम न हो जाए। लेकिन सबके सामने कहतीं "माता रानी नीता को बेटा ही देना, कम से कम कोई बहू तो इस घर के वारिस को जन्म दे। नहीं तो कल को जँवाई आकर सब जायदाद ले जाएँगे।"

तब दादी ज़ोर से ग़ुस्सातीं और कहतीं "सब लड़कियाँ अपनी किस्मत लेकर आती हैं, तुम भी किसी की बेटी हो न, फिर क्यूँ बेटी का होना अशुभ मानती हो। बेटा या बेटी जो भी हो सब मंज़ूर। आख़िर पहला बच्चा है इनका।"

पापा अक्सर मम्मा के पेट पर हाथ रखकर कहते "मेरे राजा बेटे को भूख लगी ? जल्दी जल्दी आजा मेरा बच्चा, तुझे पापा रोज़ाना घुमाने ले जाएँगे।"

पापा खूब बातें करते थे, लेकिन मम्मा डरी-डरी ख़ामोश सी रहतीं। लेकिन जब मैं अपनी टाँगें चलाती तो ज़रूर छूकर कहती थी ....."बस कर अब .....चैन से रहने दे शरारती बच्चे।" कभी-कभी मम्मा अकेले में मन ही मन खूब बातें करती थी कि मेरे राजा बेटा बनकर आओगे न।

उन्हीं दिनों पापा को एक सड़क बनाने एक बहुत बड़ा कॉन्ट्रैक्ट मिल गया। जिसकी उन्होंने कभी सपने में भी कामना नहीं की थी। सब लोग मेरे आने को शुभ मान कर दुआ दे रहे थे। लेकिन मेरे लिए आश्चर्य की बात थी कि सब लोग मुझे राजा बेटा ही कह रहे थे बिटिया रानी नहीं। कहीं सबके भीतर शायद बेटे की आस रही होगी।

समय जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था। घर में मेरे लिए सामान जमा हो रहा था। छोटे-छोटे झबलों पर लाल फूल कढ़ाई करती निम्मो बुआ कहतीं "रब्बा बच्चा किस्मत वाला और स्वस्थ हो। बेटे के होने पर मुझे तो भाई से हीरे की अँगूठी लेनी है।"

दादी भी बहुत खुश थी। सातवें महीने में ही एक दिन मम्मा को खूब गहने कपड़े पहनाकर सजाकर बरामदे में बैठा दिया गया। परिवार और पड़ोस की सब सुहागन पुत्रवान स्त्रियाँ एक-एक चम्मच खीर खिलाकर मम्मी की गोद में नारियल मेवे और तोहफ़े रख रही थीं। कान में कुछ शब्द भी कह रही थीं। खूब ढोलक बजी, नाच गाना हुआ। गीत गाए गए। लेकिन मुझे इस शोर से और नारियल के बोझ से परेशानी होने लगी। खूब हाथ पाँव चलाकर मैंने अपना विरोध जताया। मम्मा को वहाँ से उठकर अपने कमरे में आना ही पड़ा। पहली बार उस दिन मैंने विरोध जताना सीखा था। प्रकृति जब प्राण फूँकती है तो सोचने की क्षमता भी देती हैं। नानी ने भी इस अवसर पर

आकर नेग दिया था और एक पुड़िया सी लाकर चुपचाप मम्मा को खिला दी कि फरीदकोट के बाबाजी से लायी हूँ शर्तिया बेटा होगा। आजतक जिस-जिस ने भी यह भभूत खाई है उनका बेटा ही हुआ है।

अब मुझे खीझ होने लगी थी कि जिसको देखो बेटा-बेटा कर रहा है। मेरे आने को तो कोई महत्त्व नहीं दे रहा है। आख़िर बेटे ऐसा क्या करते हैं जो मैं जन्म लेकर नहीं कर सकूँगी। यह खुद लड़की होकर लड़का क्यूँ माँग रही हैं। मुझे डर लगने लगा था।

मम्मा जल्दी थकने लगी थीं। मेरे भीतर भी इस दुनिया में आने का कोई उत्साह बाकी नहीं था। दादी, निम्मो बुआ के अलावा पापा को तो मेरे आने की इतनी ख़ुशी थी कि बेटा ही होगा का अगाध विश्वास था।

लगातार आठ माह तक दादी जो मम्मा को एक फूल की माफिक रखे हुए थीं, अब सख्त होने लगी थीं। मम्मा को सुबह उठाकर अपने साथ वाक पर ले जाती थीं। आते ही गाय के गर्म किए दूध में दो बड़े चम्मच घी मिलाकर बादाम संग मम्मा को पिलाती, फिर कुछ देर आराम करवा उनको झाड़ू पकड़ा देतीं कि चलो अब घर भर की सफाई करो। भारी बदन के साथ मम्मा का उठाना बैठना भी दूभर था और यहाँ तो झाड़ू के साथ पूरे घर का पौंछा लगाने का आदेश था। मम्मा के भीतर खीझ बढ़ती जा रही थी, लेकिन दादी पर इसका ज़रा भी असर नहीं हो रहा था। मुझे भी मम्मा के साथ सहानुभूति होने लगी थी। अब उनका मन न खाने में लगता था न पीने में। मम्मा से उठना बैठना भी बमुश्किल हो पाता था।

उस सुबह भी दादी ने तीन चम्मच घी पिला दिया था। दोपहर होते होते मम्मा की तबियत ख़राब होने लगी। दर्द से परेशान मम्मा को देख मैंने भी हिलना डुलना शुरू कर दिया था, लेकिन उदास रहने की वज़ह से मेरे भीतर ताक़त ही नहीं थी। मेरी अँधेरी गुफा में भी जैसे तूफ़ान आ गया था। मेरे आसपास मौजूद जल की मात्रा भी कम हो रही थी। ऐसा लगा मुझे जैसे किसी औज़ार की सहायता से बाहर खिंचा जा रहा था। दर्द से मेरा भी बुरा हाल था। मन चाहता था इन्हीं अँधेरों में चुपचाप हमेशा

के लिए लुप्त हो जाऊँ।

कई घंटों की इस दर्दनाक जद्दोजहद ने मुझे शून्य अवस्था में पहुँचा दिया था। थोड़े समय बाद जब मुझे होश आया तो हर तरफ एक रौशनी थी। मुझे डर लगने लगा कि यह अँधेरी गुफा से अचानक कहाँ पहुँच गई हूँ। मुझे मेरे दोनों पैरो से उल्टा पकड़े एक महिला मेरी पीठ थपथपा रही थी। मेरे रोने की आवाज़ भी बहुत धीमी थी। गीले कपड़े से मेरे बदन को साफ़ कर गर्म पानी से नहलाया गया। मैंने अपनी आँखें नहीं खोली। लेकिन जब मैंने अचानक मम्मा के ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनी तो धीरे से अपना ध्यान उस तरफ लगाया ...

"ले जाओ इसको ..मुझे नहीं चाहिए ... सबने जो दवा दी मैंने खाई थी ...जो करने को कहा गया मैंने किया ..हर मंदिर गुरुद्वारे में मत्था टेका लेकिन क्या फ़ायदा हुआ .....आई तो लड़की ही न ....हाय री किस्मत।"

मम्मा के इस घुटे हुए रुदन से सब परेशान हैरान थे। नर्स मुझे कपड़े पहना रही थी, जो पापा की पुरानी शर्ट फाड़कर बनाये गए थे। मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। मैंने इस धरती पर आकर गुनाह किया है, या इनकी कोख में आकर।

दादी लेबर रूम आकर मम्मा को समझा रही थी। "अरे बाबा, रोना किस बात का और क्यों रोना ? आगे देगा न ईश्वर। अभी कौन सी तुम्हारी उम्र हो गई है। चल ऐसे नहीं बोलते... ईश्वर संतान दे, स्वस्थ दे, भाग्यवान् दे बस .....निम्मो है न वो पाल लेगी इसको। मान लेते हैं कि बेटा ज़रूरी है। चिता में आग भी वही लगाएगा, लेकिन अगर अब बेटी हो गई तो तुम नाराज़ क्यों हो रही ..इस बच्ची का क्या कसूर ?अगले ही बरस बेटा आ जाए बस यह दुआ करो।"

दादी ने नर्स से मुझे लेने की कोशिश की तो नर्स बोल उठी - "आंटी जी, बिना नेग लिए पोती नहीं दूँगी।"

दादी ने अपने ब्लाउज से सौ रुपये का नोट निकाला और कहा "जा पचास तेरे हैं और पचास की मिठाई मंगवा दो, सबको खिलाओ मेरे घर लक्ष्मी आई है।"

"क्या हुआ भाई, बच्चा रो क्यों नहीं रहा ?" दादू बाहर से अधीर होकर बोले।

दादी ने तुरंत बाहर आकर दादू की गोद में मुझे देकर कहा "लो देखो अपने घर की लक्ष्मी को, लगता है देवी मैया अपनी सभी विभूतियों संग एक-एक करके हमारे घर पधार रही हैं।"

मैंने धीमे से एक आँख खोली तो सामने दादा का चेहरा था। सबसे पहला चेहरा जो मैंने देखा वो पुरुष का स्नेहसिक्त चेहरा था।

प्यार से दादा मुझे लगातार देख रहे थे और जेब से बीस रुपये निकाल कर मुझ पर से वारफेर कर दादी को देकर बोले "लो किसी ग़रीब को सदक़ा दे देना, मेरी रेशमी गुड़िया को आशीष मिलेंगे।"

पापा हिचकिचाए से मेरी तरफ देख रहे थे। दादी ने अब मुझे पापा की गोद में दे दिया और पापा ने एकदम सीने से लगा लिया। जो गर्माहट मुझे मम्मा के भीतर रहने से मिल रही थी, वही आज पापा के सीने से लग कर भी मिली थी। हर तरफ से सब बधाई दे रहे थे, लेकिन मन बार-बार मम्मा की तरफ़ लौट रहा था, जाने क्यों वो अंदर आँसू बहा रही थी। मुझे भी अपराध बोध हो रहा था। आख़िर इनकी ज़िंदगी में मैं क्यों आई हूँ ? लेकिन बाकी सबका प्यार तो जीने की ललक पैदा कर रहा था।

मम्मा को प्राइवेट कमरे में शिफ्ट किया गया था। मुझे भी मम्मा के बगल में सुला दिया गया था। घुट्टी कौन देगा ? का शोर मचा तो निम्मो बुआ सबसे पहले आगे आ गईं, मेरा

हक हैं यह तो, लेकिन दादी ने प्यार से झिड़क कर कहा "अरे नहीं, मुझे मेरी पोती तेरे जैसी नहीं बनानी। इसको घुट्टी तो या इसका पापा देगा या दादा।"

मम्मा ने पापा की तरफ देख कहा "आप ही दीजिए।"

पापा ने चाँदी की नन्ही सी चम्मच से मेरे मुँह में शहद लगाया और मेरे कान में ॐ का स्वर गुंजन किया। मैंने जब उनको आँखें खोलकर देखा तो एकदम से मुस्कुरा उठे "जीवन का संगीत है यह तो। हम इसका नाम सुर रखेंगे"

दिन बीतते गए। मम्मा ने मुझे सबके सामने तो डर कर दूध पिलाया। लेकिन अक्सर सबकी नज़र हटते ही बोटल लगा देती थीं।

अक्सर दादी या निम्मो बुआ ही मुझे अपने पास सुला लेती थीं। मेरा मन भी बुआ के साथ ही लगता था।

ऐसा नहीं था कि मम्मा मुझे प्यार नहीं करती थी। बस मेरा लड़की होना उनको पसंद नहीं था। मुझे लड़कों जैसे कपड़े पहनाना उनको पसंद था। नानी जब-जब आती थीं मम्मा बदल जाती थीं। नाना जी मुझे देखने के लिए एक बार भी नहीं आये थे। मामा भी मामी संग सिर्फ पंजीरी देने आये थे। वो सुबह आकर शाम को वापस चले गए थे। मामी ने जाते-जाते कह दिया कि आप माँ और बेटियों के घर बेटे के जन्म का रिवाज़ ही नहीं है। मम्मा का चेहरा उतर गया था। मेरी नानी की चार बेटियाँ थी। मामाजी मम्मी के चचेरे भाई थे। जिनको नाना जी ने गोद लिया था। नानी ने उम्र भर अपने ससुराल में बेटा न होने का दंश झेला था। वो ज़हर कहीं भीतर मम्मा में प्रत्यारोपित हो चुका था। वह एक बेटी थी और उनका अस्तित्व उम्र भर नकारा गया था। नानी कभी अपनी बेटियों के लिए संबल न बन सकी। बड़ी मासी की पहली संतान भी बिटिया थी। उसके बाद किसी दुर्घटना की वज़ह से मासी माँ बनने में असमर्थ थी। छोटी मासी की भी एक के बाद एक तीन बेटियाँ थी', मौसा जी जब तब उनको निपूती माँ की निपूती बेटी होने का ताना मार दिया करते थे। मम्मा को

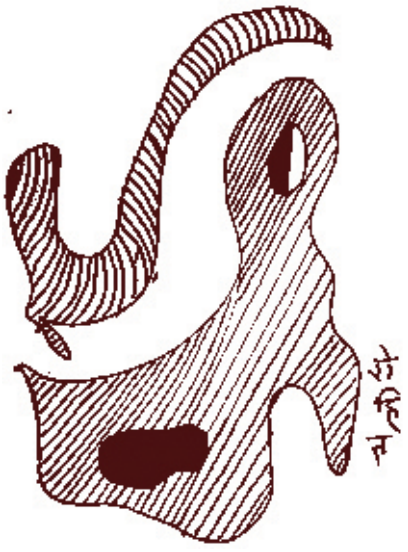

शायद भीतर से एक डर लगता होगा कि यह तो एक किवदंती बन जाएगी कि इस घर की लड़कियाँ सिर्फ लड़कियाँ ही जन्मती हैं। इसीलिए उनको मुझसे प्यार करते हुए खुद को मनाना पड़ता होगा। मामाजी के दो बेटे थे इसलिए भी मामीजी की घर भर में बहुत चलती थी। मामी के शब्द सुनकर मम्मा की आँखों में आँसू आगए थे

"नीतो अगर इसी तरह तुम सब बहनें लड़कियाँ पैदा करती रही तो तुम्हारा एकलौता भाई तो इनकी शादी पर सड़क पर कटोरा लेकर बैठ जाएगा। हमारे बस का नहीं हैं इनके ब्याह में छक (भात) लेके आना।"

चार साल की उम्र के बाद मैंने स्कूल जाना शुरू कर दिया और एल के जी करने बाद यू के जी में जब रिज़ल्ट लेकर घर आई तो मुझे निम्मो बुआ ने कहानी सुनाते हुए कहा "मम्मा फिर से एक बेबी लाने वाली हैं।"

अबकि बार मम्मा बहुत डरी सी रहतीं। दिन भर पूजा पाठ करतीं। कुछ सिलेक्टेड चीज़ें खाती। मुझे अक्सर कहतीं "जा गुड़िया भगवान् जी को बोलकर आना कि तुमको एक भैया चाहिए। जब मैं ज़िद करती कि नहीं मुझको तो डॉल से खेलना है, दीदी चाहिए, तो मुझे बहुत ज़ोर से डाँट लगा दी जाती थी कि भगवान् बच्चों की सुनते हैं इसलिए सिर्फ भैया ही कहना। अब पापा दादी भी यही चाहते थे कि मेरा भैया ही आए। मेरे प्रति उनके प्यार में कोई कमी नहीं थी। दादी मेरी माँ बनकर मुझे स्कूल भेजती। मेरे कपड़े बदलतीं। बुआ मुझे रोज़ाना रात को कहानियाँ सुनातीं। हम खेलते थे। दादा मेरी तीन पहिये वाली साइकिल पकड़ कर सड़क पर चलाना सिखाते थे।

एक दिन सुबह जागने पर बुआ ने मुझे स्कूल नहीं भेजा कि घर में अब छोटा काका आया है। अब देखना तेरे सारे खिलौने ले लेगा। अब तो मैं उसकी बुआ बनूँगी। मुझे लगा यह घर में एक प्रतिद्वंद्वी आ गया। मैंने ज़ोर से रोना शुरू कर दिया था। सब लोग आ जा रहे थे। सब महँगे तोहफों से लदे थे। दादी और पापा को इतना खुश कभी नहीं देखा था। पापा और दादू पूरे हॉस्पिटल में लड्डू बाँट रहे थे ...सब खुश थे, अकेली सिर्फ मैं थी .....।

घर आकर भी मैं ही अकेली थी। बुआजी खाना खिलाती थीं, कपड़े बदलती थीं। दादू भी बातें करते थे। लेकिन अब केंद्र में सिर्फ काका था। दस दिन तक किसी को सुर का होना याद नहीं था। पापा भी भूल गए थे कि काम से आकर पहले सुर को मिलना होता था। अब पापा सीधा मम्मा के पास जाते और काके को गोद में लेकर प्यार करते। दादी का सारा समय रसोई में मम्मा के लिए कुछ पकाने में, काके के कपड़े बदलने, मालिश करने, आने जाने वालों को काके के बारे में बताने में निकल जाता था। सब व्यस्त थे। किसी को समय नहीं मिलता था। निम्मो बुआ बात-बात में काके को प्यार करूँगी, रुक न, काके के लिए स्वेटर बुन रही हूँ, कहकर उसको साइड कर देती थीं। रोज़ाना कहानी सुनाने का क्रम ख़त्म हो रहा था। दादू अब उसको घुमाने नहीं लेकर जाते थे। खुद भी जल्द लौट आते और काके को सामने लिटाकर बातें करते थे।

काके का नामकरण होना था। तीन महीने का काका गोलुमोलू हो रहा था। हवन से मेरी आँखें जल रही थीं। नानी मामी इतना सारा सामान लेकर आए थे। ताई, मासियाँ पापा के सब दोस्त इतने सारे गिफ्ट्स लेकर आ गए थे। गिफ्ट में आये खिलौने से जब मैंने कार निकालनी चाही तो नानी ने आँखें गोल कर मना कर दिया कि यह काके का है। जाओ अपनी डॉल से खेलो। ज़ोर से रोकर जब मैंने विरोध जताया तो पापा ने ज़ोर से आवाज़

लगाकर चुप रहने को कह दिया। यह वही पापा थे, मैं जो कहती थी, मान जाते थे, आज काके को गोद में लेकर अपनी सुर को भूल गए थे।

मैं अपने आँसूं पौछ कर डॉल को गोद में उठाकर छत की सीढियाँ चढ़ गई। एक-एक सीढ़ी चढ़ना बहुत मुश्किल लग रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था जैसे सीढ़ियाँ आज बहुत लम्बी हो गई हैं ख़त्म ही नहीं हो रही हैं। छत पर ताई जी की दोनों बेटियाँ खेल रही थीं।

"ओह हो, आ गई रेशमी गुड़िया ? चाचू ने गुस्सा किया न, अब काका आ गया अब तुझे कोई प्यार नहीं करेगा।"

छोटी दीदी ने मुझे धक्का दिया और मैं ख़ामोशी से, भरे गले से वही बैठ गई और कब सो गई मालूम न चला।

धीरे-धीरे आस-पास सब कुछ बदल रहा था। दादी को अब काके की मालिश से, घुट्टी बनाने, नज़र उतारने से फुर्सत नहीं मिलती थी। मम्मा भी अब दिन भर काके को गोद में लिए घूमती थी। पापा काके के लिए महँगा-महँगा सामान लाते थे। मेरे लिए खिलौने लाना तो सब भूल गए थे। निम्मो बुआ का दिन रसोई में बीतता था। रात को कहानी सुनाने को कहो तो ..."तंग मत कर सुर, मुझे नींद आ रही है सो जा तू भी "

सब बदल रहे थे ..अक्सर मुझे कहा जाता था कि यह काका तुम्हारा भैया है जो बड़ा होकर रक्षा करेगा। जो कोई मुझे कुछ कहेगा तो मेरे लिए लड़ाई करेगा लेकिन मुझे लगता था कि अभी तो इसके आने से मुझे ही सबसे लड़ना है। सब बदल रहे हैं। सब को मिठाई बाँटते पापा का कहना कुलदीपक आ गया। खानदान का नाम रोशन करेगा। मेरे इतने बड़े बिज़नेस को सँभालने के लिए एक बेटा भी तो चाहिए था, मुझे बार-बार याद आता था।

काका जितना बड़ा हो रहा था, उतना ही मैं छोटी हो रही थी। अब मेरी ज़रूरत भर पूरी की जाती थी। काके की ज़रूरत के बाद ज़िद भी पूरी होती थी। मम्मा नानी के घर जाती, तो अक्सर काके के संग जाती थी। मैं निम्मो बुआ संग रह जाती थी। दादी भी कहती कि काके का ध्यान रखना।

नानी भी काके के साथ खुश रहती, लेकिन मुझे देख अक्सर कह देतीं कि काके के बाद जन्म लेती तो अच्छा था। अब क्या काके का पहले या बाद में दुनिया में आना कुछ अलग संसार रचता। मैं वो रानी हो गई थी जो देश पर राज्य करने के बाद निर्वासन भोग रही थी। पापा के पास मेरे स्कूल में किसी मीटिंग में आने का समय नहीं था। अक्सर निम्मो बुआ ही पी टी एम् में आ जाती थी। समय जैसे-जैसे आगे बढ़ रहा था काका अपने नाम के विपरीत तेज़ी से बढ़ रहा था। उसकी हर ज़िद पूरी होती थी इसलिए उसका स्वभाव ही झगड़ालू सा हो गया था।

किशोर उम्र में मेरी अक्सर किसी बात पर काके से लड़ाई हो जाती तो भी ग़लती न होने के बावजूद सब मुझे ही समझाते थे कि भाई है न, तुम तो बड़ी बहन हो ना, चलो मानों उसकी बात, मानों उसका कहना।

दोयम दर्जे के नागरिक सा दर्ज़ा प्राप्त थी मैं। स्कूल की पढाई ख़तम होते-होते काके को कार दिला दी गई थी जबकि मैं एम् ए की छात्रा थी मुझे पापा की पुरानी एक्टिवा से कॉलेज जाना होता था। मुझे काके को जवाब देना होता था कि मैं इतना देर से घर कैसे आई ? मैं किसके साथ बात कर रही थी ? किसका फ़ोन आया था ? मैं हैरान थी इस सवाल जवाबदेही के समय सब ख़ामोशी से काके का समर्थन करते थे। मुझे याद आती थी कि काका बड़ा होकर मेरी रक्षा करेगा। लेकिन यहाँ तो काका मुझे असुरक्षित महसूस करवाता था। मुझे मेरे होने पर ही प्रश्नचिह्न लगाना होता था। मम्मा अक्सर काके को सबसे चोरी पैसा देती थी। दादू बीमार हो गए थे तो उनकी दवा का ध्यान रखना मेरा काम था। लेकिन उनसे इनाम पाने का हक़दार काका था। बड़ी है न तू ... काका तो लड़का है इस खानदान का रोशन चिराग ....।

मेरे लिए उचित वर की तलाश शुरू की गई। अपने साथ पढ़ते सरबजीत को मैं बहुत पसंद थी। लेकिन मेरा उसके साथ बात करना भी किसी को पसंद नहीं था। काके के पास लड़कियों के फ़ोन आते तो दादी दादा "मेरा कृष्ण कन्हैया" कहकर दुलारते थे। पापा भी आख़िर बेटा किसका है कहकर सीना तान लेते। लेकिन किसी ने मेरे एम् ए के गोल्ड मैडल को देखकर कभी नहीं कहा "मेरी बेटी है न, मुझे गर्व है।"

एक मूक सा सामंजस्य था कि सुर इस घर में किसी और की अमानत है, उसको अपने घर चले जाना है। मेरी शादी मेरी ज़िद करने पर बहुत लड़ाई झगड़े के बाद सरबजीत से कर दी गई। मम्मा-पापा के मन में मेरे लिए प्यार ख़त्म हो गया था। शादी के बाद कभी ऐसा नहीं लगा कि अपना घर छोड़ कर आई हूँ। लेकिन सरबजीत के साथ रहकर लगता था जैसे अब अपने घर में हूँ। मम्मा का कभी कभी कॉल आ जाता "सुर कैसी हो ? काके को भेज दूँ, चार दिन रहने को आओगी ? निम्मो बुआ याद करती हैं।" मेरी विदाई पर सबसे ज़्यादा रोई भी निम्मो बुआ ही थी।

काश मम्मा एक बार कहतीं कि "सुर तेरी बहुत याद आती है, घर खाली खाली लगता है तेरे बिना ... आजा चिड़िया, घर आजा थोड़े दिन हमारा आँगन भी चहक महक उठे।"

लेकिन जहाँ इतने सपने टूटे थे यह सब भी सपना ही रहा। महीन किरचों से सपने चुभते बहुत थे। कितना भी कह लें लोग बेटियाँ तो किस्मत वालों को मिलती हैं। सच यह है वो उनकी खिसियाहट होती है। पहली संतान के बिटिया हो जाने पर। भीतर से अधिकतर सब बेटा ही चाहते हैं, अपने खानदान का वारिस। उनका परिवार पूरा ही बेटे के आने से होता है। कभी सुना कि बिटिया के आने पर किसी ने कहा हो ....अब और बच्चा मत करना परिवार की रौनक आ गई है।

मुझे याद है तब शादी को चार माह हो गए थे। पग फेरे के बाद से एक बार भी मायके नहीं गई थी। तबियत ख़राब रहने लगी थी। चुपचाप प्रेग- टेस्ट किया था सरबजीत पॉज़िटिव देखते ही ख़ुशी से झूम उठे थे। उसी शाम को ही बाज़ार जाकर मेरे लिए हीरे का छोटा सा खंडा(लॉकेट) ख़रीद लाये थे। तब समझ नहीं आया कि इस बात पर कैसे रिएक्ट करूँ ? नवसृजन की ख़ुशी भी थी लेकिन मन भयभीत भी था। एक अनकहा भय अचानक उत्पन्न हो गया कि कहीं इतिहास खुद को

दोहराएगा तो नहीं .... नानी, मासी मम्मा की तरह मुझे भी पहली संतान .....

फिर गर्दन झटक कर खुद को कहती कि मैंने जो भुगता अपनी बेटी को नहीं भुगतने दूँगी। हम तो संतान ही एक पैदा करेंगे अब वो चाहे लड़का हो या लड़की।

आठ महीने बीत गए, सरबजीत बहुत ख़याल रखते थे। पहले बेबी के बाद ही नसबंदी करा लेंगे, ऐसे आश्वासन देते थे। खुद से खुद को समझाती थी। खुद ही अपने आप से सवाल भी करती थी। लेकिन यह गर्भावस्था एक अजीब से तनाव का कारण बन रही थी। अचानक घबराहट होने लगती। पसीने छूट जाते थे। सरबजीत के अलावा किसी पर विश्वास नहीं होता था। मेरी डॉक्टर मुझे जितना शांत रहने को कहती मैं उतना ही उद्वेलित अनचाहे ही रहती। सरबजीत मेरी हर रिपोर्ट्स पर खुद डॉक्टर से बात करते मुझे पूछने पर भी नहीं बताते थे। अल्ट्रासाउंड होने पर जब मैंने पूछा कि बेटा या बिटिया तो हँस कर बोले वाहे गुरु का आशीर्वाद है, जेंडर बताना क़ानूनी अपराध है और हम दोनों ठहाका लगाकर हँस पड़े थे। मुझे बात-बात पर मम्मा याद आ जाती थी। कई बार महसूस करती थी कि मैं उनकी तरह व्यवहार करने लगी हूँ। उनकी पसंद का सा खाना खाने लगी हूँ।

अतीत से लेकर अभी तक की ज़िंदगी एक चलचित्र माफिक आँखों से गुज़र रही थी। पता नहीं सोये मन का सपना था या बंद आँखों का ख़याल ..लेकिन भयानक था, असुरक्षा थी इन ख़यालों में ....

नीम बेहोशी में भी जैसे दर्द महसूस हो रहे थे। नहीं मालूम कल रात कब दर्द के भयानक दौर में मैं बेहोश हो गई थी और सरबजीत मुझे हॉस्पिटल ले आये थे। लगातार चार घंटे की शल्यचिकित्सा के बाद आख़िर मैंने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया था। एक बेटी और एक बच्चा जो न नर था न मादा.....

मम्मा मेरी बेटी को गोद में लिए बैठी थी। मैं हॉस्पिटल में सोई थी लेकिन सबको देख सुन पा रही थी। मम्मा मेरी रोती बच्ची को चुप करवा रही थीं। कोई घुट्टी क्यूँ नहीं दे रहा

उसको ? यह निम्मो बुआ ज़ोर से रो क्यों रही थी। सरबजीत भी रोये जा रहे थे। पापा दादा सबका बुरा हाल था। मुझे बहुत ग़ुस्सा आरहा था कि बेटी मेरी जन्मी है यह सब क्यूँ स्यापा करने आए हैं? मैं उठाना चाहती थी लेकिन लाख कोशिश करने बावजूद भी उठ नहीं पा रही थी। अचानक किसी ने आकर मम्मा को कहा चलो घर चलते हैं। मुझे भी उठाकर चार लोगों ने स्ट्रेचर पर डाला और एम्बुलेंस में लिटा दिया। मैं चीखना चाहती थी कि मुझे मेरे बच्चे दिखाओ। सरबजीत मुझसे आकर मिलो तो सही। लेकिन मेरी चीख भीतर ही घुटी हुई थी। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि सरबजीत कैसे बदल गया ? इसने तो मुझसे वादा किया था कि हम एक ही संतान पैदा करेंगे चाहे बेटा हो या बेटी। अब यह भी आम इंसान की तरह बदल गया। कोई मेरी नहीं सुन रहा था। कसूर बेटी बनकर पैदा हुई तब भी मेरा ही था और आज बेटी संग अधूरी संतान पैदा हो गई तब भी मेरा ही रहा।

घर लाकर मुझे ज़मीन पर लिटाया गया। जच्चा को ज़मीन पर .....ओह !!! यह क्या हो रहा है, किसी को मेरी ज़रा भी फ़िक्र नहीं हैं। तो क्या मैं मर गई हूँ ? मेरी बात कोई नहीं सुन पा रहा है, मैं सबको सुन पा रही थी। मम्मा रोते हुए सबको बता रही थी

"इसका ब्लड प्रेशर बहुत बढ़ गया था। इसलिए सीज़ेरियन डिलीवरी करनी पड़ी। लेकिन अंदर खून रुक ही नहीं रहा था। खून रोकने के लिए डॉक्टर ने इंजेक्शन दिए तो वो माफिक ही नहीं आए। डॉक्टर ने तो बहुत कोशिश की लेकिन ....."

"सरबजीत तो पूरा ख़याल रखता था लेकिन....यह मायके आ जाती तो शायद हम सब और अच्छे से ख़याल रख लेते। बच्चे ही तो थे दोनों।" निम्मो बुआ मुँह पर दुपट्टा लपेटे रो रही थीं। तभी सरबजीत की चाची ने कहा- "हर वक्त पता नहीं किन टेंशनों में रहती थी। इसका ब्लड प्रेशर हमेशा ही ज़्यादा रहता था। पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती थी। रब बच्चों पर तो थोड़ा तो रहम करता। आजकल की लड़कियाँ ज़्यादा पढ़ी लिखी होती हैं न, अपनी मर्ज़ी करती हैं अपना ख़याल खुद रखती हैं। कौन सुनता हैं जी आजकल।"

आँसू बहाती मम्मा आज मुझे न प्यार के काबिल लग रही थी न नफ़रत के...

सच मम्मा कौन सुनता है.....मेरे मन के कोनों में तो जन्म के पहले ही इतना अवसाद भर दिया गया था कि... मैं चाहकर भी समझ नहीं पाती थी कि मुझे किस बात पर खुश रहना है किस बात पर उदास। अब अपनी गर्भावस्था में अनुवांशिकी से मेरे भीतर भी उदासी घर कर गई थी। मम्मा आपने खुश होकर मुझे जन्मा होता तो शायद मेरे भीतर बीज ख़ुशी वाला होता और मेरी ज़िंदगी का पौधा भी पनपता। सरबजीत ने ज़रूर खुशियाँ दीं लेकिन उनकी मियाद थोड़ी ही रही। क्रोनिक बीमारी बन गई मेरी हर वक़्त सोचने की आदत।

सरबजीत के गले लगना चाहती थी, अपनी बिटिया को प्यार से खुद घुट्टी देने का मन था। अपनी दूसरी संतान को अपने साथ ही रखकर एक सम्पूर्ण जीवन देने का मन था लेकिन .....मुझे ही जीना नहीं आया। अब मरना भी नहीं आ रहा था।

"राम नाम सत है" आवाज़ों के मध्य सरबजीत ने धीमे स्वर में आँसुओ से भरी आवाज़ लगाई "सुर आ तुझे उस लोक तक छोड़ आये, जहाँ तुझे सुख सुकून शांति मिले।"

ओह मैं तो मर चुकी हूँ यह आर्तनाद मेरे मन के कोने का आत्मालाप है।

000

मुझे विपुला नहीं बनना

अभिज्ञात

निखिल आनंद पहली बार उन गलियों में पहुँचा था, जहाँ वे देह-व्यापार करती हैं। एक पत्रकार के तौर पर। एक सामान्य नागरिक सी उत्सुकता उसमें रही उन्हें करीब से देखने और जानने की लेकिन उसके लिए उठाई जाने वाली जद्दोजहद के लिए तैयार न था। कई बार कोलकाता के सोनागाछी इलाके के बारे में सुना था, मगर स्वप्न सी लगती और स्त्रियों की असीम यातना से जुड़ी उसकी गलियों से उसका ग़ुजरना नहीं हुआ था। आज दमदम एयरपोर्ट से उतरने के बाद बीके पाल से होते हुए सोनागाछी वाली सड़क पर वह उतरा था। टैक्सी एक ओर खड़ी कर उसने चोर नज़रों से सड़क किनारे खड़ी युवतियों-महिलाओं को देखा और थोड़ी-थोड़ी दूर पर बनी उन गलियों के पास से भी जहाँ वे लगभग कतारबद्ध खड़ी दिखतीं लेकिन वहाँ ठहर कर या कुछ देर तक नज़र गड़ाए देखने का साहस न हुआ क्योंकि वे उसे ग्राहक समझ कर इशारे में आमंत्रण दे रही थीं और आसपास खड़े दो एक दलाल उसके पीछे लग गए थे। एक हाथरिक्शा वाला दलाल यह कहते हुए टोह ले रहा था-'बाबू चलो घूमा देता हूँ।'

लेकिन उसे बतौर रिपोर्टर भेजा गया था नागपुर से एक यौनकर्मी से बातचीत के लिए। उसके साथ फ़ोटोग्राफर भी लगाया गया था। उसका कारण यह था कि एक अदालत के जज ने फ़ैसला दिया था कि यौनकर्मी के ग्राहक की लॉकअप में मौत पर उसे भी मुआवज़े का एक हिस्सा दिया जाए। उसके परिवार के साथ-साथ। क्योंकि मुआवज़ा इस आधार पर ही दिया गया था कि उसकी मौत से उस पर आर्थिक तौर पर आधारित लोगों को राहत दी जाए। ऐसे में एक सामाजिक संगठन ने दावा किया था कि एक सेक्स वर्कर विपुला भी आर्थिक मामले में उस पर पूरी तरह से आश्रित थी। जज ने दावे को सही पाया और आदेश दिया। यह अपनी तरह का अलग मामला था।

निखिल को विपुला की पूरी कहानी उसी की ज़ुबानी चाहिए थी। अख़बार की नज़र में यह एक बिकाऊ स्टोरी थी।

कोर्ट के आदेश के तुरंत बाद निखिल ने उस सामाजिक संगठन से संपर्क किया जिसने कोर्ट में मुकदमा किया था और उसकी प्रमुख से मिलने कोलकाता पहुँच गया, जिसने वादा किया था कि वह विपुला से उसकी मुलाक़ात करा देगी। लेकिन चूँकि विपुला कालीघाट इलाके में रहती

अभिज्ञात
मोबाइल- 9830277656
ईमेल– abhigyat@gmail.com

है, इसलिए उसे सोनागाछी के बदले कालीघाट बुलाया था। कुछ देर सोनागाछी इलाके में टहलकदमी के बाद उसने फिर टैक्सी पकड़ी व कालीघाट पहुँचा। इच्छा तो हुई कि पहले माँ काली के दर्शन कर ले लेकिन समय हो चला था मुलाक़ात का। सो आगे बढ़ गया। टैक्सी कालीघाट मंदिर के पास ही छोड़ दी।

निखिल की धारणा थी कि कोलकाता में सोनागाछी के आसपास ही देह-व्यापार होता है लेकिन यह कालीघाट मंदिर के समीप का ही इलाका था। मंदिर से थोड़ा आगे बढ़ने पर दाएँ मुड़ना था, फिर एक गली थी, जहाँ उसे जाना था। रास्ते में एक सिनेमाहाल भी था।

पते पर पहुँचते ही बाहर एक खूबसूरत और प्यारी सी अल्हड़ युवती ने उनका स्वागत किया। पते पर पहुँचते ही इससे पहले कि वह कुछ पूछे युवती ने पूछा-'आप निखिल?'

इससे पहले कि वह हाँ कहता, उसने पूरे आत्मविश्वास के साथ उसने कहा-' आइए। आइए। अंदर आ जाइए मेरे साथ।'

अंदर एक कमरे में उसने सोफे पर उसे और फ़ोटोग्राफर दीपेश को बैठाया। वहीं फ्रिज से कोल्ड ड्रिंक निकाली और दोनों को गिलास में सर्व किया। पहले से ही टी टेबल पर रखा नमकीन- काजू का पैकेट फाड़कर प्लेट में सलीक़े से सर्व किया।

फिर खड़े-खड़े ही पूछा-'आपको यहाँ आने में कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई?' और फिर उत्तर का इंतज़ार किए बिना खिलखिला कर हँस पड़ी, जैसे उसने मान लिया हो कोई दिक़्क़त नहीं हुई होगी।

फिर कहा-'मैं दीदी को बुलाती हूँ। आप दो मिनट बैठिए।'

फिर वह कमरे से निकल गई। उसके कमरे से निकलते ही जैसे एक ख़ुशबू का झोंका चला गया हो। मंत्रमुग्ध सा निखिल जैसे किसी स्वप्न से बाहर आया। ऊपर से दिपेश के कामेंट ने जैसे उसके जज़्बातों को एक दिशा ही दे दी-'क्यों गुरु। तुमको तो हमने बड़ा शरीफ़ समझा था, देख रहा हूँ बंगाली बाला का काला ज़ादू चल गया तुम जैसे मराठे पर।'

निखिल ने कहा- 'तू भी यार क्या कह रहा है! तू बता कौन होगी यह? ऐसी ज़गह पर इसका होना क्या बताता है, यह चालू माल तो नहीं लगती।'

दिपेश- 'नहीं यार मैं यह कब कह रहा हूँ! यह सोशल वर्कर की छोटी बहन हो सकती है। उसे पूरा प्रोटेक्शन मिला हुआ होगा। लोग उसकी धौंस जानते होंगे, इसलिए यह बिंदास लगती है। सुना नहीं दीदी कह रही थी प्रज्ञा दासगुप्ता को। हो न हो सगी बहन हो।'

निखिल- 'हाँ यह हो सकता है। यह धंधेवाली तो नहीं ही है।'

तब तक किसी के आने के क़दमों की आहट बरामदे में सुनायी दी और उन दोनों की ज़ुबान पर ताला लग गया।

कमरे में घुसते ही एक सुन्दर, सजीली महिला ने निखिल से हाथ मिलाया-'मैं प्रज्ञा..प्रज्ञा दासगुप्ता। आपसे बात हुई थी फ़ोन पर।' फिर वह साथ आकर दरवाज़े पर खड़ी हो गई युवती से मुखातिब हुई। 'इनको बंगाली संदेश खिलाया...उफ़ तुम कब बड़ी होओगी..और देखो बाहर कितनी धूप है, तुमने एसी भी नहीं चालू किया।' फिर खुद एसी चालू करते हुए उनसे पूछा- 'संदेश तो खाइए ही..और कुछ मँगा दें..?'

निखिल ने 'ना' में गर्दन हिला दी। अगले ही कुछ पल में वह युवती उनके लिए एक प्लेट में संदेश सजाकर ले आई। फिर उन्हें पानी भी दिया।

प्रज्ञा ने कहा- 'और सुनाओ कैसी चल रही है, नागपुर में आपकी ज़िंदगी। और हाँ, शादी कर ली है?'

निखिल ने झेंपते हुए और युवती की ओर देखते हुए 'ना' में सिर हिलाया।

उसकी ओर देखने की चोरी प्रज्ञा ने पकड़ ली थी। हँसकर कहा- 'क्यों यह तुम्हें पसंद आई..शादी करोगे इससे..?'

उसकी बेबाक दिल्लगी पर निखिल और शर्म से गड़ गया। युवती ज़ोर से हँसी और फिर कमरे में एक ओर पड़ा छाता लिया और फिर प्रज्ञा से पूछा- 'तो मैं जाऊँ ?'

प्रज्ञा ने जाने का इशारा किया और कहा- 'हाँ। यह लोग विपुला से मिलने आए हैं। कहीं मिले तो भेजना।' वह कमरे से निकल गई और दरवाज़ा भिड़ा दिया।

निखिल ने यौनकर्मी विपुला से मिलने की इच्छा ज़ाहिर की तो प्रज्ञा ने बताया कि इधर कुछ दिनों से उसकी कोई खोज-ख़बर नहीं मिली है। विपुला का प्रेमी विवाहित था और अक्सर यहाँ कालीघाट वेश्यालय में आता-जाता था। जब वह पहली बार विपुला से मिला तो उसे इतना पसंद करने लगा कि वह किसी और के साथ नहीं जाना चाहता था। इधर, विपुला भी मन ही मन उसे अपना सब कुछ मानने लगी थी इसलिए वह किसी और के साथ जाने से कतराने लगी थी। अंतत: वेश्यालय प्रबंधन ने यह तय किया कि वह विपुला को किसी अन्य ग्राहक के पास जाने के लिए मजबूर नहीं करेगी, बदले में वह वेश्यालय को भी एक बंधी रकम देगा और विपुला को भी। वह जल्द ही विपुला को अपने साथ एक अलग फ्लैट में रखने की तैयारी में था। इस बीच एक रात वेश्यालय में छापा पड़ा और पुलिस उसे उठा ले गई और लॉकअप में अस्वस्थता के बाद उसकी मौत हो गई। प्रज्ञा महिलाओं के अधिकार के संरक्षण से जुड़ी एक एनजीओ चलाती है। यहाँ वेश्यालय के मामले-मुकदमे भी वही देखती है। इसी एनजीओ के माध्यम से उसने अदालत में विपुला के हक़ की माँग की थी और अदालत ने अंतत: विपुला को भी मुआवज़े का एक हिस्सा देने का निर्णय लिया है। हालाँकि, इस बीच विपुला की मनोदशा ख़राब होने लगी थी। उसके प्रेमी की मौत के बाद उसे दूसरे ग्राहकों के पास जाना पड़ रहा था, जो उसकी आत्मा स्वीकार नहीं कर पा रही थी। धीरे-धीरे वह नशे की आदी होती चली गई। और अब कोई भी ग्राहक उसकी ओर जल्द आकर्षित नहीं हो रहा। उसे पैसे भी कम मिलने लगे थे। इधर, कुछ दिनों से वह सिनेमाहॉल व सड़क के किनारे खड़ी होकर ग्राहक पटा कर धंधे को मजबूर हो गई। कभी यहाँ लौटती कभी नहीं। जब से अदालत का फ़ैसला आया है, वह वेश्यालय नहीं लौटी है। हम उसे खोज रहे हैं।'

निखिल- 'क्या ये लोग दिन में भी धंधा करती हैं..?'

प्रज्ञा- 'हाँ, दिन में सिनेमाहाल, पेट्रोलपंप

आदि के समीप सड़क किनारे छाता लिए खड़ी मिल जाएँगी...।'

निखिल के कान 'छाता' शब्द पर अटक गए। वह मायूस हो गया। उसने कहा- 'मेरी तो आज रात में फ्लाइट है। ख़ैर आपसे विपुला के बारे में सब कुछ जान लिया। लेकिन उससे एक बार मिलना चाहता हूँ। यदि विपुला मिल जाती है तो ठीक वरना आप मेरी उससे फ़ोन से बात करा दीजिएगा। अब हम निकलते हैं। कुछ शॉपिंग वगैरह करके फिर लौटते हैं, कुछ देर में। फिर यहीं से सीधे एयरपोर्ट निकले लेंगे।'

प्रज्ञा- 'आपकी फ़्लाइट तो रात ग्यारह की है..? अभी बज रहे हैं डेढ़। आप पाँच-छह बजे भी यहाँ से निकलेंगे तो आराम से जाम के बाद भी दो ढ़ाई घंटे में पहुँच ही जाएँगे। और देर होने लगेगी तो यहाँ से मेट्रो पकड़ लीजिएगा, दमदम की। वहाँ से घंटे भर में टैक्सी से एयरपोर्ट पहुँच जाएँगे। विपुला आती है तो मैं उसे यहीं रोके रखूँगी। उसके यहाँ आते ही आपको फ़ोन करूँगी..।'

निखिल वहाँ से हड़बड़ी में निकला। और भारी कदमों से मंदिर की ओर चल पड़ा। उसे यह ध्यान भी नहीं था कि उसके साथ दिपेश भी है। दिपेश ने कहा- 'यार तूने गौर किया। वह तेरी प्रेमिका तो धंधेवाली ही निकली।'

निखिल- 'हाँ वह भी इस धूप में कहीं छाता लगाए खड़ी होगी..'

दिपेश- 'हमें पहले ही पता होता तो कम से कम आज वह धूप में निकलने से बच जाती।'

निखिल डाँटते हुए कहा- 'अबे साले..'

दिपेश- 'मैं तेरे लिए ही कह रहा हूँ भाई..।'

तब तक दोनों सकपका गए। ठीक सामने छाते में वह खड़ी थी, उसने निखिल को देख कर हाथ हिलाया था। लेकिन निखिल के हाथ-पाँव कुछ देर के लिए जैसे जड़ हो गए थे। फिर उसने दिपेश को वहीं रुकने का इशारा किया और भारी कदमों से आगे बढ़ा। वह पसीने-पसीने हो गया था..उसे लगा धूप और तेज़ हो गई है। बदहवासी में वह उसके सामने जा पहुँचा।

उसने कहा- 'अजीब हैं आप। जा रहे हैं और मेरा नाम तक नहीं पूछा..' फिर वह हँस पड़ी।

निखिल ने कहा- 'जा नहीं रहा अभी हूँ कुछ घंटे और आपके शहर में।'

'मेरा शहर..' वह फिर हँसी। 'यामिनी का शहर..जान तो गए ही होंगे मेरे बारे में। हमारा कुछ नहीं होता। केवल हमारा जिस्म होता है। हमारा शहर, हमारा देश, हमारा घर, हमारी पहचान और हमारी औकात। ..डॉयलाग कैसा लगा? मैंने कुछ दिन जात्रा में काम किया है..उसी का डॉयलाग है।'

निखिल ने पास की ही एक चाय दुकान की ओर इंगित कर पूछा- 'यामिनी, क्या हम साथ कहीं चाय पी सकते हैं?'

यामिनी- 'उफ़। धंधे के टाइम यह पूछो, क्या हम कहीं एक साथ सो सकते हैं?'

फिर सचमुच वह निखिल के साथ चाय दुकान की ओर बढ़ गई।

निखिल ने कहा- 'मेरे पास वक्त कम है। और मैं घुमा फिर कर बात करना पसंद नहीं करता। तुम्हें पहली ही नज़र में पसंद करने लगा हूँ। और तुम चाहोगी तो तुमसे शादी करने से भी पीछे नहीं हटूँगा। तुम्हें अपने साथ नागपुर ले जाऊँगा। मैं नासिक का हूँ। लेकिन अभी नौकरी के सिलसिले में नागपुर रहता हूँ।'

तब तक वे चाय की दुकान पर थे। यामिनी ने चाय वाले से कहा- 'दादा एकटू ताड़ाताड़ी..दू टो चॉ।'

फिर निखिल से मुखातिब होकर कहा- 'हमारा साथ इस चाय के ख़तम होने तक ही है। तुमने जो कुछ कहा, उससे कई लम्बी कहानियाँ शुरू होंगी और बीच में ही ख़त्म हो जाएँगी। ऐसी कहानी मेरे साथ कुछ दिन पहले भी शुरू हुई थी और जिस मोड़ पर शुरू हुई थी कुछ दिन बाद वहीं ख़त्म हुई। अब और नहीं।'

निखिल यामिनी के थोड़े से शब्दों में उसके पीछे छिपी कहानी का मर्म समझ गया था। तो यामिनी छद्म प्रेम का झाँसा झेल चुकी है। इसलिए उसकी सच्ची बातों का भी उस पर कोई असर होने से रहा।

वह चुपचाप चाय पीता रहा और यामिनी को देखता रहा। उसके पास सांत्वना के भी शब्द नहीं थे। चाय का भाड़ा फेंकते हुए यामिनी ने कहा- 'मुझे विपुला नहीं बनना। तुम उससे मिलना चाहते हो ना। तो सामने वाले मोड़ के बाएँ मुड़ना। वहाँ की चाय की दुकान वाले से पूछना वह बता देगा विपुला कहाँ है। मैं दीदी के सामने सच नहीं बोल पाई थी, इसलिए तुम्हें खोज रही थी। अब जाओ वह वहीं मिल जाएगी। यह मेरे धंधे का टाइम है।'

निखिल के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना यामिनी आगे बढ़ गई।

निखिल हारे हुए क़दमों से दिपेश के पास पहुँचा और फिर दोनों उस गंतव्य तक पैदल ही पहुँचे जहाँ यामिनी ने बताया था।

जब चायवाले को पता चला कि मिडिया से विपुला के इंटरव्यू के लिए आए हैं तो उसने उन्हें बड़े प्रेम से पास बिठाया। न चाहते हुए भी नाश्ता मँगवाया।

चाय वाले के अनुसार 'विपुला पहले तो अनमने हो ग्राहकों के पास जाती थी फिर उसने देह व्यापार छोड़ दिया। वह यहीं सड़क किनारे एक दरी बिछाकर बैठी रहती है और भीख माँगती है। जो कुछ मिल जाता है उसमें से कुछ हिस्सा वह वेश्यालय को दे देती है, बाकी में अपना भरण-पोषण करती है। कभी पर्याप्त भीख नहीं मिलती तो मैं क़र्ज़ दे देता हूँ, जिसे वह कभी न कभी लौटा देती है। कभी कोई पुराना ग्राहक उसे पहचान लेता है और देह व्यापार का प्रस्ताव रखता है तो वह सख्ती से इनकार कर देती है। वह वेश्या होकर भी प्रेम की मारी है। प्रेम ने उसे भिखारिन बना दिया। वह रही। पेड़ के नीचे नीले रंग की साड़ी में। उसके बारे में अच्छे से लिखना। हमारी नज़र में वह बहुत भली औरत है। सुनते हैं कि कोर्ट से उसको पैसा मिलने वाला है। दो-तीन दिन से उसके घर वाले भी चक्कर मार रहे हैं, जिनका कई सालों से अता पता नहीं था। उसे वे रात में बहला फुसला कर अपने साथ ले जाते हैं। देखना एक दिन सब पैसे ले लेंगे और फिर छोड़ जाएँगे यहीं छिनाल कह कर।'

चाय वाले की बातें सुनकर निखिल और दिपेश सन्नाटे में थे। दोनों विपुला की ओर बढ़ गए। निखिल के कानों में यामिनी के शब्द गूँज रहे थे- 'मुझे विपुला नहीं बनना।'

000

महकती मुहब्बतों के मौसम

डॉ. गरिमा संजय दुबे

जैसे ही दरवाज़ा खुला धूल की तेज़ महक ने अबीर के नथुनों में हलचल पैदा कर दी। यूँ धूल से एलर्जी का शिकार अबीर अपनी छाती की गहराई में धूल को महसूस कर पा रहा था लेकिन इस धूल में जैसे कई और ख़ुशबुएँ शामिल थीं जो उसे बरबस ही एक एक कर बहुत सी चीज़ों की याद दिला रही थी।

अगला पैर जैसे ही आगे बढ़ाया और दूसरे पैर को वहाँ रखा, तो पीछे पलट कर देखने पर धूल से सने फर्श पर उसके पैरों के निशान उसे जैसे कहीं पीछे खींच रहे थे। सिर को झटका दे वह आगे बढ़ा। बरसों बाद विदेश से लौटने पर सोचा कि उस घर को देख आए जहाँ बचपन और जवानी गुज़री।

जाने पहचाने दरो दीवारें जैसे हाइबर नेटेड मोड में थे। बरसों बाद किसी की आहट पाकर उनींदे से उसे देख रहे थे और पहचानने की कोशिश कर रहे थे। क्या केवल वह ही कोशिश कर रहे थे, अबीर भी तो कोशिश ही कर रहा था। लेकिन कोशिश किये बिना भी जहाँ नज़र जाती वहाँ से जुड़ी कोई याद जग जाती, सिर उठा कर मुस्कुरा देती। पीछे के कमरे से दौड़कर आती छोटी बहन के चीखने की आवाज़, किचन से माँ के बर्तनों की आवाज़, "देखो माँ मेरी नेल पेंट की शीशी तोड़ दी अबीर ने।" बहन की आवाज़ के साथ नज़र पड़ी उधर, अरे वो नेल पॉलिश की शीशी को फेंकने पर वह टूट कर दीवार पर बिखर गई थी, वो निशान भी धूल की परत के पीछे से जैसे झाँक कर उसे अपने होने को बता रहा था। वैसे ही जैसे किसी भीड़ में खड़ा कोई दोस्त हाथ हिलाकर अपने उस जगह होने को प्रमाणित करता है। पिताजी के कपड़े टाँगने की खूँटी, माँ की किताबों की अलमारी की खाली जगह भी जैसे किताबों के वहाँ होने को बता रही थी। जिस जगह नज़र जाती घर दिखने लगता, जो अब केवल मकान था। लेकिन जिस मकान में कोई बरसों रहा हो वह केवल मकान नहीं होता घर ही रहता है और किसी परिचित आहट और निगाह से जाग जाता है। ख़ुशबुओं का एक पूरा कोलाज था वहाँ। आज फिर एक बार मन के कोनों की धूल झाड़ने का मन कर रहा था। ठीक घर की तरह उसकी यादों पर भी धूल की मोटी परत जम गई थी। जिसे हटाने पर मन के मौसम महकने वाले थे। इतनी पुरानी ख़ुशबुओं में एक भीनी सी ख़ुशबू और शामिल सी है यहाँ, लेकिन वह नज़र नहीं आ रही थी केवल महसूस हो रही थी, किसकी थी वह ख़ुशबू।

अपने पैरों के निशान धूल पर बनाते हुए अबीर उस जगह पहुँच गया जहाँ वह अपनी एस टी डी की दुकान के काग़ज़ रखता था। हाँ वही एस टी डी की छोटी सी दुकान थी उसकी। उस समय फ़ोन पी सी ओ जाकर लगाना होता था। एक मुस्कान सी फैल गई उसकी चेहरे पर।

डॉ. गरिमा संजय दुबे
18 बी वंदना नगर एक्ससटेंश, इंदौर म. प्र.
मोबाइल- 9009046734
ईमेल- garima.dubey108@gmail.com

पलटने ही वाला था कि एक कोने में एक डायरी का हिस्सा नज़र आया। वह चौंक पड़ा सारा सामान यहाँ से कब का ख़त्म हो गया, यह यहाँ कैसे, धड़कते दिल से उसे खोला, पीले पड़ चुके पन्नों में भी अबीर क्या उस डायरी को नहीं पहचान सकता, तुरंत पहचान गया यह तो, इसे कितना ढूँढ़ा था उसने कितनी बार यहाँ भी आकर देखा था लेकिन वह नहीं मिली थी। यूँ तो सुगंधा शास्त्री का नंबर तो उसके दिमाग के संदूक में सेव था, उसे कभी कहाँ भूल पाया वह। नींद में भी पूछे तो झट से बता देगा। कितना चिढ़ाते थे उसके दोस्त, साइकल से बेवजह उसके घर के चक्कर भी तो लगा देता था वो। हालाँकि सामने पड़ने पर नज़र झुका कर निकल जाता था।

एक मुस्कुराहट पसर गई उसके गोरे चेहरे पर, सुगंधा के नाम की गंध से फिर महक उठा उसका वजूद। गाल लाल हो गए, रक्त फिर धमनियों में दौड़ने लगा जैसे वह नंबर नहीं सुगंधा खुद उसके सामने आ गई हो।

लड़कपन का वो अफसाना जैसे डायरी से कूद कर उसके सामने आ गया था। मानों ठुड्डी हिला हिला कर छेड़ने लगा, इस डायरी का हर पन्ना उसके एक तरफ़ा प्यार का दस्तावेज़ था।

सामने की दीवार जैसे प्रोजेक्टर का डिस्प्ले स्क्रीन बन गई थी और अबीर एक दर्शक की तरह उसे देख पा रहा था। उसकी ज़िंदगी की वो महकती याद उसके सामने फिर चल रही थी।

सुगंधा शास्त्री, केमिस्ट्री वाले शास्त्री सर की होनहार बिटिया। आत्मविश्वास से भरी बड़ी-बड़ी आँखें और उस पर, पढ़ने बोलने सब में तेज़, उसके घर ट्यूशन जाता था वो। व्यापारी घराने का लड़का पढ़ाई से कोई ज़्यादा ताल्लूक नहीं था उसके परिवार का। लेकिन उसे केमिस्ट्री बड़ी भाती। अब केमिस्ट्री पसंद थी या सुगंधा का केमेस्ट्री में पक्का होना उसे पसंद था। यूँ तो उसे तेज़ गंध से नफ़रत थी लेकिन सुगंधा की उपस्थिति में उसे किसी केमिकल की गंध दुर्गंध नहीं लगती। हाइड्रोजन साल्फाइट की गंध भी जिसके साथ मादक लगे तो इसे प्यार नहीं तो और क्या कहेंगें। जब उसके सारे दोस्त मुँह नाक बंद कर फ़ार्टिंग गैस, फ़ार्टिंग गैस कहते भाग खड़े होते थे, वह सुगंधा के पास मज़े से खड़ा एक्सपेरिमेंट कर देता था। सुगंधा के महकते सानिध्य में उसे किसी और गंध का भान कहाँ रहता था। जितनी महकती सुगंधा उसे लगती थी, उससे कहीं गुना ज़्यादा कड़वी गंध उसके पिता याने शास्त्री सर की थी। अमरीश पुरी के दूसरे अवतार, जिनकी एक आवाज़ से अच्छे अच्छों की हवा टाइट हो जाती थी। उनका रुतबा बहुत था। लेकिन अबीर के उनसे डरने व चिढ़ने का कारण वही था जो अक्सर लड़की के पिता से लड़के को होता है।

अब किसे अपनी जवानी में सोलहवें साल में लड़कपन के प्यार के बाप में अमरीश पुरी नहीं दिखता सो उसे भी ऐसा ही लगता था। मज़े की बात यह थी कि सुगंधा को इस बारे में कुछ नहीं पता था। हालाँकि यह मानना मुश्किल है कि किसी लड़की को अपने प्रति आकर्षित लड़के के बारे में पता न हो। उसे पता है यह सोच लेने मात्र से वह पगला जाता था। लेकिन अपनी आँखों में बड़े सपने लिए वह लड़की हमेशा अपनी किताबों में खोई रहती, अंजान बनी रहती और अबीर खोया रहता उसके प्यार में। रोज़ सारे काम एक तरफ केमेस्ट्री की ट्यूशन दूसरी तरफ़। कभी मिस नहीं करता।

उसे लगता उनके प्यार की सक्सेस का भी कोई फार्मुला उसे केमिस्ट्री पढ़ते–पढ़ते मिल जाएगा। लैब में कुछ का कुछ कर देता। एक बार तो हादसा होते–होते बचा। हुआ यूँ कि सल्फ्यूरिक एसिड को डाइल्यूट करने का बता गए थे सर। कहा था कि पानी में धीरे धीरे बूँद–बूँद डालते जाना एक साथ बिल्कुल नहीं, लेकिन जैसे ही सर दूसरे ग्रुप को बताने लगे तो सुगंधा को देखने के चक्कर में अबीर ने पूरा एसिड पानी में डाल दिया, चट चट चट की आवाज़ से जार का निचला हिस्सा चटक गया और एसिड बहने लगा। सबके हाथ पाँव फूल गए, डाँट खाई सो अलग। सुगंधा ने भी उसकी इस हरकत पर उसकी टाँग खिंचाई की थी।

अबीर जैसे दीवाल पर चल रहे यादों के संदूक को देखते खो सा गया। यूँ उसे देखते देखते वे स्कूल से आगे हो गए। अपनी कॉलेज की पढ़ाई के लिए सुगंधा बाहर चली गई, और अपने पिता के कारोबार में हाथ बटाने अबीर दुकान पर बैठने लगा। साइंस बदल कॉमर्स ले लिया कॉलेज में क्योंकि उस क़स्बे में साइंस कॉलेज नहीं था। और फिर केमिस्ट्री पढ़ने की वजह भी तो अब नहीं बची थी। वह जानता था सुगंधा से वह कभी कुछ कह नहीं पायेगा, न वो मानेगी, उसे अबीर से प्यार नहीं था, हाँ उससे प्यार करने वालों उसे पसंद करने वालों की कमी नहीं थी। कितने ही लड़के उस पर मरते थे लेकिन उसे फुर्सत ही नहीं थी किसी की तरफ देखने की। उसकी यही बात अबीर के मन में उसके सम्मान को बढ़ा देती। और जैसा अक्सर होता है, कई कहानियाँ अधूरी रह जाती हैं, अब इस को अधूरी भी कैसे कहें जो शुरू ही नहीं हुई। लड़कपन के ऐसे कितने क़िस्से होते हैं जो केवल एक महकती याद बनकर रह जाते हैं। अबीर ने भी उस याद को एक सूखे फूल की तरह सहेज लिया था।

लेकिन कुछ ख़ुशबुओं के मौसम फिर फिर लौटते हैं।

उस समय लैंड लाइन फ़ोन होते थे। दूसरे शहर भी फ़ोन करना हो तो एस टी डी बूथ का सहारा लेना होता था। एक दिन, सुगंधा की मम्मी अबीर की दुकान पर आई, उसने उठकर नमस्ते कहा, वे बोलीं "अबीर ज़रा सुगंधा को फ़ोन लगा दो यह लो उसका नम्बर।" अबीर को तो मानों मुँह माँगी मुराद मिल गई, धड़कते दिल और काँपते हाथों से उसने नंबर लिया व कोड मिलाया। उधर फ़ोन की घंटी बज रही थी इधर अबीर का दिल बेकाबू हो रहा था। जैसे ही फ़ोन उठाया अबीर ने हड़बड़ा कर चोंगा सुगंधा की मम्मी को पकड़ा दिया। बात वे दोनों कर रहीं थीं और सुगंधा की आवाज़ उसके कान में गूँज रही थी। एक बार डायल करने पर ही वह नंबर उस याद हो गया था। सुगंधा की मम्मी बात ख़त्म कर अबीर को पैसे दे चली गईं। डायरी में नंबर नोट का बहुत देर तक अबीर उस नंबर को देखता रहा। वह नंबर जैसे नंबर न

होकर किसी ताले की चाबी हो या कि किसी पहेली का हल। अबीर उस नंबर को बार-बार छू कर देखता। कितनी ही बार तो उसने उस नंबर को सूँघ लिया जैसे सुगंधा की ख़ुशबू उसमें बसी हो। यूँ भी हर प्यार की एक विशिष्ट महक तो होती ही है ना। उस दिन से उसकी यादों के सूखे गुलाबों को, जो उसने किसी कोने में दफन कर दिए थे, को नई ज़िंदगी मिल गई थी। पतझड़ के सारे मौसम जैसे बसंत के रंग से रंग गए थे। वह हल्का हल्का, उड़ा-उड़ा सा रहने लगा था। जैसे कोई जादुई चाबी हाथ लग गई थी और सारे संसार की दौलत उसकी होने जा रही थी। अचानक शरारत से उसकी आँखें चमक गईं, हाथ अपने आप एक नंबर डायल करने लगे, उधर से फ़ोन उठाया, ओह उसकी आशा पर पानी फिर गया, जिस रिश्तेदार के यहाँ सुगंधा पढ़ने गई थी, शायद उनमें से किसी ने फ़ोन उठाया था। वह निराश हो गया, लेकिन थोड़ी देर बाद फिर नंबर घुमाया अबकी उसकी कोशिश रंग लाई उधर सुगंधा ही थी, वह हैलो हैलो बोले जा रही थी, "कौन बोल रहे हैं, आवाज़ नहीं आ रही है", और इधर अबीर उसकी आवाज़ की खनक में डूब गया। अब तो या रोज़ का नियम हो गया, जब मर्ज़ी होती तब वह नंबर डायल करता और सुगंधा की आवाज़ व अपनी धड़कनों को अपने कान के पास महसूस करता। अबकी तरह किसी नंबर का पता लगाना इतना आसान नहीं होता था उस वक्त। हर दो तीन दिन में सुगंधा की मम्मी भी फ़ोन लगाने वहाँ आ जातीं। छोटा सा क़स्बा, कोई विशेष सुविधा नहीं, वहीं बैठ कर बात करनी होती। एक दिन सुगंधा की मम्मी ने जवाब दिया, "अबीर की दुकान से तुम्हें फ़ोन करती हूँ।" उधर से सुगंधा ने शायद पूछा था। अबीर धक से रह गया, तो क्या सुगंधा को अंदेशा हुआ कि कहीं वह ब्लेंक कॉल मैं ही तो नहीं कर रहा। प्यार कितना डरपोक होता है ना। वह घबरा सा गया, यह जानते हुए भी कि नंबर पता करने का तरीक़ा नहीं है या बहुत मुश्किल है। लेकिन उसके बाद वह थोड़ा सावधान हुआ और रोज़ नहीं एक दो दिन छोड़कर सुगंधा की आवाज़ सुनने लगा। मुहब्बत के मौसम उसके जीवन में फिर लौट आये थे।

दिन पर दिन गुज़रते रहे, मौसम बदलते रहे लेकिन प्यार के मौसम तो सदाबहार होते हैं, प्यार तो बारह मासी फूल है जो कभी मुरझाता नहीं। अबीर को तो बस एक नंबर और एक हैलो, गुदगुदा जाते, सहला जाते। उसे तो ख़बर भी शायद नहीं थी कि कोई उसे इतना चाहता है। एक दिन वह आसमान से गिरा जब देखा कि सामने से अपनी मम्मी के साथ सुगंधा चली आ रही थी। ओह! वह क्या करे दिल बेकाबू हो चला, अंदर का चोर डर भी गया कहीं चोरी तो नहीं पकड़ी गई, जैसे तैसे सँभाल तो लो वह ऐन सामने मुस्कुराती सी, थोड़ी बड़ी हो गई है, और ज़्यादा सुंदर लगने लगी थी।

अबीर ने उसकी मम्मी को नमस्ते किया उसे हैलो, तो वह जवाब में मुस्कुरा दी, गुलाबी सूट, गुलाबी रंग उस पर कुछ ऐसे फबता जैसे उसी के लिए बना हो। ख़ैर, अपने भाई को फ़ोन लगाने आई थी, फ़ोन पर बात कर और अबीर से उसकी पढ़ाई की बात कर वह जाने लगी। अचानक वह फिर अबीर की तरफ पलट कर बोली थी "अबीर ब्लेंक कॉल पता करने का कोई तरीक़ा है क्या, तुम तो फ़ोन के बारे में जानते हो सोचा तुमसे पूछ लूँ।" अबीर की तरफ बड़ी गहरी निगाह डालते उसने पूछा, "क्यों पता करना है?" अबीर ने मसूमियत से कहा था। वह बोली "कोई बार-बार फ़ोन करता है।" फिर वही गहरी दृष्टि। "कुछ बोलता है क्या?", अबीर ने पूछा, वह बोली "नहीं।" अबीर ने कहा था, "ऐसा तरीका तो नहीं है पुलिस से पता कर सकते हैं।" उसने फिर बोल दिया "नहीं नहीं रहने दो"।

"चल थैंक्स।" कह कर वह चल दी थी, लेकिन जाने क्यों उसे लगा कि वह समझ गई थी कि ब्लेंक कॉल अबीर ही करता था। अबीर के पास उसके दो नंबर हो गए थे। वह कुछ दिन वहीं थी, तो अक्सर फ़ोन करने आती थी। जब-जब आती अबीर दिन समय तारीख़, उसके कपड़ों का रंग, कितना मिनट बात की, सब इस डायरी में लिख लिया करता था। कई बार कॉल नहीं लग रहा कहकर उसे सामने बैठाए रखा। जब वह वापस चली जाती तो ब्लेंक कॉल ही अबीर का सहारा थे। बात करने की हिम्मत उन दिनों नहीं होती थी।

बस इतनी ही चली यह कहानी फिर वो कहाँ अबीर कहाँ, कुछ पता नहीं। व्यापार समेट अबीर विदेश, सुगंधा पता नहीं कहाँ। शादी हो गई बरस बीत गए लेकिन यादों का महकता गुलदस्ता साथ रहा। क्या सुगंधा को भी याद आता होऊँगा मैं, क्या पता।

लेकिन डायरी के पन्नों में दर्ज वह महकते नंबर अब भी दिल धड़का जाते हैं। अब वो धड़कनों के मौसम कहाँ अब तो जिसका नंबर हो उसकी पूरी हिस्ट्री आपके स्मार्ट फ़ोन पर आ जाती है। कुछ छुपाने का सुख, वह धुकधुकी, वह आमना- सामना होने पर पसीने-पसीने हो जाना, बात करने में थर-थर काँपना, एक दूजे की आवाज़ सुनने के लाख जतन, एक दूजे को देखने का रोमांच अब कहाँ।

जाने कितनी प्रेम कहानियों में ऐसे महकते नंबर होंगें, कितनी गली के नुक्कड़, कितनी छतों की मुँडेर, कितने गीत जो अब भी बजें तो याद के गलियारे की सैर करवा देते हैं, कितनी साइकल की घंटियाँ, कितनी गाड़ियों के हॉर्न कितनी आवाज़ें अवचेतन में बसी हैं जो ज़िंदगी की घनेरी रातों में जुगनुओं की तरह चमक उठती हैं।

जाने कितनी महकती ख़ुशबुएँ हैं जो फड़का देती हैं नथुने, धड़का देती है दिल। अबीर ने सोचा एकबारगी, रहने दूँ यहीं छोड़ दूँ अब क्या हासिल, सोचा नंबर एक बार फिर डायल कर लूँ, लेकिन मन ने कहा यह नंबर ही ख़त्म हो गए, this number does not exist सुनने के बजाए इस नंबर के साथ जुड़ी यादों के एक्जिसटेंस को बने क्यों न रहने दिया जाए। पुरानी यादों की महक से आज की ज़िंदगी कभी-कभी महक उठे तो क्या बेवफाई है। और उसने मुस्कुराते हुए वह डायरी अपनी शर्ट की जेब में रख ली दिल के बिल्कुल करीब।

000

घायल पंखों की उड़ान

अर्चना मिश्र

आँखों से अनगिनत सैलाब उमड़ चुके। ऐसा लगता मानों जन्मों का रुदन जज़्ब हो उसके अंदर। अनन्या ने कितनी रातें डर कर, पसीने से तरबतर हो, जाग कर बिताई थीं। अंतर्मन में दबी डरावनी परछाईं आज भी उभर जाती है। इतना भय व्याप्त है, कि नींद में डरकर अभी तक चीख़ पड़ती है। अनन्या की आत्मा आज भी सिसकती है। आँसू आज भी छलकते हैं। इस जीवन में उस दिन को विस्मृत कर पाना संभव नही।

उस दिन का हादसा आज तक भूली नहीं है अनन्या। हमेशा की तरह उस दिन भी वह बाबा को दोपहर का खाना, खेत में देकर लौट रही थी; तभी चार लड़कों को उसने देखा। उनमें एक छोटा था। जब तक वह उनके करीब पहुँचती उससे पहले ही तीन लड़के पास आए और उसके समझने से पहले उसका मुँह दबाकर उसे पकड़ कर पास के खलिहान में जहाँ कटी फसल के ऊँचे-ऊँचे ढेर लगे थे, उसके पीछे ले जाने लगे। वो अपनी पूरी ताक़त लगा ज़ोर से चीखी। लेकिन पूरी चीख़ निकलने से पहले ही उन लोगों ने उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। उसने खूब हाथ पैर पटक कर अपने को बचाने की कोशिश की तभी एक ने अपने गले में पड़े अँगौछे को उतार उसके दोनों हाथ पीछे से कस कर बाँध दिये। छोटा लड़का वहीं खड़ा था, उसे बाहर निगरानी करने के लिये कह तीनों उसे घसीट कर ले गए।

उसकी चीख़ अब गूँ गूँ की आवाज़ में सिमट कर रह गई। पहले तो ताक़त थी फिर पीड़ा और तकलीफ़ घुटी -घुटी सी कराह में बदल उसे निढाल कर गई।

अचानक किसी के उधर आने की आहट सुनते ही बाहर खड़े लड़के ने सतर्क किया तो वे सब जल्दी से भागने लगे तभी उनमें से किसी की आवाज़ आई स्साले! तेरा नंबर नहीं लगा तो क्या। अगली बार देखेंगे। अभी तो जल्दी से अपने कपड़े पहन ले नहीं तो सब फँस जाएँगे। उसके मुँह और हाथ में बँधे कपड़े खोल कर जल्दी से सब चले गए।

वीरान खेत बेबस हो उसे मूक देखते रहे। फसलों का ढेर उसकी चीखों का मौन साक्षी रहा। सूरज अपने प्रखर उजाले में होने वाले काले कृत्य को रोक नहीं सका। किसी ने उसका साथ नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद किसी तरीके अपने को उठा भरी दोपहरी में बदहवास सी लँगड़ाते हुये घर आई और माँ को देख उसका रुदन हिचकी में बदल गया। तब तक माँ का ध्यान उसके पैरों पर बहते खून और फटे कपड़े पर गया और एक औरत होने के नाते बगैर कहे वह सब समझ गई।

कौन थे वे लोग? तू किसी को पहचानती है ?

नहीं।

कैसे हुआ यह सब? कितने लोग थे।

चार लड़के थे। मुझे तीन लड़कों ने पकड़ा था। चौथा लड़का बाहर खड़ा निगरानी कर रहा था। माँ को बताते- बताते असहनीय दर्द से तड़प उठी वह।

उसको दर्द से कराहता देख माँ की भी रुलाई फूट पड़ी। जो हुआ, उसे भूलने की कोशिश कर, कह माँ ने उसके कपड़े बदले, मुँह धुलाया। गर्म दूध में हल्दी डाल पिला कर लिटा दिया।

अर्चना मिश्र
फार्च्यून सिग्नेचर, बी 3 /401, ओरायन इंटरनेशनल स्कूल के पास, बावड़िया कलां
भोपाल म. प्र. 462026
मोबाईल- 9893423095
ईमेल- archanamishra0507.am@gmail.com

दो दिन तक वह उठने, बैठने, करवट बदलने की स्थिति में नहीं थी। शाम माँ-बाबा की जो भी बात हुई हो, यह तय हुआ कि थाने में रिपोर्ट नहीं करेंगे, जैसे ही वह ठीक हो जाएगी, गाँव का सब बेच बाँचकर यहाँ से दूर शहर चले जाएँगे। अगर वह लड़के इस गाँव के नहीं हैं, तो हो सकता है वह फिर आ जाएँ। अब यहाँ रहना ख़तरे से खाली नहीं है। आगे की पढ़ाई अनन्या शहर से कर लेगी।

अभी बारह साल की है, पूरी ज़िंदगी पड़ी है इसकी। किसी को पता चल गया तो बड़ी बदनामी होगी। हम मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। आगे शादी ब्याह होना मुश्किल हो जाएगा। समय के साथ सब घाव भर जाएँगे। पता करो ऐसी हालत में घर आते इसे किसी ने देखा तो नहीं?

उसके इंकार करते ही बाबा ने गहरी लंबी साँस ली। इसे समझा दो कि किसी के सामने अपना मुँह नहीं खोलेगी।

उस दिन के बाद उस बात का ज़िक्र किसी ने नहीं किया। उन दिनों एक अदृश्य दीवार, उस हादसे ने निर्मित कर दी थी उन सबके बीच। समय के साथ शहर में धीरे-धीरे वह ढ़हती चली गई।

अनन्या बाहर से हमेशा शांत और संयत दिखती लेकिन अंदर ही अंदर उसे लगता वह कई तहों में जी रही है। वह क्लास की बाकी लड़कियों की तरह नहीं है। बहुत मुश्किल होता है मन के अंदर तैरती काली बदलियों को छुपा कर रखना कि वो सतह पर आकर बरस ना जाएँ। उसकी कोई सहेली नहीं बन पाई। उसका लड़कपन दूसरे बच्चों की तरह नहीं था। लगता समय से पहले वह मैच्योर हो गई। जाने कौन सी फाँस उसके ज़ेहन में चुभी थी, जो उसे अन्य बच्चों की तरह सामान्य होने नहीं देती। उन दिनों माँ ही उसकी एकमात्र सहेली थी। जिनसे वह अपने मन की सब बात कह सकती थी। कभी पूछती कि उसके साथ ही ऐसा क्यों हुआ ? सुनकर माँ उसे गले लगा स्वयं रोने लगती। उसे समझाती और खूब मन लगाकर पढ़ने को प्रेरित करती। उसने पढ़ाई बहुत मन लगाकर की।

जिस उम्र में लड़कियों में सजने सँवरने का मोह और लड़कों के प्रति आकर्षण होता है। उस उम्र में वह इन सब से विमुख थी। लड़कों से उसे हमेशा खौफ़ होता था।

उस काली क्रूर दोपहरी को भुलाने की कोशिश करते- करते उसका ग्रेजुएशन पूरा हो गया।

वह आगे नौकरी करना चाहती है सुन बाबा उस पर नाराज़ होने लगे। अब शादी ब्याह की उम्र है। रिश्तेदार क्या कहेंगे। तेरे लिये एक अच्छा रिश्ता आया है। परिवार पैसे वाला है, लड़का भी अच्छा कमा रहा है। उन्हें पढ़ी- लिखी लड़की चाहिए; इसलिये उन्होंने यह रिश्ता खुद से माँगा है।

"नहीं बाबा, मैं शादी नहीं करूँगी।"

"क्या ? तू क्या सब लड़कियों से अलग है, जो हम तुझे घर बिठा कर रखेंगे।"

"हाँ बाबा!"

"सही कहा आपने, मैं सब से अलग हूँ। जो मेरे साथ हुआ वह सबके साथ नहीं हुआ।"

उसका जवाब सुनकर बाबा का मुँह मलिन हो गया। फिर कुछ नहीं कहा उन्होंने। कमरे से उठकर चले गए।

आज पहली बार अनन्या ने बाबा को जवाब दिया था। उसका मन दु:खी हो गया। उसी को सँभालने के लिये, उन्होंने वर्षों से गहरे तक जमीं अपनी जड़ें उखाड़ दूसरी जगह रोपी हैं। आत्मग्लानि होने लगी अनन्या को।

उसके साथ जब रेप हुआ, वह उसके मायने नहीं जानती थी। अगर माँ- बाबा साथ नहीं देते तब ? वह कल बाबा से माफ़ी माँग लेगी और मना लेगी। जो अपराध उसने किया नहीं उसकी सज़ा उसके साथ उसके परिवार ने भी भुगती है।

सुबह उठते ही उसने बाबा से माफ़ी माँगी।

बाबा मैं पुलिस की नौकरी करना चाहती हूँ। मुझे सिर्फ एक साल का समय दीजिये। उसके बाद आपका कहना मान लूँगी। जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूँगी। उसकी आँखों में नमी देख बाबा ने मौन स्वीकृति दे दी।

अनन्या ने जी तोड़ मेहनत की। उसे रात-रात तक पढ़ता देख, उसके सूखे मुँह को देख बाबा ने यहाँ तक कह दिया कि इतना कठोर तप मत कर। जैसा तू चाहेगी वैसा ही तेरी माँ और मैं करेंगे।

अंतत: उसकी मेहनत रंग लायी और वह पुलिस अधिकारी बन गई। ट्रेनिंग के दौरान उसने शारीरिक प्रशिक्षण में बहुत मेहनत कर जूडो कराटे में महारत हासिल कर लिया। पुलिस अकादमी में जब स्त्रियों के साथ अपराध किस-किस तरह से किए जाते हैं, इसके बारे में पढ़ाया जा रहा था तब अध्यापक ने एक किताब का रेफरेंस दिया। किताब थी फ्रांसीसी लेखिका सिमोन द बोउवार की "दि सेकंड सेक्स" उसका हिन्दी में अनुवाद प्रभा खेतान द्वारा "स्त्री: उपेक्षिता" के नाम से प्रकाशित पुस्तक में किया गया था। अनन्या ने इस किताब को पढ़ा। और पुरुषों की स्त्रियों के प्रति जो सोच है वह गहराई से जाना। अनन्या ने तभी संकल्प ले लिया कि ट्रेनिंग पूरी करने के बाद वह स्त्री पर होने वाले अत्याचारों, अपराधों पर विशेष ध्यान देगी। औरत होना निम्नतर होना नहीं है अपितु विशिष्ट होना है। इस सोच ने उसके आत्मविश्वास को बहुत दृढ़ता प्रदान की।

जहाँ- जहाँ उसकी पोस्टिंग होती, वहाँ के सारे गुंडे, मनचले लड़के उसके नाम से दहशत में रहते।

अपने को न्याय वह दिला नहीं पायी, यह कसक हमेशा उसके मन में उठती। सोचती कोई बात नही। उसकी जिस शहर में पोस्टिंग होगी, वहाँ कोई अनन्या अब नहीं होनी चाहिए। जितना खौफ़ उसे लड़कों से तब था अब वही खौफ़ बदमाशों को उसके नाम से होने लगा था। उसके मन का वह भय अब उसकी ताक़त बन गया था।

वैसे भी इस नौकरी ने उस डरी सहमी अनन्या का चोला कब उतार फेंका, इस निर्भीक मज़बूत अनन्या को पता ही नहीं चला।

अब शादी के लिये उस पर कोई दबाव नहीं। अगर उसके अनुकूल लड़का मिलेगा तभी शादी करेगी। उसके जवाब पर माँ- बाबा की सहमति अब साथ थी।

ज़िंदगी तेज़ रफ़्तार से दौड़ रही थी। प्रमोशन दर प्रमोशन के बाद उसकी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ती गई। काम में उलझी वह

बड़ी मुस्तैदी से अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से निर्वाह करती। नौकरी उसे सुकून देती। जब किसी बलात्कारी को देखती तो उसका क्रोध चरम सीमा को छू लेता। उसे लगता हर बलात्कार के केस को जल्दी से जल्दी सुलझा लिया जाए और उस पर मुकदमा चलाकर, बलात्कारी को जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी सज़ा दिलाई जाए।

इसी बीच उसने ध्यान दिया कि जब भी वह किसी केस को सफलतापूर्वक हल कर लेती है तो प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय अखबार के संपादक जी उस केस को प्रमुखता से छाप उसकी तारीफ़ करते और बधाई देते। उनके अनगिनत लेख बलात्कारों पर थे। अपने संपादकीय में बहुत सारे बलात्कार कांड के बारे में लिखा था उन्होंने। उनके लेखों में स्त्री विमर्श के बहुत सारे लेख होते। जो स्त्रियों को साहसी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

एक बार अनन्या को लड़कियों के कॉलेज में मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया।

वहाँ चर्चा का विषय था "बलात्कार का मनोविज्ञान और उसे रोकने के उपाय।"

वहीं अनन्या पहली बार उस प्रसिद्ध, लोकप्रिय अखबार के संपादक मदन जी से मिली। बड़े ही मिलनसार और हँसमुख लगे उसे।

वहाँ अनन्या से पूछा गया।

मैडम ! बलात्कार का कोई ऐसा केस जिसने आपको विचलित या आंदोलित किया हो।

पहले तो अनन्या को लगा कि समाज को नेतृत्व प्रदान करने के लिये अपने सत्य को उद्घाटित करे। लेकिन माँ- बाबा का ख़याल आते ही वह सच नहीं कह पायी। अव्यक्त को व्यक्त करना, निजी को सार्वजनिक करना इतना आसान नहीं।

एक क्षण ख़ामोश रहने के उपरांत उसने अपना ही केस दुहरा दिया।

तभी किसी दूसरे पत्रकार ने पूछा।

मैडम ! आपने उसे कड़ी सज़ा दिलायी होगी ?

अनायास उसके मुँह से निकल पड़ा।

"दुर्भाग्य से नहीं।" वह छोटी लड़की उन्हें पहचान नहीं सकी। वह अपने बचाव के लिये संघर्ष ही करती रह गई।

इसी बीच फ़ोन आते ही वह जाने को उद्धृत हो गई।

मैडम! बस आख़िरी सवाल। 'उस जगह का नाम क्या था?'

उसने अपने गाँव का नाम बता दिया।

फिर एक क्षण की देर किए बगैर तेज़ी से बाहर आ गाड़ी में बैठ लंबी साँस ली। ड्राइवर को घर की तरफ गाड़ी मोड़ने का बोल वह ऐसे निढाल हो गई मानों बलात्कार वर्षों पहले नहीं अभी हुआ हो।

वह तो सोचती थी कि कमज़ोर अनन्या इस दृढ़ पुलिस ऑफ़िसर अनन्या के अंदर दफ़न हो चुकी है। लेकिन नहीं वह आज भी उसके अंदर ज़िंदा है और उतनी ही कमज़ोर।

अचानक एक दिन मदन जी उससे मिलने घर आए। बातों ही बातों में उन्होंने स्पष्ट किया कि उस दिन जिस गाँव का नाम आपने बताया था, उस गाँव में आज तक पुलिस की जानकारी में कोई बलात्कार हुआ ही नहीं।

सुन अनन्या चौंक गई।

चेहरे पर आते भाव को छुपा अपने को संयत कर उसने कहा।

इतनी पुरानी बात थी कि मुझे गाँव का नाम याद नहीं आ रहा था, तो मैंने जल्दी में अपने गाँव का नाम बता दिया।

ओह! तो यह बात थी। आप भी भूल सकती हैं, यह तो मैंने सोचा ही नहीं। मदन के ऐसा कहते ही वह थोड़ी नॉर्मल हुयी।

फिर जितनी देर मदन जी रहे, वह क्या कह रहे थे अनन्या सुन नहीं पायी सिर्फ हाँ, हूँ के अतिरिक्त कुछ बोल नही पायी।

उसके बाद कई बार मदन जी से मुलाकात हुई पर अनन्या ने एक दूरी बना ली। एक दिन मदन जी का फ़ोन आया, 'क्या आप घर पर हैं ? मैं इधर आया हूँ तो सोचा आप से मिलता चलूँ'। वह कोई बहाना बनाने की जब तक सोचती तब तक फ़ोन कट गया और कुछ मिनट बाद ही मदन जी की गाड़ी गेट पर खड़ी होते दिखाई दी।

"आप पुलिस वाले घर बुलाते कहाँ हैं। चाय पीनी हो, तो खुद आना पड़ता है।"

बड़ी सहजता से मदन जी यह कहते हुए अंदर आ गए। सुन अनन्या मुस्कुरा दी। आप मुस्कुराते हुए बेहद अच्छी लगती हैं। सुनकर अनन्या संकोच से भर उठी। पहली बार किसी पुरुष की तारीफ़ उसे शहद जैसी मीठी लगी।

मदन के जाने के बाद भी उनकी कही बातें अनन्या के कानों में गूँजती रही। पहला मौका था जब किसी ने उससे इतनी बेतकल्लुफ़ी से बात की। आज तक उसके मिज़ाज को देख किसी पुरुष में साहस नहीं था कि उससे बात कर सके। लेकिन यह सब अनन्या क्यों सोच रही है। तुरंत अपने मन को हटा वह अगले दिन की मीटिंग की तैयारी में लग गई।

यदाकदा मदन के फ़ोन आते। कभी-कभार मदन घर आ जाते। मदन से बातें करना अनन्या को भी अच्छा लगता। एकाध बार मदन ने बाहर साथ चलने की इच्छा व्यक्त की। अनन्या का मन तो होता था लेकिन पता नहीं क्यों अंदर से हिचक होती और अनन्या कोई न कोई बहाना बना मना कर देती।

मुलाक़ात का सिलसिला एक बार शुरू हुआ। फिर धीरे- धीरे बढ़ने लगा। अनन्या सोचती मदन को कुछ पता नहीं है इसलिये इतना शिष्ट व्यवहार है उसका।

एक दिन अकस्मात् मदन ने अनन्या से पूछ लिया, "आपने शादी क्यों नहीं की?"

"मैं इन सबके लिये नहीं बनी हूँ।"

"क्यों?"

"आज भी लोग औरत को मात्र देह रूप में देखते हैं। मानवीय रूप में नहीं। नौकरी की ज़िम्मेदारी के कारण वक़्त नहीं मिला और अब तो उम्र हो चली है।" कह अनन्या फीकी सी हँसी, हँस पड़ी।

"मुझसे शादी करोगी ?"

अनन्या को इतनी जल्दी इस बात की उम्मीद नहीं थी। अचानक यह सुनते ही वह नि:शब्द हो गई, उसकी आँखों के कोर भीग उठे।

"नहीं! यह संभव नहीं।"

"क्यों अनन्या ?

"क्या मैं आपको पसंद नहीं ?" मदन ने पूछा।

"नहीं! ऐसा कुछ नहीं।"

"बस मैं शादी करना नहीं चाहती।"

फिर दोनों के बीच लंबा मौन पसर गया। बोझिल चुप्पी को तोड़कर, "मैं चलता हूँ, एक बार फिर विचार करना।" कह मदन तेज़ी से बाहर निकल गए।

पूरी रात अनन्या बेचैन रही। उसने अपने को आज तक इतना बेबस कभी नहीं पाया था। उसकी छवि एक तेज़ तर्रार पुलिस ऑफ़िसर की है। वह अपराधियों, बलात्कारियों से इतनी कठोरता से पेश आती कि कई बार उसके कलीग भी डर जाते। उसके अंदर कोमल औरत है उसका आभास तक वह बाहर नहीं होने देती। अपने साथियों के बच्चों को देख, उसका भी मन होता कि उसका भी अपना संसार हो। किस स्त्री की इच्छा नहीं होती कि उसका अपना घर हो, बच्चे हों। कोई प्यार करने वाला हो। कोई तो ऐसा हो जिससे वह अपना सब कुछ बाँट सके। मदन जी उसे पसंद हैं। उनसे शादी करना किसी भी लड़की का सौभाग्य ही होगा। लेकिन जो कील गहरे तक धँसी है उसकी चुभन अनन्या को यह सब सोचने से रोकने लगी।

हो सकता है वह शादी के बाद सहजता से शारीरिक रिश्ता निभा न पाये।

"तब....?"

बहुत सी कठिनाइयाँ आ सकती हैं, समर्पण की नदी लाँघने में। योनि का घाव तो सूख गया, लेकिन उसके अंतर्मन का घाव अभी तक हरा है। वह किसी पुरुष का एहसान नहीं चाहती और न ही दया भाव। अपने को कभी कमतर महसूस करना, तो कतई नहीं।

उसका ऑफ़िस के काम में मन नहीं लगा। उसने अपनी उस दिन की सारी मीटिंग रद्द कर दीं। इस ऊहापोह से उसे अब उबरना होगा। बड़ी हिम्मत कर उसने मदन को सब सच बताने का फैसला कर लिया। मन ही मन डरी भी कि कहीं मदन अख़बार की सुर्खियाँ न बना दे। एक अशोक चिह्न, साथ में एक स्टार, और आई.पी.एस लिखी वर्दी पहनती है वह।

"जो होगा डटकर मुकाबला करूँगी।" सोचते ही अनन्या के मन में बैठा भय निकल गया।

मदन को अनन्या ने अपना सच बता दिया। अब बताइए मदन जी इस देह को कौन पुरुष खुशी से स्वीकारना चाहेगा। मेरे अंदर की गाँठें आसानी से संबंधों को जीवंत नहीं होने देंगी। निर्णय लेने के पहले सोच लीजिये। नहीं तो बाद में आपको अफ़सोस होगा।

मुझे कोई अफ़सोस नहीं होगा; क्योंकि यह सब मुझे पहले से पता था।

"क्या??"

"आपको कैसे पता ? आप उन लोगों को जानते हैं?" अनन्या ने कई सवाल एक साथ पूछ डाले।

"वे तीनों कहाँ है?"

"मुझे नहीं पता अनन्या। वे मेरे मोहल्ले के दादा टाइप भैया थे। मैं उनके छोटे- मोटे काम कर देता तो वे लोग मुझे अपने साथ कभी-कभी क्रिकेट खेलने देते। जिसके कारण मेरे दोस्तों पर मेरी धाक जम जाती। मुझे उन लोगों के बारे में इससे ज़्यादा मालूम नहीं। उस दिन भी वे सब गाँव घूमने जा रहे थे तो मैं भी चला गया। लौटते में उन लोगों ने कहा कि किसी से कुछ कहना नहीं, अगर हमें पता चला तो बुरा होगा। मैं डर गया और उस दिन के बाद मैं उन भैया लोगों से दूर रहने लगा। समय उपरांत पापा का ट्रांसफर हो गया और हम दूसरे शहर चले गए।"

"जो लड़का बाहर खड़ा निगरानी कर रहा था, वह मैं था। तब मैं नासमझ था, सेक्स क्या होता है? यह मुझे पता नहीं था। उस वक्त मैं आपकी कोई मदद नहीं कर पाया। लेकिन वो दबी-घुटी चीख़ हमेशा मेरे कानों में गूँजती रहती। आप चाहें तो अब मुझे गिरफ़्तार कर सकती हैं। मैं अपना गुनाह कबूल करता हूँ।"

"आप नहीं जानती मैं एक बार आपके गाँव गया था, आपसे मिलने के लिये। वहाँ पता चला कि आप लोग गाँव का सब बेच-बाँचकर शहर जा चुके हैं। आत्मग्लानि का बोझ लिये मैं तब से जी रहा हूँ।"

"कॉलेज के फंक्शन में आपने उस बलात्कार का ज़िक्र जिस तरह किया था। मुझे तभी अंदेशा हो गया था कि शायद वह लड़की आप हो। लेकिन गाँव का नाम सुनकर और आपके चेहरे का उड़ा रंग देख यकीन हो गया कि आप वही हो। भले ही व्यक्तिगत हादसे को आपने सामाजिक जामा पहना दिया। यह मात्र एक संयोग है कि आप मिल गईं। आप जो सज़ा देना चाहें, मुझे दे सकती हैं। अगर कभी उनमें से कोई आरोपी मुझे मिला तो मैं आपको न्याय दिलाने में पीछे नहीं हटूँगा।"

"मदन जी! जो अपराध आपने किया नहीं, उसकी सज़ा आपको कैसे दे दूँ!"

"नासमझी में ही सही पर अपराध तो मुझसे हुआ है अनन्या। अपराधी का साथ देना भी अपराध है। इस अपराध बोध से मैं उबरना चाहता हूँ।"

"अतीत इतना भी बड़ा नहीं कि वर्तमान और भविष्य के ऊपर हावी हो जाए अनन्या। आपने उस हादसे को सबसे छुपा कर वर्षों तक मन में जज़्ब कर रखा था। वही सब बातें सलवटों की तरह आपके दिमाग में अपने निशाँ छोड़ गई हैं। आपसे कोई अपराध नहीं हुआ। एक बार अपने अतीत से निकल कर देखिये। आप भी सामान्य लड़कियों की तरह हैं। आप हमेशा उन लड़कियों को प्रेरणा देकर आगे बढ़ने को कहती हैं, जिनका रेप होता है। फिर अपने लिये ऐसी सोच क्यों अनन्या...?"

"आप ने पहले क्यों नहीं बताया मदन जी, कि आप मेरा अतीत जानते हैं।"

"सच कहूँ अनन्या।"

"मैं आपको चाहने लगा था और आपके मिज़ाज को जानते हुये यह गुस्ताख़ी कर मैं आपको खोना नहीं चाहता था। मैं आपको प्यार करता हूँ अनन्या।"

"मैं जानता हूँ एक स्त्री होने के कारण आपकी पीड़ा मुझसे ज़्यादा है। उस घटना को बुरा स्वप्न समझ भूल जाइये। आज आप जिस समाज का नेतृत्व कर रही हैं उसके आगे यह मामूली बात है। अपने मन को इसी क्षण अपराध बोध से मुक्त कर दीजिये। एक नई शुरूआत स्वयं करके देखो अनन्या।"

सुनकर अनन्या की आँखों में आँसू आ गए।

"अब और नहीं।" कह कर मदन ने प्यार से उसके आँसू पोंछ, सीने से लगा लिया।

000

चन्नर के बहाने से

विनय कुमार

आज दोपहर दरोगा चच्चा गुज़र गए, पिछले तीन चार हफ्ते से बीमार चल रहे थे और उमर भी अब काफी हो चली थी। दरअसल आजकल कहीं भी किसी बुज़ुर्ग का गुज़र जाना कोई घटना नहीं होती, बशर्ते वह कोई सेलेब्रिटी न हो। वैसे भी धीरे धीरे उनकी पीढ़ी के अधिकांश बुज़ुर्ग प्रस्थान कर गए थे और कभी कभी वह मज़ाक में कहते भी थे "आज सपना में मनोहरा ऊपर से बुलावत रहा, लागत हौ कि अब चले के पड़ी", और ठठा कर हँस पड़ते।

ख़ैर बात यह नहीं है कि दरोगा चच्चा का गुज़र जाना कोई बहुत बड़ी या अप्रत्याशित घटना है, बुढ़ा गए थे, बीमार थे तो यह तो होना ही था। और अपने पीछे गाँव में भरा पूरा परिवार छोड़ गए जिसकी हर सुख सुविधा का अपने जान में पूरा इंतज़ाम भी करके गए। घटना दरअसल कुछ और ही है, इनके जाने से एक क़िस्से का अंत हो गया जिसे लिखने की शायद अधिकतर लोगों को ज़रूरत महसूस ही नहीं होती। उस क़िस्से का सबसे महत्त्वपूर्ण किरदार "चन्नर" तो कुछ वर्ष पहले ही गुमनाम मौत मर चुका था और अब दरोगा चच्चा के गुज़र जाने से तो अगली पीढ़ी को कभी पता भी नहीं चलेगा चन्नर के बारे में। उसका असली नाम तो "चंदर" रहा होगा लेकिन लोगों ने अपनी सहूलियत से चन्नर बना दिया और बड़े तो उसे "चनरा" ही बुलाते थे। अब आप भी सोच रहे होंगे कि जब ऐसी कोई ख़ास बात ही नहीं थी इन घटनाओं में तो फिर मैं यह क्या लिखने बैठ गया, तो शायद इस क़िस्से से गुज़र कर आप समझ सकें। वैसे भी अपने समाज में कहाँ किसी को ऐसे लोगों के बारे में सोचने की फ़ुर्सत रही है। और सिर्फ अपने समाज को ही क्यों कहें, कमोबेश दुनिया के हर समाज में ऐसे लोग हाशिए पर ही रहे हैं जिन्हें न तो वर्तमान में जगह मिलती है और न ही इतिहास में।

बचपन में गाँव जाना हर साल ही होता था, दरअसल उस समय छुट्टी बिताने के लिए आज की तरह न तो टीवी थे, न सिनेमा हाल और न ही इंटरनेट। फ़ोन थे नहीं तो समाचार मिलने या भेजने का पत्र ही एक साधन था। गर्मियों की छुट्टी का बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहता था और उसकी वजह थी क़स्बे में गुज़र रहे अनुशासित जीवन से कुछ महीनों की फ़ुर्सत। गाँव में छुट्टी के दरम्यान न तो कोई टोका टाकी होती और न पढ़ाई के लिए मारपीट। उस समय हम बच्चों को ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का ख़याल नहीं रहता था, जबकि गाँव में सबके टोले अलग-अलग हुआ करते थे। बड़े अलबत्ता कोशिश करते कि बच्चे भी इन गंदगियों को अपने में आत्मसात् कर लें लेकिन बच्चे तो बच्चे ही ठहरे।

ऐसी ही एक छुट्टी में गाँव पर मुलाक़ात हुई "चन्नर" से। अब उसे आप मुलाक़ात कहें या कुछ और, हमें तो हर बार कुछ न कुछ अलग और दिलचस्प मिल ही जाता था गाँव में। खेलते कूदते दरोगा चच्चा के दरवाज़े पर पहुँचने पर सामने से चन्नर दिखा, थोड़ा अलग था इसलिए याद रह गया। आगे के वर्षों में उसके चलने के तरीक़े को लेकर हम लोग अक्सर उसका मज़ाक भी उड़ाया करते थे लेकिन उसके भचक कर चलने के पीछे की दर्दनाक घटना का पता काफी सालों बाद चला। एक अजीब सी मुस्कुराहट उसके चेहरे पर इस तरह रहती जैसे किसी ने पैदा होते ही उसके चेहरे पर इसे चस्पा कर दिया हो। और नाक से निकलती पतली आवाज़ जिससे हम लोग अँधेरे में भी चन्नर को पहचान लेते। आज भी चन्नर की आवाज़ मन में गूँजती रहती है "कइसन हो भईया", जो वह हमें जब भी देखता, अपनी चिर परिचित मुस्कुराहट के साथ ज़रूर पूछता।

और अगर सच कहूँ तो बचपन में तो हमें पता भी नहीं था कि चन्नर दरोगा चच्चा के घर का नहीं था। उस समय बच्चे बहुत साल तक बच्चे ही रहते थे और धीरे धीरे उनके अंदर समाज की

विनय कुमार
सहायक महा प्रबंधक, बैंक ऑफ इंडिया,
भोपाल, अरेरा हिल्स, जेल रोड, भोपाल
मोबाइल- 9140521518
ईमेल- vinayavish@gmail.com

बुराई पैठ बनाती थी। और इसकी सबसे बड़ी वजह थी टी वी और इंटरनेट का न होना। और दूसरा कारण हर घर में बुज़ुर्गों की उपस्थिती थी हमारा खूब ख़याल रखते। वरना आजकल तो बच्चों का बचपन जैसे पैदा होने के साथ ही खो जाता है। वो तो काफी सालों बाद पता चला कि मंदबुद्धि चन्नर बचपन में ही पता नहीं कैसे उनके घर आ गया था और उसके बाद फिर उसकी लाश ही दरोगा चच्चा के घर से निकली। इस क़िस्से की शुरूआत तब हुई थी जब देश अंग्रेज़ों से तो कई साल पहले ही आज़ाद हो चुका था लेकिन जाति और धर्म के बंधन से ज़रा भी आज़ाद नहीं हुआ था। वैसे अपना समाज आज भी इन चीज़ों से आज़ाद कहाँ हुआ है, बस कहने के लिए हम विकसित होते जा रहे हैं। गाँव में ठाकुरों के लगभग तीस घर एक साथ थे और उसके एक तरफ यादव टोली, उसके पीछे बनिया और धोबियों के घर और सबसे पीछे गंदगी से बजबजाती जगह में चमरौटी। तब चमरौटी का पता गंदे और बदबूदार जगह से ही होता था, आज की तरह बाबा अंबेडकर की मूर्ती नहीं होती थी। कुनबी और कोईरी जातियाँ दूसरे तरफ बसी हुई थीं तो सबसे उपेक्षित और कमज़ोर तबका मुसहरों का था जो गाँव से काफी दूर बसे हुए थे। शादी हो या मरनी करनी, पत्तल मुसहर लोग ही बना कर लाते थे, पुरवा इत्यादि कोंहार (कुम्हार) लोग बनाते थे। समाज में हर तबके का स्थान सदियों से निर्धारित था और उसमें किसी परिवर्तन की बात सोचना भी उस दौर में संभव नहीं लगता था।

उस समय खेती बाड़ी अधिकतर ठाकुरों के पास ही थी, यह अलग बात थी कि काग़ज़ों पर ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया था। थोड़ी बहुत ज़मीन यादव या कुर्मी लोगों के पास भी थी जिसमें वह लोग सब्ज़ी और थोड़ा गेहूँ चावल उगा लेते थे। ट्रैक्टर इत्यादि उस समय होते नहीं थे और खेती में बैल ही काम आते थे। लिहाजा ठाकुरों के हर घर में एक से दो जोड़ी बैल, कुछ गाय भैंस और उनके बच्चे। कुल मिलाकर हर घर में छह से बारह जानवर थे और उनके सानी पानी (खाना पीना) और देखभाल के लिए एक मजूर (मज़दूर) भी होता था। अधिकतर तो यह मजूर गाँव के ही चमरौटी से या अन्य निचली जात के लोग होते लेकिन कभी कभी दूसरे गाँव से भी मजूर मिल जाते थे। जानवरों के गोबर से खाद बनती थी जो खेती में इस्तेमाल होती, हाँ बहुत साल बाद जब ईंधन की कमी होने लगी तो गोबर से उपरी (उपले) की पथाई भी शुरू हो गई।

अब ऐसे में किसी को कोई ऐसा लड़का मजूरी के लिए मिल जाता जो कहीं दूर का हो और दिमाग़ी रूप से भी कमज़ोर हो तो उसके भाग्य का कहना ही क्या। अब अपने दरोगा चच्चा भी ऐसे ही भाग्यवान थे जिसे चन्नर बचपन में ही मिल गया। किस गाँव का था और उसकी जात क्या थी, शायद दरोगा चच्चा को ही पता थी। लेकिन यह हम लोगों को पता नहीं था और न कभी इसकी ज़रूरत ही महसूस हुई। लेकिन इतना तो था कि चन्नर बाहर के साथ-साथ घर के अंदर के काम भी करता था और इससे यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उसकी जाति बहुत निचली नहीं थी। शुरूआती सालों में हमने चन्नर को सिर्फ मानसिक रूप से ही कमज़ोर देखा था, शारीरिक रूप से वह स्वस्थ और तंदरुस्त था। लगभग बारह जानवर थे दरोगा चच्चा के घर, सबका सानी पानी, गोबर, खेत पर काम और घर पर इनारा (कुआँ) से पानी काढ़ कर लाना, सब काम चन्नर के ही ज़िम्मे था। अक्सर तो वह हमें मुसकुराता हुआ ही दिखता लेकिन कभी कभी उसके चेहरे से पता लगता था जैसे वह रोया हो और बाद में उसकी पिटाई की बात हमें पता चल जाती। कुछ बड़े होने पर ही हम लोगों को पता चला कि दरोगा चच्चा, जो हमें सिर्फ बड़ी-बड़ी मूछों के चलते डरावने दिखते थे, वास्तव में बहुत ख़तरनाक आदमी थे। अगल-बगल के गाँव वाले भी उनसे भय खाते और चमरौटी तथा अन्य निचली जतियों में तो उनके नाम से लोग सिहर जाते।

गाँव में रहने के दौरान हमारे बाबा उनके कई क़िस्से सुनाते जिसमें अधिकतर उनके अत्याचार के ही होते थे, यह अलग बात थी कि उनको इसका कभी अफ़सोस नहीं होता था। कभी-कभी तो उनके आवाज़ में गर्व भी झलकता था जैसे दरोगा बहुत बड़े योद्धा हों। चमरौटी में सुबह-सुबह अगर उनकी आवाज़ सुनाई दे जाए, तो मजाल नहीं थी कि वहाँ के मजूरा उनके खेत में काम के लिए नहीं पहुँचें। और उसके बाद जो भी दरोगा चच्चा दे दें, सब ठीक, कोई शिकायत करने की हिम्मत नहीं करता था। चमरौटी के पता नहीं कितने पुरुष उनके द्वारा पिटाई के बाद हफ्तों शरीर पर हल्दी का लेप लगवाकर इलाज कराते थे और कितने ही लोगों के हाथ पैर उन्होंने तोड़े थे। लेकिन न तो कोई पुलिस में शिकायत कराने की हिम्मत कर पाया और न ही प्रधान से। उस समय तो प्रधान भी ठाकुरों के ही घर से होते थे, बहुत बाद में जब प्रधानी का पद महिला और अनुसूचित जाति के लिए रिज़र्व हो गई तब भी सिर्फ नाम की अनुसूचित जाति की महिला प्रधान होने लगी, काम तो सब ठाकुर लोग ही करवाते थे। एक बात तो थी कि पहले वाले ठाकुर जब ग्राम प्रधान होते थे तो वह कम से कम अपने भाई और पटीदारों का कुछ लिहाज करते थे लेकिन जैसे जैसे गाँवों में पैसा पहुँचने लगा, सारे रिश्ते नाते उसकी भेंट चढ़ने लगे। अब ठाकुरों में भी भैया, चाचा, बब्बा इत्यादि रिश्ते सिर्फ नाम के ही बचे, वास्तव में उनके अंदर की गर्माहट ख़त्म हो गई।

समय में एक सबसे अच्छी बात यह होती है कि वह जैसा भी हो, बीत जाता है। हमारे क्षेत्र में भी समय अपनी गति से बीतता गया, धीरे-धीरे विकास की किरण दस्तक देने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं का असर धीरे-धीरे ही सही, हमारे गाँव और आस-पास भी दिखने लगा। गाँव में पहले पक्की सड़क बनी, मोटर गाड़ियाँ चलने लगीं और अंततोगत्वा बिजली भी आ गई। कुछ बड़े जोत वालों के घर ट्रैक्टर भी आ गया था जो उनकी हैसियत में चार चाँद लगा देता था। इस विकास का असर दहेज पर भी पड़ा, पहले जहाँ शादियों में रेडियो और साइकल मिलना बड़ी बात होती थी, वहीं रेडियो की जगह पहले टू इन वन ने ली और फिर टी वी सेट ने ले ली। टी वी भी धीरे धीरे श्वेत श्याम से रंगीन हुए और साइकल भी

मोपेड, स्कूटर से होती हुई मोटर साइकल तक पहुँच गई। ट्रैक्टर आने के साथ सबसे बड़ा दुख हमें इस बात का हुआ कि अब गेहूँ की दँवाई (मंडाई) थ्रेशर से होने लगी। वरना पहले तो खलिहान में गेहूँ की फसल काट कर बिछा दी जाती और हम लोग बैलों द्वारा चलने वाले दँवाई मशीन पर बैठ कर घूमा करते। गेहूँ की दँवाई के साथ-साथ हमारी मौज भी होती थी।

ख़ैर इसी सिलसिले में एक और क़िस्सा अपने कल्लन बब्बा का है। गाँव के अधिकतर बड़े बुज़ुर्ग एकदम भोर में जग जाते थे और फिर उनका राम राम शुरू हो जाता था। उन्हीं में से एक थे कल्लन बब्बा जिनकी आवाज़ ऐसी ज़बर्दस्त थी कि अगर गाँव के एक किनारे खड़े होकर आवाज़ लगाएँ तो गाँव के दूसरे किनारे तक उनकी आवाज़ साफ सुनाई पड़ती। गेंहू की दँवाई अक्सर गर्मी के चलते तड़के ही शुरू हो जाती, चारों तरफ सन्नाटा रहता और सिर्फ बैलों के गले की घंटियाँ ही सुनाई देती। बैल भी दो शब्दों को बखूबी समझते थे, एक तो चलने के लिए "चल" और दूसरा रुकने के लिए "होर रह"। अब कहा यह जाता था कि सबके खलिहान में बैल मशीन के साथ दँवाई के लिए लग जाते और फिर कल्लन बब्बा की आवाज़ से ही पूरे गाँव के बैल चलते और रुकते। वैसे इस क़िस्से में भी अतिशयोक्ति तो ज़रूर रही होगी लेकिन कम से कम अगल बगल के चार छह खलिहान के बैल तो ज़रूर उनकी आवाज़ से ही काम करते रहे होंगे।

गाँव में आपसी रिश्तों को तोड़ने में दूसरा सबसे बड़ा कारण चकबंदी थी, पैसा तो सबसे पहला और निर्विवाद कारण था ही। जिन घरों ने कभी कोर्ट कचहरी का मुँह भी नहीं देखा था, उनके घर का एक सदस्य अब कचहरी का नियमित मेम्बर हो गया। अब तमाम कामों में एक काम तारीख़ पर शहर की कचहरी जाना भी हो गया। कुर्ता पायजामा की जगह अब शर्ट पैंट ने ले ली और सुबह-सुबह अगर किसी को शर्ट पैंट पहने साइकल पोंछते देख लिया तो लोग समझ जाते थे कि कचहरी की तैयारी है। ये मुकदमें अंतहीन थे और विरासत की तरह अगली पीढ़ी को पूरी ईमानदारी से अंतरित किए जाते थे। इसी बहाने गाँवों में भी वकीलों की नई फ़ौज तैयार होने लगी और आपस के पैसे से ही सही, उनकी भी रोज़ी रोटी चल पड़ी।

इस विकास के साथ साथ एक और घटना घटी जिसके बारे में हमें बहुत बाद में पता चला। एक साल गर्मी की छुट्टी में जब हम घर आए तो देखा कि चन्नर ठीक से चल नहीं पा रहा है। थोड़ी उत्सुकता हुई और उससे पूछा तो वह हँसकर रह गया। शायद बताना नहीं चाहता था या भय था, पता नहीं। लेकिन अपने घर पर बाबा ने बताया "एक दिन चन्नर गाय चराकर बहुत देर से लौटा और तब तक बाकी जानवरों के सानी-पानी का समय बीत रहा था। ऐसे में दरोगा ने ही जानवरों को नांद पर बाँधा और सानी पानी किया। फिर जैसे ही चन्नर वापस आया, बिना उससे कारण पूछे दरवाज़े पर पड़ी गोजी (लाठी) लेकर उसपर टूट पड़े और तब तक मारते रहे जब तक उसकी कमर और एक पैर टूट नहीं गया। चन्नर बाप बाप चिल्लाता रहा लेकिन कोई उसे बचाने नहीं आया। बाद में दरोगा ने खुद ही डॉक्टर को बुलाया और थोड़ा बहुत इलाज़ भी करवाया लेकिन मंदबुद्धि चन्नर फिर विकलांग भी हो गया।"

इसे सुनकर ही हमारे रोंगटे खड़े हो गए कि कोई इंसान होकर ऐसा भी हो सकता है। ऐसे ही तमाम क़िस्से बाबा के पास होते थे जिसे वह हमको गाहे बगाहे सुनाते रहते थे। इन्हीं क़िस्सों में बाबा का एक और क़िस्सा था कि एक बार तो उन्होंने चमरौटी के एक आदमी को बल्लम मार दिया था और पूरे चमरौटी में किसी की हिम्मत नहीं पड़ी उसको बचाने की। बाद में ठकुराने के लोग पहुँचे और उसको बचाया, बस ग़नीमत यही थी कि वह ज़िंदा बच गया नहीं तो गड़बड़ हो जाता। दरअसल देश में उस समय हरिजन एक्ट लागू हो चुका था और बड़ी जातियों का दबदबा अब घटने लगा था। कुछ गाँवों में तो इसके चलते गिरफ्तारियाँ भी होने लगी थीं।

समय के साथ साथ हम बड़े हुए तो चन्नर के चेहरे पर भी कुछ मूँछ दाढ़ी आई। वह खुद को किसी तरह घसीटते हुए ज़िंदगी को भी घसीटता रहा। अब वह बहुत काम का नहीं रह गया था लेकिन फिर भी खेत अगोरने और गाय भैंस चराने जैसा काम अपनी समझ और हिम्मत के अनुसार करता रहता। गाहे-बगाहे दरोगा चच्चा से पिटना उसकी नियति में शामिल था और उसकी चीखें उस घर में मौजूद किसी भी पुरुष या महिला को विचलित नहीं करती थीं। वही महिलाएँ जो अपने बच्चों के बहते खून देखकर अमूमन बेहोश होने लगती थीं, उनको चन्नर के बहते खून और चीख से कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। कई बार तो बुरी तरह पिटने के बाद वह दो तीन दिन तक अपनी टूटी खटिया पर पड़ा रहता। ऐसे में घर से जो कुछ रूखा सूखा खाने को मिल जाता, उसी से अपनी साँसें जारी रखता। और अगर घर में किसी को दया आ गई तो चन्नर की दवा भी करा देता। फिर ठीक होते ही वह वापस अपने काम में ऐसे जुट जाता जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। प्रतिरोध करना तो पशुओं को भी आता है और इंसान न करे, ऐसा हो ही नहीं सकता। चन्नर से भी जब उससे हो रही मार पीट की बात हम करते, तो उसके चेहरे पर कुछ पल के लिए तनाव आ जाता। लेकिन मानसिक और शारीरिक रूप से अपंग चन्नर के लिए इससे ज़्यादा प्रतिरोध कर पाना संभव भी नहीं था। एक चीज़ जो बड़े होकर बहुत परेशान करती थी वह यह थी कि हमारे गाँव में बहुत से लोग पढ़-लिखकर अच्छे पदों पर आ गए थे, लेकिन किसी को भी चन्नर के लिए दारोगा चच्चा से कुछ कहते नहीं सुना। उल्टा उसकी पीड़ा में रस लेने वाले ज़रूर बढ़ गए थे।

जीवन का एक पहलू यह भी है कि समय के साथ-साथ उनसे भी लगाव हो जाता है जिससे नफ़रत का ही रिश्ता रहा हो। और यही हुआ चन्नर के साथ भी, उसे दरोगा चच्चा के घर के अलावा और किसी जगह अच्छा नहीं लगता। अब शरीर की तो अपनी केमिस्ट्री होती है और चन्नर की बढ़ती उम्र के साथ साथ उसके शरीर की ज़रूरत भी पैदा होने लगी। दरअसल चमरौटी की बहुत सी महिलाएँ काफी हँसोड़ और मज़ाकिया थीं और उनको चन्नर को छेड़ने में मज़ा आता

था। वैसे भी चन्नर से ठकुराने की औरतें तो चाह कर भी मज़ाक नहीं कर सकती थीं, वह उनका मजूर जो ठहरा। ऐसे में उसको चमरौटी से जोड़कर कई क़िस्से बन गए, हालाँकि मुझे कभी भी उन क़िस्सों पर भरोसा नहीं हुआ। गाँव में कई लोग उसे छेड़ते भी कि चन्नर फलाने से बियाह कर लो लेकिन वह अपनी अस्पष्ट आवाज़ में इंकार कर देता।

साल दर साल बीतते रहे, हर गर्मी की छुट्टी में चन्नर एक साल में ही दस साल बूढ़ा दिखने लगता। लेकिन मिलने पर वही मुस्कुराहट और "कइसन हो भईया" जारी रहा। अब उसका चलना फिरना बहुत कठिन हो गया था और दिखाई देना भी काफी कम लेकिन ज़िंदगी से उसका लगाव कभी कम नहीं दिखा। दरोगा चच्चा भी अब बढ़ती उमर का शिकार हो रहे थे लेकिन अभी भी अपने सब काम करते रहते। गाँव में विकास बढ़ता रहा, घर और खेत छोटे होते गए और लोगों के इगो विकास से भी दुगुनी रफ्तार से बढ़ते रहे। अब गाँव जाने पर सबके घर घर जाने का उत्साह पहले जैसा नहीं था, आपसी रिश्तों के बीच एक ठंडापन नज़र आने लगा। ऐसे ही एक साल दरोगा चच्चा के दरवाज़े पर चन्नर नहीं दिखा तो चिंता हुई। पूछने पर पता चला कि अब उससे चला फिरा नहीं जाता है और उसे दिखाई भी नाममात्र ही देता है। यह पता चलने पर कि वह कुन्बियाने के तरफ़ के खेत पर गया है, मेरे कदम अपने आप उधर मुड़ गए। मन में एक बात लगातार चल रही थी कि चन्नर मुझे पहचान पाएगा कि नहीं। खेत के सामने पहुँचते ही चन्नर एक झोलंगी खटिया पर बैठा दिख गया, उसके हाथ में एक पतला सा डंडा था और वह आहट आने पर आवाज़ की तरफ देखते हुए कुछ बोलने लगता।

मैं उसके सामने जाकर खड़ा हो गया और मेरी आहट मिलते ही चन्नर ने बुदबुदाते हुए कहा "देखत हई"। मुझे थोड़ा समय लगा उसका कहा समझने में लेकिन फिर बात समझ में आते ही दिल भर आया। एक देख पाने में असमर्थ व्यक्ति देख लेने का दावा कर रहा है, और समाज के कर्णधार जिन्हें सब दिखता है, वह जानबूझ कर अंधे बन रहे हैं। कुछ पल बाद जैसे ही मैंने उसे आवाज़ दी, उसके चेहरे पर वही पुरानी मुस्कुराहट खिल गई और उसने अस्पष्ट शब्दों में कहा "कइसन हो भईया"। कुछ देर वहाँ खड़ा रहने के बाद मैं भारी कदमों से वापस आ गया लेकिन मन में कुछ चुभ गया।

वैसे इस बार घर पर बब्बा ने बातचीत के दौरान एक बात बताई थी जिसको सुनकर मुझे बेहद सुकून हुआ। गाँव में कई लोगों ने दरोगा चच्चा से कहा कि अब चन्नर को काहे घर पर रक्खे हो, बनारस जाकर गंगा के घाट पर क्यों नहीं छोड़ देते, वहीं भीख माँगकर पड़ा रहेगा। लेकिन दरोगा चच्चा ने उनको पलटकर ऐसा जवाब दिया कि लोगों की बोलती बंद हो गई "अइसन हौ, आपन पूरा उमर चनरा हमरे यहाँ काम कइले हौ, अब ई ससुर यहीं मरी। घरे के कुक्कुर बिलार से भी लगाव हो जाला, ई त तब्बो इंसान हौ"। मैं इसके बाद बहुत देर तक मानव स्वभाव के पेंचीदगियों में उलझा रहा, कहाँ इसी चन्नर को दरोगा चच्चा जानवर की तरह पीटते थे और कहाँ उसी को घर पर ही रक्खे जब तक वह ज़िंदा रहा।

एक सेवानिवृत्त व्यक्ति का सबसे बड़ा दुख होता है उसकी पहचान का ख़तम होना, उसकी कुर्सी के साथ जुड़ी इज़्ज़त का समाप्त हो जाना। कुछ यही हो रहा था हमारे गाँव में भी, फ़र्क बस इतना था कि गाँव पर ठाकुरों की झूठी और भयवश होने वाली इज़्ज़त अब धीरे धीरे कम हो रही थी। सूबे में सरकार बदलने से पिछड़े और कमज़ोर तबके के लिए, काग़जों पर ही सही, तमाम योजनाएँ आने लगीं और बहुत से गाँव "अंबेडकर ग्राम" बन गए। हमारा गाँव भी इस लहर से अछूता नहीं रहा और वह भी इसी का हिस्सा बन गया। जिस चमरौटी में एक भी पक्का घर नहीं था, वहाँ अब सरकारी मदद से कुछ पक्के मकान खड़े होने लगे। गाँव से लगभग दस किलोमीटर दूर एक बैंक की शाखा भी खुल गई और बहुत से पिछड़े लोग जो कभी ठाकुरों और बनियों के सामने आर्थिक मदद के लिए हाथ फैलाते थे, वह लोग कुछ दलालों के मार्फत बैंक से लोन लेने लगे। आरक्षण का, सीमित ही सही, फ़ायदा दिखाई पड़ने लगा और गाँव के चमरौटी के एक दो घर के लड़के अब सरकारी मुलाज़िम बन गए। अब धीरे-धीरे ठाकुरों का दबदबा कम हो रहा था और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहने वाले और उनकी बेगारी करनेवाले अब कम होते जा रहे थे। दरोगा चच्चा का भी यही दर्द था, किसी समय उनके सामने जिनके मुँह से बकार भी नहीं निकलती थी, अब उन्हीं लोगों के लड़के उनके सामने खटिया से भी खड़े नहीं होते थे।

अगले कुछ सालों तक मैं गाँव जाता रहा, आर्थिक परिवर्तन का असर दिखाई पड़ने लगा था। अब गाँव के ठकुराने के कुछ लोग भी चमरौटी में चाय-पानी पीने लगे और एक दो घरों की शादियों में भी आना जाना होने लगा (उन्हीं घरों में जो सरकारी मुलाज़िम बन गए थे)। एक और चीज़ ने इस भेदभाव को दूर करने में बहुत बड़ा काम किया था और वह थी अमूमन हर गाँव में बनने वाली देशी शराब। अक्सर इस शराब की भट्ठी चमरौटी या ऐसे ही इलाकों में ही होती और उसे पीने वालों में कोई सामाजिक भेदभाव नहीं दिखाई पड़ता। खैर अब आपसी भेदभाव काफी कम होने लगा और ऐसे में दरोगा चच्चा जैसे पुरानी सोच के लोगों का दुखी होना लाज़मी था। फिर एक बार गाँव जाने पर पता चला कि चन्नर गुज़र गया। बाबा ने बताया कि उसका अंतिम संस्कार दरोगा चच्चा ने हिन्दू रीति रिवाज़ों के हिसाब से किया और उसकी आत्मा की शांति के लिए कुछ पंडितों को भी खिलाया।

चन्नर के गुज़र जाने के बाद उनके दरवाजे पर फिर कोई मजूर नहीं आया, दरअसल अब मजूर मिलना संभव भी नहीं था। चमरौटी के लोग या तो शहर जाकर मज़दूरी करने लगे थे या साड़ी की बुनाई। अब चमरौटी में भी मोटर साइकल और टी वी आ गए थे और दरोगा चच्चा ने उधर जाना छोड़ दिया था। इसी तरह समय आगे बढ़ता गया और एक दिन खबर मिली कि दरोगा चच्चा भी दुनिया से कूच कर गए। और एक ऐसे क़िस्से का अंत हो गया जिसे हमारी आने वाली पीढ़ी क़िस्से कहानियों में तो शायद कभी पढ़ लेगी लेकिन उस पर भरोसा नहीं कर पाएगी।

000

यही ठीक होगा

डॉ. अनिता चौहान

कमरे में लगी घड़ी की टिक-टिक के अलावा और कोई आवाज़ उस कमरे में नहीं गूँज रही है। एक कठिन निर्णय लेने की दुविधा उन दोनों को घेरे हुए थी। चेहरे पर आते-जाते भावों को समेटते हुये एक गहरी साँस ले लीला मानों किसी निर्णय पर पहुँच गई। उसने अपने पति सतीश के चहरे को देख निगाहें चुराते हुये "हाँ" में गर्दन हिला दी और काँपते हाथों अपने सामने मेज़ पर रखे काग़जों पर हस्ताक्षर कर आँखों में आई तरलता को पीते हुये काग़ज़ सामने बैठे डॉक्टर विजय की तरफ खिसका दिया। डॉक्टर ने काग़ज़ अपने हाथ में लिए और सतीश की तरफ देखा।

"चलिए! कुछ औपचारिकताएँ पूर्ण करनी है।"

लीला का मन आर्तनाद कर उठा- हे भगवान्- आज कैसी परीक्षा ले रहे हो? तक़दीर से और आपसे जो मिला, उसके खिलाफ़ जाकर मैंने यह कैसा फ़ैसला ले लिया ? जिस बच्चे को दस साल तक पाला पोसा उसी बच्चे के जीवन के विरुद्ध आज इतना बड़ा निर्णय और नाइंसाफ़ी उससे कैसे हो सकी? उसे कोई अधिकार नहीं है अपने मासूम बच्चे की ज़िंदगी से ऐसे खेलने का। लीला का सारा शरीर गर्म हो रहा था शायद अंदर का उबाल था जो बाहर न निकल पाने के कारण तप रहा था। खुद को सँभाल लीला ने फ्रिज में से ठंडे पानी की बोतल निकाली और गट गट कर उसे आधा कर दिया। अब भावनाओं का उबाल कम सा हो चला था और व्यवहारिकता उसकी जगह ले रही थी। शायद ठीक ही किया उन दोनों ने। एक लंबे अरसे से चले आ रहे मानसिक द्वंद्व और तनाव का अंत आज हो ही गया। अक्सर उसके मन से और कभी-कभी तो मुँह से भी निकल ही जाता था- हे भगवान्! या तो इस बच्चे को ठीक कर दे या उठा ही ले...क्यों ऐसा नर्क और ऐसी भयावह ज़िंदगी यह बच्चा भोग रहा है।

"हाँ।" भगवान् को इस बच्चे को ले ही लेना चाहिए। यह सचमुच बोझ ही तो है। माता-पिता पर, परिवार पर और फिर समाज पर भी। अभी तो माता-पिता ज़िंदा हैं उसकी देखभाल कर रहे हैं जब जनक-जननी होकर वे दोनों इतना चिड़चिड़ा जाते हैं तो उन दोनों के न रहने पर आगे चलकर इस बच्चे का क्या होगा? कौन करेगा उसकी देखभाल और किसको होगी उसकी परवाह जिसको न तो अपनी ख़बर रहती है न अपने आसपास की।

लीला की आँखों में वह दिन उभर आया जब वह रसोई में सुबह का खाना बना रही थी और रिंकू वही रसोई की दहलीज़ के पास बैठा खेल रहा था। लीला की एक नज़र गैस पर थी और एक रिंकू पर। तभी गैस पर रखा दूध अचानक उफन आया और उसने कपड़े से पतीली पकड़ उसे उतारकर स्लेब पर रख दिया तभी धड़ाम की आवाज़ के साथ ही रिंकू की ज़ोरदार चीख

डॉ. अनिता चौहान
एम आई जी बी-31 राज्य परिवहन डिपो
परिसर, भोपाल
मोबाईल- 9826714443
ईमेल- anitasinghchouhan23@gmail.com

और रोना...हाथ में पकड़ा कपड़ा फेंक वह दोड़ी, देखा तो स्टेंड पर रखा टी.वी. नीचे गिरा हुआ है और उसके नीचे रिंकू दबा हुआ है, पता नहीं कब वह घुटनों-घुटनों चलता वहाँ तक पहुँच गया था। टी.वी.के कोने से माथे पर चोट और उससे भल-भल करता बहता खून...लीला बेहोश होते-होते बची। चीख-चीख कर रोता रिंकू अब साँस बाँधे अर्ध मूर्छित सा माँ की गोद में पड़ा था। लीला ने अपनी पड़ोसन को आवाज़ दी "रेखा...रेखा! अरे जल्दी आओ,रेखा।"

"क्या हुआ भाभी?"

छटपटाती, बदहवास लीला उठ भी नहीं पा रही थी। बैठे-बैठे ही बोली "अरे ज़रा सतीश को फ़ोन कर दो जल्दी से। वो रिंकू...उसके माथे से खून।" रेखा घबरा कर जल्दी से आई। रिंकू की हालत देख झट उसने सतीश को फ़ोन लगा कर अस्पताल आने को कहा और दौड़कर टेक्सी बुला लाई। हतप्रभ बैठी लीला रिंकू की पीठ सहला रही थी मगर रिंकू कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा था। अस्पताल में डॉक्टर ने बताया कि बीस टाँके आएँगे, सिर पर गहरी चोट है। रात भर लीला और सतीश एक आँख नहीं सो पाए थे। सुबह डॉक्टर आया तो रिंकू की हालत देख चिंता में पड़ गया। "चोट अंदरूनी लगी है एमआरआई कराना होगी।" दोनों घबराए से एक दूसरे को ताक रहे थे। एमआरआई की रिपार्ट देख डॉक्टर के चेहरे के भाव बदल गए।

"देखिए!" गला खँखारते डॉक्टर बोले थे "चोट लगने से रिंकू के दिमाग़ पर असर हुआ है आप दोनों भी ध्यान से बच्चे को देखिए, वह किसी भी चीज़ पर नज़र नहीं टिका पा रहा है।" लीला और सतीश पर मानों बिजली गिर पड़ी, अवाक् से रिंकू को देखते रह गए थे दोनों। डॉक्टर के आश्वासन और फिर लगातार छः महीनों तक चलता रिंकू का इलाज, बड़े से बड़े स्पेशलिस्ट को दिखाने के बाद भी रिंकू की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ था। आख़िर में डॉक्टरों ने भी रिंकू के इलाज से हाथ खींच लिए थे और अब रिंकू एक दिमाग़ी तौर पर अविकसित बच्चे के रूप में ज़िंदगी जीने वाला था।

शुरू-शुरू के समय में रिंकू शांत ही रहता था। चुपचाप हाथ-पाँव सीधे किए पड़ा रहता था। मगर जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया वह रोने चिल्लाने लगा था। तब तक रिंकू की छोटी बहन पिंकी और भाई शोभित भी आ गया था सो लीला का ध्यान बँट जाता था। सतीश रिंकू को सँभाले या ऑफ़िस, गृहस्थी देखे, मुश्किलें बढ़ती जा रही थीं। रिंकू को नहलाने, खिलाने, कपड़े बदलने व लेट्रिन बाथरूम कराने में ही लीला का सारा समय और परिश्रम चला जाता था। अब तो पिंकी स्कूल भी जाने लगी थी और अगले साल से शोभित भी प्ले स्कूल जाने वाला था।

अब रिंकू की हरक़तें और उसकी दिमाग़ी हालत बिगड़ने सी लगी थी। कभी वह पिंकी की किताबें फाड़ देता तो कभी शोभित के खिलौने फेंक देता। कभी उनके कपड़ों पर, बिस्तर पर पानी डाल देता, कभी खाने के हाथ लगा देता। जब कभी घर में कोई मेहमान आ जाता तो रिंकू अपनी हरक़तों और विचित्र व्यवहार से उन्हें तंग कर देता। वह मेहमानों से बात करना चाहता, उनके साथ बैठना चाहता, इसके लिए वह तरह-तरह से मुँह बनाता, आवाज़ें निकालता, उनके कपड़े खींचता, उनके पैरों से लिपटता ताकि वह उसकी तरफ देखें, आकर्षित हों, वह ज़मीन पर लोट लगा कर ज़ोर-ज़ोर से रोने चीखने लगता, हाथ-पाँव पटकने लगता। लीला और सतीश शर्मिंदा होकर मेहमानों से माफी-सी माँगते और मेहमान परेशान होकर भी सुहानुभूति में- अरे ठीक है,बच्चा ही तो है, कोई बात नहीं" कहकर जल्दी घर से जाने की कोशिश में लग जाते। इस तरह के व्यवहार से लीला और सतीश का सामाजिक जीवन भी प्रभावित हो रहा था। लोग उनके घर आना जाना तो दूर, उन दोनों से बात करने में भी कतराने लगे थे।

रिंकू अब नौ वर्ष का हो चला था। लीला ने रिंकू के लिये सब कुछ किया था। रिंकू की दिन रात सेवा करते-करते, उसको प्यार से समझाते हुये, वह स्वयं को शांत रखती। मगर अब वह हार सी रही थी, अंदर ही अंदर टूटती सी जा रही थी। लीला उसके भविष्य के लिये बहुत चिंता में रहती थी कि रिंकू का आगे चलकर क्या होगा? उसके बाद कौन उसकी देखभाल किया करेगा? जब भी वह सड़कों पर आवारा से घूमते किसी पागल को देखती जो गंदे-संदे कपड़े पहने, कचरे में से अपना खाना ढूँढ़ता रहता, लोग उसे दुरदुराते या कंकड़ पत्थर मारते और वह चिल्लाते बड़बड़ाते उनके पीछे भागा करता, तो उसमें उसे रिंकू का ही चेहरा दिखाई पड़ता, क्या उन दोनों के जाने के बाद रिंकू का यही भविष्य होगा? नहीं! अब वह रिंकू को दूसरों की तरस या हिकारत भरी निगाहों का केंद्र बना जीवन नहीं जीने देगी। उसे याद आया तीन साल पहले की बातें- जब सतीश के डॉक्टर मित्र विजय ने रिंकू को देख कर, उसका इलाज करने में नाकाम होकर "मर्सी किलिंग" की सलाह दी थी, तब वह और सतीश कितना भड़क गए थे और विजय को कितना भला बुरा कहा था दोनों ने, मगर अब तो कोर्ट ने भी इसकी मान्यता दे दी है, विशेष परिस्थितियों में इसका उपयोग किया जा सकता है। अब जी कड़ा कर आज उसने उसी "मर्सी किलिंग" के लिये डॉक्टर द्वारा बताई गई दवाओं के लिये हामी भर दी है। उन दवाओं का असर धीरे-धीरे होगा और मात्र दो महीनों में ही मरीज़ की ज़िंदगी समाप्त हो जाएगी।

इन्हीं तरह-तरह के विचारों में लीला की सारी रात बीत गई थी, अब आसमान पर सुबह की लाली सी बिखरने लगी थी। उसने इधर-उधर नज़रें घुमाई, सतीश लगता है पिंकी और शोभित के रूम में सो गए थे। वह उठकर रिंकू के कमरे में गई। नींद में उसके मासूम और प्यारे चेहरे को वह गौर से निहारने लगी। उसने प्यार से उसके बालों में हाथ फेरा। रिंकू ने नींद में ही माँ का हाथ पकड़ लिया। लीला के मन में अपराधबोध उभर आया। व्यवहारिकता का स्थान फिर ममता ने ले लिया। उसके अंदर से कोई कह रहा था कि वह स्वार्थी होकर अपने बच्चे से छुटकारा पा रही है। क्या सचमुच ही वह अपने बच्चे के मन की अनकही बातों को समझ पाई है? उसकी भावनाओं को महसूस कर पाई है? उसे याद आ रहा है कि रिंकू नौ वर्ष का हो गया है, मगर मात्र एक साल को होने पर धूमधाम से मनाए गए उसके पहले

जन्मदिन के अलावा उसने कभी भी उसका जन्मदिन नहीं मनाया, दूसरी तरफ पिंकी और शोभित का जन्मदिन घर पर ही खूब धूमधाम से मनता है दूसरे बच्चे आते हैं। केक, गुब्बारे, कोल्डड्रिंक्स आदि। रिंकू कुछ व्यक्त नहीं कर पाता तो क्या ? वह मन में तो सब समझता ही होगा। लीला ग्लानि से भर उठी, उसका अब तक ध्यान ही नहीं गया था कि अनजाने ही सही, रिंकू और उसके बाकी दोनों बच्चों के रहन-सहन में कितना अंतर है। रिंकू के कपड़े वह अक्सर मोहल्ले की ही छोटी सी दुकान से ले लिया करती थी सस्ते और कैसे भी, जबकि पिंकी और शोभित के कपड़े बड़े बाज़ार से आते थे महँगे और नए फैशन के। सतीश भी ऑफ़िस से आते हैं तो पिंकी और शोभित उससे चिपके रहते हैं लीला को लग रहा था कि वह और सतीश रिंकू से बचने का प्रयास करते हैं जबकि वह सबसे ज़्यादा लाड़ प्यार का हक़दार था। उसे महसूस हुआ कि जब रिंकू घर या बाहर के हर व्यक्ति के पास जाता था तो वह उन्हें तंग नहीं करना चाहता होगा बल्कि अपने मन की बातें उनसे करना चाहता होगा, उसके पास न तो शब्द होते थे न ही बोलने की सहज प्रवृत्ति ही। वह मात्र अपने भावों से ही अपनी भावनाएँ व्यक्त करता था।

लीला खुद पर ही शर्मिंदा थी। उसे अपनी सोच, अपने कल रात के लिये निर्णय पर अफ़सोस हो उठा। धिक्कार है खुद पर, एक माँ होकर अपनी संतान के लिये कैसे उसने मर्सी किलिंग का सहारा लेना चाहा? इस अनहोनी की वह कैसे हामी भर बैठी? नहीं...वह यह नहीं होने देगी। मैं अपने बच्चे को मौत की नींद नहीं सोने दूँगी। अब से मैं फिर उसके लिये ही जीऊँगी। उसे आत्मनिर्भर बनाऊँगी। उसे मैं स्पेशल स्कूल में भेजूँगी। जहाँ वह स्वयं जीवन जीना सीखेगा। इधर-उधर देखा तो सामने टेबिल पर वही काग़ज़ रखे थे जिन पर उसने रात को हस्ताक्षर किए थे। एक खिली हुई मुस्कान के साथ उसने उन काग़ज़ों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब वह फिर से तैयार थी रिंकू के बेहतर जीवन के लिये पूरी शक्ति और पूरे मन के साथ।

000

लघुकथा

मधुर मिलन

डॉ. पुष्पलता

"चाची मुझे तेरे से कुछ बात करनी है।" सूरज ने कहा।

"बैठ ले, बता ?" अंगूरी बोली।

"तुझे तो पता ही है एक महीने बाद गौने को जाना पड़ेगा। चाची वा मुझे बिल्कुल चोखी नी लगती। तू किसी तरह उससे मेरा पीछा छुड़वा। मेरा जी करता है उसे मरवा दूँ। तुझे तेरी पसन्द की साड़ी दूँगा किसी तरह मेरे गले में से निकलवा।"

चाची सोचने लगी यू दूध सा सफेद वो कोयले सी काली इसीलिए मन नहीं भा रही।

"भाई मैं क्या तन्ने मानस मारनी समझ ली ? दुनिया में दो ही रंग हैं एक गोरा एक काला, तेरे चाचा कु देख। जब ब्याहने कु गया था शीशा दिखाया था औरतों ने।" सूरज दूध सी सफेद चाची को देखने लगा। सोचने लगा जोड़ी तो ये भी ऐसी है। फिर उसे बड़े भाई-भाभी की जोड़ी ध्यान आई।

"तेरे भाई-भाभी को देख।" चाची भी बोली।

"मेरा जी तो नु कर रहा है घर से भाग जाऊँ।" सूरज को उसकी शक्ल फिर याद आई।

"ऐसा कर एक बार ले आ, ब्याह तो हो ही गया, ऐसी ही अब छोड़नी, ऐसी ही एक बार लाकर छोड़नी, पर छोड़ेगा तो हाथ न लगाइए उसे, सबकी बेटी एक सी।" चाची बोली।

"तू हाथ लाने की बात कर रही है मुझे उसकी शक्ल याद आते ही पता नी कसा कसा जी होज्या।"

उसके बाद वह कहे-सुने से गौना करवा लाया था। अगले दिन अंगूरी ने घेर में जाते हुए सोचा बहू से मिलती चलूँ। उस बेचारी की क्या ग़लती।

वह उनके बरामदे में पहुँची। सजी-धजी, मेहँदी लगे चूड़ियों से भरे हाथों से बहू पाँव छूने उठी तो जैसे सारी कायनात में झाँझर और चूड़ियाँ खनकने लगी। बहू का चेहरा काले गुलाब सा खिला था। उदासी का निशान नहीं था। चाची ने मुस्कराकर कोने में खड़े सूरज को देखा। वह सिर झुकाए था। चेहरे पर मुस्कराहट थी। चाची सब समझ गई। चाची ने जानबूझकर हँसकर कहा, "मेरे दिमाग़ में इसे छुड़वाने की एक तरकीब है बताऊँ के?"

"उरे कु आ" वह धीरे से बोला, "जब विदा करवा कर आ रहे थे इसकी माँ मेरी छाती से लगकर बहुत रोई, बोली बिना बाप की बच्ची इसे दुख ना दे दिए बेटे। इसने ज़िंदगी में सुख नी देखा बस मेरा कालजा तो उसी बखत पिघल गया था।" जोड़ी तो ऊपर वाला बना के भेजता है, चाची सोचने लगी। वह समझ गई थी मधुर मिलन हो चुका था।

000

डॉ. पुष्पलता, 253A साउथ सिविल लाइन मुजफ्फरनगर 251001
मोबाइल- 9458413369, ईमेल- pushp.mzn@gmail.com

फूलों के आलते में रेत की दीवार

डॉ. उपमा शर्मा

मेरी बरसों की साध पूरी होने जा रही है। दिल के तार अजीब सी लय में गा रहे हैं। तुमने बुलाया है मुझे अपने बसेरे में जहाँ बिखरा पड़ा है मेरा संसार। तुम्हारे घर के अहाते में मेरे रंगों से सरोबार तुम्हारे गमले। गमले में खिलते वह काले गुलाब। तुम्हें सफ़ेद रंग से प्यार था और मुझे तुमसे। तुम्हारे बगीचे में हर तरफ उगते सफ़ेद फूलों के बीच उगते मेरे उस काले गुलाब को देख तुम माली काका पर कितना चिल्लाए थे। तब बाबा ने कहा था कि रहने दीजिए न साहब बच्ची ने बड़े प्यार से लगाए हैं। तुम्हें कब याद होगी वो काले गुलाब लगाने वाली लड़की। तुम विख्यात लेखक समुद्र के इस तट पर महीने के एक दिन ज़रूर आते हो। यह मुझे कैसे न पता होता ?अपने बचपन से आज तक मैंने तुम्हें एक-एक पल जिया है। आँखों में उदासी की कतरनों ने अनायास ही कब्ज़ा जमा लिया जब पता लगा तुम अभी बाहर गए हो। तब से आज तक मैं रोज़ तुम्हारी राह तकने यहाँ आती हूँ। तुम्हारी राह तकना बचपन का शौक़ है मेरा। समुद्र की चंचल लहरों से खेलती हम दोस्तों की टोली तुम्हें देख रुक जाती है। तुम अपनी दोस्त के साथ हाथों में हाथ डाले मुस्कुराते हो और मेरे दोस्तों की आटोग्राफ बुक्स खुल जाती हैं।

दूर मुझे अकेले खड़े देख तुम्हारी आँखों में वैसी ही हैरत उतर आती है जैसी अपने रास्ते में खड़ी उस उलझे बालों वाली लड़की को देख उतर आती थी। मैं सामने आ मुस्कुराती हूँ। तुम भी अपनी वही चिरपरिचित मुस्कान मेरी तरफ उछाल देते हो जिसे मैंने खिड़की की झिरी से देखते हुए अपना बचपन विदा किया था।

काश कभी तुम्हें याद आती मेरी सतरंगी चूड़ियों की खनक। तुम्हारे दिल में झाँकती मेरी सपनीली आँखें। तुम्हें देख मेरे अधरों पर खिलती तबस्सुम की कलियाँ। अपने बड़े से बँगले के बराबर के बँगले के सर्वेन्ट क्वाटर में रहने वाली वो फटी फ्राक पहने तुम्हें देख आँखों में चमक रखने वाली वो लड़की। राहों में आते जाते तुम्हारी राह फूलों से पाटने वाली वो अल्हड़ लड़की। रफ्ता-रफ्ता तेरी यादों के रेले में दिल की कश्ती डूब रही है। तुम सामने हाथ हिला रहे हो और मैं वैसे ही तुम्हें एकटक निहार रही हूँ। मेरे दोस्तों की टोली तुम्हारे इर्दगिर्द शोर कर रही है तुम सुना रहे हो उन्हें वही कविता जो मैंने सुनी थी अपने रुखे वालों की चोटियाँ गूँथते हुए। तुम्हारे अधरों पर बिखरी हैं वही शब्दों की तितलियाँ जिसे पढ़ते हुए मैंने विदा ली थी उस खिड़की से जिसके सामने तुम रहते थे। तुम मेरे ख़्वाबों का मरकज़। मेरी इकलौती चाह। मेरे जीने की एकमात्र वजह। बचपन के निशां अब मुझसे विदा हो चले हैं। अब मैं हूँ एक अपूर्व सुन्दर युवती। तुम भीड़ से इतर बढ़ आते हो मेरी ओर। मैं मुस्कुराती हूँ तुम्हारी कमज़ोरी पर। मेरे हाथों में आज भी वही तुम्हारे पसंदीदा सफेद फूल हैं। तुम्हारी आँखें आत्मीयता की खिड़की खोलने को आतुर हैं और

डॉ. उपमा शर्मा
दंत चिकित्सक, बी-1/248, यमुना विहार,
दिल्ली- 110053
मोबाइल- 8826270597
ईमेल- dr.upma0509@gmai.com

मैं तलाशती हूँ वहाँ अपनी पहचान का कोई भूला-बिछड़ा अक्स।

साँझ चुपके-चुपके आकाश पर अपना डेरा डाल रही है। आसमान के सीने पर अपनी सिगरेट से धुँआ उड़ाते बादल से तुम। इश्क़ का असर होता ही ऐसा है तभी तो कोई इमरोज़ खुश होता है किसी अमृता के अपनी पीठ पर साहिर लिखने से। तुम्हारे साथ कॉफी का प्याला पकड़े मैं खो जाती हूँ तुम्हारे शब्दों के जादू में। ये शब्दों की कलियाँ ही तो मेरे वजूद का हिस्सा हैं। तुम्हें याद कहाँ होगी तुम्हारे गीत ग़ज़ल गाती वह बेखुद सी लड़की। तुम थामते हो मेरा हाथ और मैं ढूँढ़ती हूँ इन हथेलियों में ख़ुशबू तुम्हारे गुलदान में अपने हाथ से सजाए फूलों की।

दूर पगडंडियों पर चलते हम तुम। तुम सुना रहे हो अपने क़िस्से और मैं खोई हूँ तुम्हारे घर के बाहर की पगडंडी पर। तुम्हें याद भी कैसे होगा अपना दरवाज़ा खोलते ही उस राह पर पड़े होते थे सफ़ेद फूल। तुम हैरत से भर-भर जाते। फिर खुश हो उन फूलों पर बड़ी शान से जाते और तुम्हारे जाते ही मैं मुट्ठी भर फूल अपने दामन में भर लेती। मैं आगे बढ़ उछालती हूँ वही मुट्ठी भर सूखे सफ़ेद फूल। तुम दे देते हो एक मधुर मुस्कान। तुम्हारी आँखों में उतर आये हैं डूबते सूरज के अक्स जिसमें कहीं नहीं वो सफ़ेद फूलों वाली लड़की।

संध्या चुपचाप चले जा रही है। रात का आँचल थाम चाँद मेरी खिड़की में उतर आने को है। चाँद का मेरा पुराना नाता है। वह उतर आता है मेरी खिड़की में। मेरे रतजगे में मेरे साथ जागता सा।

जी करता है हाथ बढ़ाकर चाँद को छू लूँ मैं। जैसे ही मैं हाथ बढ़ाती हूँ वह उड़ कर आसमान में जा ठहरता है। आज चाँद को छू ही लेना है मुझे। चाँद की और मेरी आँखमिचौली रात भर चलती रहती है। तुम अपने घर के कमरे में मेरा इंतज़ार कर रहे होगे। उसी घर में जिसमें तुम्हारे साथ आने की तमन्ना में बरसों गुज़ारे हैं मैंने। यादों का एक मीठा रेला फूट पड़ा है। मैं नन्हीं सी हूँ, खड़ी हूँ अपनी खिड़की की झिरी से झाँकती। दूर अपनी पूरी आन-बान के साथ, तुम अपनी कविताओं के साथ मेरी आँखों में गडमड होते हुए। पिघले शीशे सी कानों में सौतेली माँ की आवाज़ उतरती है। "अरी कहाँ मर गई। पता नहीं खिड़की से चिपकी क्या करती रहती है? "

वो क्या जाने? उसने कब पढ़ी होगी कोई प्रेम कविता। इंद्रधनुष के रंगों को कब समेटा होगा अपनी निशान पड़ी बेजान हथेलियों में।

उसने कब भरे होंगे हारसिंगार अपनी अंजुरि में।

वो अपने नन्हें वजूद को गोदी में भर आटे नमक के जुगाड़ में खोई रहती और मैं तुम में। तुम हो ही इतने शानदार। आज भी वैसी ही चमकदार आँखें। वही मखमली ओंठ। तुम अनगिनत लड़कियों के आइडियल। तुम्हारे घर आना- जाना लगा रहता था तुम्हारी अनगिनत दोस्तों का। कविता कहानियाँ कमरे के हर ज़र्रे से गूँजते और मेरे कानों में गूँजते तुम्हारी मिश्री सी डली से वो धीमे स्वर। सुरों का ऐसा जादू मुझ गँदली और फटी फ्राक वाली लड़की को ले जाते सपनों की किसी दूसरी दुनिया में। मेरी पूरी दुनिया खिड़की की उस झिरी में समाई रहती।

माँ सुबह से शाम घर से बाहर रहती और मेरी आँखें चिपकी रहतीं तुम्हारे चेहरे पर।

तुम घर से निकलते और मैं झट घुस जाती तुम्हारे घर में। रामू काका के आगे पीछे घूमती मैं तुम्हारी दीवानी। अपने हाथों से तुम्हारे घर को बुहारती। तुम्हारे गुलदान में हर दिन तुम्हारे पसंद के सफ़ेद फूल सजाती। तुम्हारी किताबें निकालती। उन पर उँगलियाँ फिराती। किताबों पर तुम्हारे स्पर्श की दुनिया मुझे दूसरी दुनिया में ले जाती। तुम्हारे कपड़े इस्तिरी करती। तुम्हारा कमरा सजाती। तुम्हारे बिस्तर की सिलवटों में बसी तुम्हारी वह महक मेरा मन महका जाती। रामू काका मुझे दो रोटी पकड़ा देते। वह समझते वह मुझ भूखी को रोटी दे उपकार कर रहे हैं। उपकार ही तो था उनका तुम्हें मुझे महसूस करने देने का। तुम्हारी ख़ुशबू का अहसास मुझे सारे दिन महकाए रखता। तुम्हारे आने से पहले मैं घर से निकल जाती। तुम सामने से जाते मेरे चेहरे पर एक अजनबी सी नज़र डाल।

माँ थक कर सो जाती और मैं सोते-जागते उसी खिड़की पर टँगी रहती। पिता अपनी दूसरी पत्नी के पास पहली पत्नी की बेटी छोड़ न जाने कहाँ चले गए थे। माँ ने यही उपकार किया कि सौतेली बेटी को घर से नहीं निकाला। हालात बहुत बुरे थे। माँ हालात से परेशान थी। मेरे खिड़की पर लटकने से परेशान थी। माँ को आते देख मैं झट से वह झिरी छुपा देती।

तुम आते मैं बिछ-बिछ जाती तुम्हारी राह में। तुम्हारी दीप सी रोशन आँखें मुझे तुम्हारी ओर बरबस ही खींचती जहाँ मुझे खोजे से भी अपनी झलक न मिलती।

मेरी आँखों की ज्योत बुझने लगती। फिर अगले ही पल अपनी टूटी आस को समेट मैं फिर जा खड़ी होती उस खिड़की की झिरी में। तुमने कब देखे टूटे सपनों के पंख। तुम्हारी बाँहों में तुम्हारी खूबसूरत दोस्त होती और मेरी पलकों में तुम्हारा मेरा होने का ख़्वाब। तुम अपनी दुनिया में खोए थे और मैं तुममें।

माँ की नमक तेल की मुश्किलें बढ़ती जा रही थी। हम दूसरे शहर जा रहे थे। माँ के किसी रिश्तेदार के पास। मेरे कदमों में ज़ंजीरें पड़ गईं। तुम्हें पाने से पहले ही तुम्हें खोने का दु:ख। आँखें नमकीन पानी में डूबी रहतीं। आख़िर वो दिन भी आ ही गया जहाँ टूटी खिड़की पर कुछ सपने बिखर गए। मैं छोड़ आई अपने कदमों के निशान। अपने सूने दिल के टुकड़े। तुम मुझसे इतने ही बेख़बर जैसे लहरों से सागर।

मैं सब कुछ करने को तैयार थी। माँ की मदद करने को। उसका काम बँटाने को, नहीं राज़ी थी तो बस यह शहर छोड़ने को। माँ अपना सामान समेटने को कह घर से बाहर चली गई। तुम शहर से बाहर गए हुए थे। मैं भाग कर जा पहुँची तुम्हारे घर के आँगन में।

मखमली घास में अपनी दुनिया बिखेरती। तुम होते भी तो क्या मुझे रोक लेते?

माँ चली गई अपने दुखों की ज़िद्दी पोटली को अपने भाई की कमीज़ में समेट। इंतज़ार भी कितना करती अपने पहले पति की गुमशुदा सी बेटी का। उनके भाई भी मुसीबत

छूटने से खुश थे। आँसू का एक रेला पलकों के बाँध तोड़ बह चला था। ये आँसू किसके थे इस अहसास के कि मैं इस शहर में अकेली रह गई या इस खुशी के कि मैं तुम्हारे शहर में रह गई।

टूटी खिड़की छोड़ने का समय आ रहा था। मकान मालिक अब मुझे वहाँ क्यों रहने देता ?आँखों में खिड़की के टूटे शीशे की किरचों की चुभन और मन के सिंहासन पर तुम्हें बैठाये मैं चल पड़ी तुम्हारे होने की यात्रा पर।

अपनी मुश्किलों के साथ मैं जीना सीख रही थी। तुम तक पहुँचने की चाह ने मुझे ज़िंदा रखा हुआ था। सब कुछ ख़तम हो रहा था ठिकाना, खाना, माँ का साथ, लेकिन नहीं ख़तम हुआ तो तुम्हारा होने का सपना। कुछ नहीं था मेरे पास सिवाय तुम्हारी यादों की किरचियों के। तुम्हें कैसे पता होगा रोटी के लिए कमाए पैसों से किसने भेजे तुम्हारे पसंदीदा फूल। अपने दरवाज़े पर नितदिन मिलने वाले फूलों को तो तुमने सजाया पर कहाँ सजाए उसके कदमों के निशान जो खाली पेट तुम्हारे दरवाज़े तक आते थे तुम तक तुम्हारे पसंदीदा रंग पहुँचाने। रंगों का क्या? ये तो जिसके पास हो उसके हो जाते हैं।

आज रंग मेरा आँचल भरने को बरकरार हैं। कितने दिनों के बाद आई हूँ मैं अपनी पनाहगाह में। यहाँ के चप्पे -चप्पे पर छाये हैं मेरे इश्क़ के रंग। दीवारों पर लगी तस्वीरों पर मेरी कल्पनाओं के रंग। वार्डरोब में भरे मेरे भेजे रंग। डाइनिंग पर फैले मेरे पसंदीदा बरतनों में बिखरे मेरे रंग। बगीचे में पूरी शान से झूमता वो काला गुलाब। यहाँ के हर रंग में घुले हैं मेरे इश्क़ के रंग। कोने-कोने में महक रहा मेरी अनजानी रूह का अहसास। मैं तुम्हारी उँगलियाँ थाम कहती हूँ "वाह! बड़ा प्यारा घर सजाया है आपने।" तुम एक अकड़ से बताते हो "न जाने कौन है जो ये सब भेजता है।"

मैं पूछती हूँ "कभी जानने की इच्छा नहीं हुई।" तुम कहते हो "क्या फ़र्क पड़ता है।"

कुछ टूट जाता है अन्दर ही अन्दर बिना आवाज़। इसे टूटने की तो आदत है। तुम्हारे बेडरूम तक ऐसे आने का लम्बा सफ़र तय किया है मैंने। सामने आज भी दिख रही है वह टूटी खिड़की। और मेरे आगे मुस्कुरा भर देती है वो उलझे बालों वाली झल्ली सी लड़की। बाहर बगीचे में खिले हैं पूरी शान से मेरे लगाये काले गुलाब। गुलदान में आज के मेरे भेजे ताज़ा फूल सजे हैं। मैं पी रही हूँ घूँट -घूँट तेरे इश्क़ का नशा।

रात बूँद-बूँद बरसा रही है तेरे प्यार का अमृत। चाँदनी तुम्हारे चेहरे से फिसल आ ठहरती है मेरे अधरों पर। चाँद आकाश से आज मेरे आँचल में उतर आया है। मेरे कानों में गूँजते हैं तुम्हारे ठहरे हुए धीमे से स्वर। मेरी धड़कन सुन रही है तुम्हारी साँसों के आरोह-अवरोह। रात की रानी भर रही है मुझे अपने आग़ोश में। मैं पलकों को कस कर कर लेती हूँ बंद जिसमें अनन्त तक बसे रहोगे तुम।

सुबह की मीठी धूप मेरी पलकें सँवार रही है। मोगरे की महक से मन सराबोर है। मेरे होठों पर एक शर्मीली स्मित ठहर जाती है।

मैं चाय की प्याली सी छलक-छलक जाती हूँ। धूप शिद्दत से उतर आई है। मैं जाने को तैयार होती हूँ। तुम कहते हो "तुम्हारा साथ बहुत अच्छा था। क्या हम फिर मिलेंगे?" मैं शरमा कर हाँ कहती हूँ। सूरज का उजाला मेरी आँखों में तैर जाता है। मैं तलाशनने लगती हूँ तुम्हारी आँखों में वो फटे फ्राक वाली लड़की। तुम नोटों की गड्डी मेरे सामने लहराते हो। मैं अचकचा कर तुम्हें देखती हूँ।

"यह क्या? "

"तुम रात भर मेरे साथ थीं।"

धूप का एक टुकड़ा दरवाज़े पर अटक गया। मेरी आँखों में खिड़की के टूटे शीशे की तेज़ चुभन होने लगती है।

सामने से आ रहे रामू काका मेरे हाथों में नोटों की गड्डी देख बाहर जाने लगते हैं। वह मुझे देख यकायक रुक जाते हैं। बूढ़े की आँखों में वो फटी फ्राक, उलझे बालों वाली लड़की झिलमिलाती है। मैं नोट फेंक रोती हुई बाहर भागती हूँ।

सामने गुलदान में कल के बासी फूल मुरझा रहे हैं।

000

लघुकथा

महिलाओं का जुगाड़

मीरा गोयल

भारत में सफलता से जीने का अपना अंदाज़ है। सलमा के शौहर को अपने जीने के अंदाज़ पर नाज़ था। वे ईमानदारी और नियम के बड़े पाबन्द थे। रिश्वत दे कर अपना काम नहीं कराएँगे, चाहे जितना भी समय लगे पर कानूनी रास्ता ही अपनाएँगे।

खाना तो हर रोज़ बनाना और खाना है। गैस ख़तम हो जाने से रसोई में इमरजेंसी आ खड़ी हुई। पति महोदय का तरीका लंबा और अनरिलायबल! क्या करे? सलमा सोचती रही, फिर बिजली की चमक सा एक ख़याल कौंधा और सलमा मुस्कुराई।

सलमा पड़ोसी सहेली सुनीता के पास पहुँची और दोनों ने मिल कर समस्या का हल चुटकियों में पा लिया।

सुनीता काम आगे बढ़ाने के लिये अनिवार्य रिश्वत चुका देगी। शौहर के पूछने पर सलमा सच बोल सकेगी कि 'मैंने' काम कराने के लिये रिश्वत नहीं दी है। पति खुश तो घर खुशहाल।

कुछ समय बीत जाने के बाद सलमा अपनी सखी का उधार चुका कर लेन-देन बराबर कर लेती है।

साँप भी मारा गया और लाठी भी बचा ली।

000

मीरा गोयल

211 Landreth Ct., Durham, NC-27713, USA

मोबाइल- 919-452-3831

ईमेल- madeera.goyal@gmail.com

कैडिटे मकल
(जंगल की बेटी)

मलयालम कहानी

डॉ. अम्बिकासुतन मंगाड
अनुवाद-डॉ. षीना ईप्पन

Dr.Ambikasutan Mangadu
Nandakam,Kanjangadu South P.O,
Anandashramam via
Kanjangadu, Kasargod(dt),
Kerala,
Pin-671531

Dr.Sheena Eapen
House No.2,Alphonsa
Meadows,Thekkemala P.O,
Kozhencherry
Pathanamthitta(dt), Kerala,
689654
drsheenaeapen@gmail.com

माँ जी ... हौले से मुन्नी पीली ने बुलाया। परंतु सुनकर भी माँ ने अनसुना कर दिया। माँ जी... माँ जी... रुआँसा होकर पीली ने फिर बुलाया तो माँ ने उत्तर दिया, "क्या है बेटी?" माँ मुझे घुटन महसूस हो रहा है। सुनकर वह काँपने लगी। परंतु अपनी घबराहट को छिपाकर उसने बेटी को सांत्वना देते हुए कहा- "कोई बात नहीं री... मैं दूर से दौड़ रही थी न, शायद इसलिए होगा।" पीली ख़ामोश हो गई।

पीली एक हाथी की बच्ची है। वह माँ के गर्भ में है। अभी तक दुनिया में नहीं आई थी। पर जन्म लेने के पहले ही माँ-बेटी आपस में बातें करने लगी थीं।

ऐसे एक दिन बातचीत में माँ ने बेटी से कहा कि वह उसे 'पीली' नाम से बुलाना चाहती है। सुनते ही बच्ची ने खुश होकर कहा "माँ जी... सुदंर नाम है, मुझे बहुत पसंद आया है। हाँ... माँ-जी... यह बताइए कि आपका नाम क्या है?"

उसने तुरंत कहा 'उलूपी'। "उलूपी...! कितना अच्छा नाम है। क्या हमारे हाथी समूह के हर किसी को ऐसे नाम होते हैं?"

"हाँ ज़रूर... जन्म लेने पर तू इन सबको देख सकती है।"

पीली खुश होकर कहने लगी "जंगल में उछल कूदकर चलना कितना सुंदर होगा न माँ जी... पीली पेड़ों और लताओं के बीच खेल-खिलवाड़ करने की बात सोचने लगी। थोड़ी देर बाद फिर से उसने माँ को बुलाकर कहा "माँ जी... मुझे बहुत घुटन महसूस हो रही है, साँस लेना मुश्किल हो गया है।" माँ फिर से काँपने लगी पर कुछ बोली नहीं। तब पीली ने पूछा "माँ जी तुम इतनी दूर क्यों दौड़ी!"

"वह तो... वह तो... बम के विस्फोट को सुनकर मैं चौंक गई थी।"

माँ जी... "क्या आप अब भी दरिया में हैं ?"

"अरी... तुझे कैसे पता चला...."

"मैं तो पानी की हिलोरें सुन सकती हूँ।"

"माँ जी... आप इतनी देर पानी में क्यों खड़ी हैं?"

"क्या ठंड नहीं लग रही है? मुझे तो ठंड महसूस हो रही है।"

"पानी देखकर मैं सचमुच पागल हो गई री... बहुत दिनों से पानी नहीं मिला, अत: एक साथ इतना पानी देखकर..."

"माँ जी... झूठ क्यों बोल रही हो, तुम तो बीच में काँप रही हो, भयभीत हो रही हो, सच बताओ माँ क्या हो गया है?"

अचानक वह हथिनी काबू खोकर रोने लगी। थोड़े समय के बाद वह कहने लगी "बेटी मैं भूखी रास्ते से चली आ रही थी, तभी एक आदमी ने मुझे अनानास का एक फल दिया। इतनी

भूख थी कि मैं उसे तुरंत ही खाने लगी। एक ही बार चबाया, तुरंत उसके अंदर रखा हुआ बम फूट गया। उसकी आवाज़ ही तूने सुनी। मैं उस चोट और दर्द को सहन न कर पाई, इसलिए ही दौड़ी। दरिया को देखकर मैंने पानी में मुँह डाल दिया।"

"हाय माँ जी... क्या आपके मुँह में चोट लगी है, क्या असहनीय दर्द है?" वह चुप हो गई।

दरिया के पानी का रंग अब लाल हो गया, क्योंकि उसके मुँह से खून बह रहा था। गाल और ठोडी बिखर गए थे। परंतु बेटी से उसने कहा "कोई बात नहीं...थोड़ी सी चोट लगी है।"

तब बेटी ने कहा "माँ जी... आपने ही कहा था न इन आदमियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। फिर आपने ही सूँड आगे करके उस क्रूर मनुष्य से फल क्यों ले लिया?"

"सही है मुन्नी, परंतु अनानास के फल को देखते ही मैं अपने आपको भूल गई। मैं ने तब बचपन के बारे में सोचा। मैं ने कितने सारे अनानास के फल चखे थे।" वह क्षण भर के लिए यादों में खो गई।

तब पीली ने उससे पूछा "बचपन में आपको किसने अनानास के फल दिए थे।" जानलेवा दर्द को भूल जाते हुए बहुत ही जोश में हथिनी कहने लगी "वह तो एक कहानी जैसी है, बताने पर शायद ही तू भरोसा करेगी। उस ज़माने में इधर सब घने जंगल थे। जिस रास्ते से हम आए वह हाथियों का अड्डा था। बाद में ही आदमी आने लगे। आदमी झुंड-झुंड में आकर जंगल पर अपने अधिकार जमाने लगे। जंगल के पेड़ पौधों को काटने लगे। एक रात को बाँस से भरे जंगल में मैं उछल कूदकर चल रही थी, अचानक एक भरे हुए कुएँ में गिर पड़ी। मेरे मम्मा-पापा ने मुझे बचाने की कोशिश की, फिर निराश होकर वे जंगल की ओर वापस चले गए। सुबह मेरी कराह सुनकर वनपालक आए और मुझे बचाकर उनके दफ्तर ले गए। उधर जो कटहल का पेड़ था उसमें मुझे बाँध दिया। छोटी बच्ची होने के नाते सारे दफ्तर वालों को मेरे प्रति बड़ा लगाव था। उनमें से एक आदमी जिसे बाकी लोग कवि मास्टर पुकारते थे, उन्हें मुझसे ज़्यादा लगाव था। वे हमेशा मेरे पास आकर प्यार-दुलार देते थे, गन्ना, केला एवं गुड़ देते थे। फिर गले लगाते हुए कहते थे कि दूर मेरे घर में भी तुझ जैसी एक बेटी है। तब मैं पापा-मम्मा को छोड़ने की बात भूल जाती। परंतु एक और आपदा मेरे पीछे था।" बहुत ही कौतुहलता भरी आवाज़ में पीली पूछने लगी "कौन-सी आपदा माँ जी..."

जब मैं कुएँ में गिर पड़ी थी, तब मेरे सूँड पर एक जहरीला काँटा लग गया था। थोड़े दिन बाद सूँड में सूजन आ गई, दर्द से मैं ज़ोर से कराहती थी, तब कवि मास्टर दफ्तर से आकर मुझे थपथपाकर साँत्वना देते थे। फिर उन्होंने एक वैद्य को बुलाया उसने कहा "चोट ज़्यादा गहरा है, बचने की संभावना कम है। चार दिन से ज़्यादा यह जीवित न रहेगी। इसे जंगल में कहीं छोड़ देना।"

सुनकर कवि मास्टर फूट-फूटकर रोने लगे। अगले दिन देखती हूँ कि कवि जी एक बाँस के टुकड़े को छुरे के आकार में काटकर लाए। मेरे पास आकर गले लगाते हुए मुझे अनानास के टुकडे दिए। अचानक वह सब हुआ। कठिन दर्द में मैं कराहने लगी। मैं जान गई कि उन्होंने बाँस के बने छुरे से मेरे घाव को काटा था। ज़ख़्म से रक्त और मवाद निकलने लगे। फिर वे जंगल से ही जड़ी-बूटी लेकर आए दवा बनाकर उन्होंने मेरे घाव पर पट्टी बाँधी। अचम्भा यह था कि चार दिन के बाद मेरा ज़ख्म ठीक हो गया। तब कवि जी ने कहा "जाओ तुम अपने जंगल, जहाँ ये आदमी हैं वहाँ तुम्हें न रहना चाहिए। फिर मुझे जबरन जंगल ले गए, मेरे लिए और कोई चारा ही न था, अत: मैं चलने लगी। पीछे मुड़कर देखा तो फूटफूटकर रोते हुए हाथ उठाकर मुझसे विदा लेने वाले कवि मास्टर को देखा।"

"माँ जी... क्या फिर कभी आपने उन्हें देखा था?"

"हाँ मुन्नी... सिर्फ एक बार बहुत अरसों के बाद, तब तक मैं बड़ी हो गई थी। जंगल में अपने झुण्ड के बीच चलते वक्त मुझे उनकी गंध का अहसास मिला। मैं उस ओर चली जहाँ से वह गंध आ रही थी। मुझे पता चला कि वे वापस आए हैं। मैं उस कटहल के पेड़ तक दौड़ी। ठीक... ठीक... कुछ दिखाई न पड़ रहा था क्योंकि रात का समय था। आँगन में रखे खाट पर दो-तीन आदमी सो रहे थे। कवि जी को पहचानने में देर न हुई। अपने सूँड से उन्हें जगाया, मास्टर जी चौंककर जाग उठे। मेरी सूँड को दबाकर मुझे गले लगाया। तू बड़ी हो गई है कहते हुए अंदर जाकर तीन बड़े-बड़े अनानास के फल लेकर आए और कहने लगे- "मैं घर से लाया हूँ, मुझे पता था कि हम मिलेंगे।"

तीनों फलों को मैंने तुरंत ही खा लिया। तब वे कहने लगे "अब तुझे वापस जंगल जाना है क्योंकि इधर बहुत सारे आदमी हैं, जल्दी चल।" न चाहते हुए भी मैं वापस चलने लगी।

"माँ जी... फिर कभी आपने उन्हें नहीं देखा?"

"नहीं मुन्नी... क्योंकि वे फिर कभी इधर आए नहीं। अगर आते तो मुझे पता चल जाता क्योंकि उनकी गंध का पता अब भी है। यों ही मैंने पुरानी बातें सोच दीं। अनानास को देखते ही कवि जी की कही हुई बात भूल गई।"

"माँ जी... दुखी मत होना।"

माँ का शरीर काँपने लगा।

पीली फिर पूछने लगी "माँ जी... क्या हो गया है? क्यों काँप रही हो?"

"अरी, कुछ तो नहीं, मैं सिर्फ यही सोच रही थी कि तुम्हारे जन्म लेने तक मैं ज़िंदा रहूँ।"

"माँ जी... ऐसा न सोचो... इस दुनिया में जन्म लेने की मुझे ज़रा भी आशा नहीं है, मैं भी तुम्हारे साथ आना चाहूँगी। सिर्फ एक इच्छा बाकी है, आप मुझे केवल एक बार वह नाम लेकर बुलाइए जिसे आपने मेरे लिए रखना चाहा।"

क्षण भर के लिए हथिनी शोकमूक हो गई, फिर बुलाने लगी "पीली... मुन्ना... मेरी प्यारी बिटिया..." उस समय रास्ते से चलने वाले एक हाथी ने उसके पास आकर उसे जगाने की कोशिश की। परंतु तब तक वह इस दुनिया से चल बसी थी। उस हाथी के हिलाने से वह पानी में यों ही गिर पड़ी और डूबने लगी।

000

रचना और आलोचना का आपसी रिश्ता

नंद भारद्वाज

यह बात अपने आप में चिन्ताजनक लगती है कि साहित्य में रचना और आलोचना के आपसी रिश्ते को लेकर हिन्दी के साहित्य-समाज में इतनी नकारात्मक सोच क्यों है कि आलोचना रचना की पूरक या सहयोगी होने की बजाय वे परस्पर विरोध में खड़ी दिखाई देती हैं। वैसे तो हर रचनाकार अपने आप में आलोचक भी होता है और उसकी रचना एक तरह से अपने समय-संदर्भों की व्यापक आलोचना। हम जिस विवेक-अनुभव से अपने यथार्थ को देखते-परखते और जाँचते हैं, वह भी तो एक प्रकार की समीक्षा-आलोचना ही है। ठीक इसी अर्थ में हम रचना और आलोचना को एक दूसरे का पूरक मानते आए हैं।

आलोचना-कर्म के बारे में मेरा तो मानना यह है कि हर दौर की रचना (कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) के संजीदा आलोचक आमतौर पर उसी दौर के लोग होते हैं, बल्कि जो अच्छे रचनाकार हैं, वही अच्छे आलोचक भी होते हैं, वही उस दौर की रचना की अन्तर्वस्तु और रचनाशिल्प का सही विवेचन या मूल्यांकन कर पाते हैं। कविता में मुक्तिबोध से लेकर एकान्त श्रीवास्तव तक, कहानी में कमलेश्वर-राजेन्द्र यादव-निर्मल वर्मा से लेकर आज अजय नावरिया-चंदन पाण्डेय-शैलेन्द्र सागर तक सभी महत्वपूर्ण रचनाकारों ने रचनाकर्म के साथ आलोचना के काम को भी अपने ढंग से किया है, हम क्यों हर समय नामवरसिंह, मैनेजर पाण्डेय या पुरुषोत्तम अग्रवाल सरीखे आलोचकों से ही यह अपेक्षा करते हैं कि वही हर दौर की रचना का सम्यक मूल्यांकन करें। अशोक वाजपेयी अगर अपने साप्ताहिक अख़बारी कॉलम के लिए कुछ अपनी शैली में पका-अधपका परोस जाते हैं, तो क्यों उसे इतनी गंभीरता से लिया जाता हैं। आज हर साहित्यिक पत्रिका में लगातार नए प्रकाशनों पर अच्छी समीक्षाएँ आ रही हैं - हंस, कथादेश, नया ज्ञानोदय, तद्भव, वसुधा, समीक्षा, पुस्तक वार्ता, कथाक्रम, वर्तमान साहित्य, कथन, समकालीन भारतीय साहित्य आदि में जो समीक्षाएँ आती हैं, मैंने अक्सर पाया है कि वे समीक्षक अपनी पूरी ईमानदारी से और परिश्रम से उन कृतियों पर लिखते हैं और अधिकांश नए रचनाकार ही होते हैं। मधुरेश, मोहन कृष्ण बोहरा, ज्योतिष जोशी, अरविन्द त्रिपाठी, रवीन्द्र वर्मा, अजय तिवारी, विनोद शाही आदि कितने ही सक्रिय समीक्षक और रचनाकार हैं जो पूरी शिद्दत से अपना काम करते रहे हैं, इसके बावजूद यह शिकायत है तो मैं ठीक से समझ नहीं पा

नंद भारद्वाज
71 247, मध्यम मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर – 302020
मोबाइल - 9829103455
ईमेल- nandbhardwaj@gmail.com

रहा कि यह कमी आखिर कहाँ और किस रूप में दिखाई देती हैं। हाँ, समीक्षा-आलोचना के क्षेत्र में जो अध्यापक बंधु या कुछ प्रोफ़ेशनल किस्म के लोग व्यावसायिक दबावों में आ गए हैं तो उन पर इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था में रोक लगा पाना तो मुश्किल है और लगे भी क्यों?

विजय बहादुरजी और परमानंदजी समकालीन लेखन की विभिन्न विधाओं पर अपने तरीके से लिखते रहे हैं, उनकी आलोचना और विवेचना पर जहाँ आवश्यक हो, विचार किया जाना चाहिए। परमानंदजी कई बार अपनी कथा-आलोचना में व्यावसायिक आकर्षणों से संचालित होते दीखते रहे, लेकिन उनके गंभीर आलोचना कर्म से इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन कविता कहानी पर कई बार उनके विश्लेषण बहुत सटीक या वस्तुनिष्ठ नहीं भी माने गए हैं।

युवा आलोचनक सुबोध शुक्ल ने हिन्दी आलोचना की अद्यतन दशा पर अपना रोष प्रकट करते हुए बेशक 'जटिलता के सरलीकरण की प्रवृत्ति' से अपने को बचा लिया हो, लेकिन बचाव के इस प्रयत्न में वे स्वयं कई बार जितने अबूझ और अमूर्त होते दीखते हैं, वह भी कम चिन्ताजनक नहीं है। कई बार उनके लिखे को तीन बार पढ़ जाने के बाद भी यह अनुमान कर पाना असान नहीं होता कि हिन्दी आलोचना अपनी जिन खामियों और 'कमज़ोर तत्वों' के कारण 'रचनाधर्मिता के खाँटी मुहावरे की खोज' में असफल रही है, इसके लिए उनकी नज़र में आख़िर वे कौन-सी आलोचनात्मक कृतियाँ और आलोचक ज़िम्मेदार हैं? हिन्दी रचनाशीलता और आलोचना के प्रति इतना नकारवादी रुख क्या उचित है? मेरा यह भी मानना है कि हिन्दी आलोचना की परंपरा और प्रकृति के साथ पश्चिमी आलोचना पद्धति, नई समीक्षा या उत्तर-संरचनावादी मॉडल के सिद्धान्तकारों की चर्चा अधिक प्रासंगिक नहीं है - वे चाहे नॉरथ्रोप फ्री हों, जार्ज लूकाच हों, फ्रैंज फेनन हों या फूको-देरिदा। सुबोध शुक्ल के अध्यवसाय और परिश्रम का पूरा मान रखते हुए मैं विनम्रतापूर्वक यह कहना जरूरी समझता हूँ कि अपने विवेचन में सहजता और साफगोई बरतना किसी तरह का सरलीकरण नहीं है, बल्कि इससे साहित्यिक संवाद ओर संप्रेषण को बल मिलता है।

समकालीन हिन्दी आलोचना के व्यापक परिदृश्य में सृजनधर्मी आलोचकों की अध्ययनशीलता, बहुज्ञता और तार्किकता का मैं इसलिए भी कायल रहा हूँ कि हिन्दी रचनाशीलता और आलोचना के साथ पिछले चार दशक से अधिक समय का मेरा साझा रहा है और साहित्य की रचना-प्रक्रिया पर काम करते हुए उसे करीब से जाना समझा है, इसलिए जब कोई आलोचना की समूची विरासत को नकारने का स्वर अख्तियार करता है, तो स्वाभाविक रूप से चिन्ता होती है। हिन्दी की रचनाशीलता और उसकी आलोचना पर तो बाहर से हमला करने वालों की पहले ही कमी नहीं है, इधर नए विवाद से क्या दशा होनी है, कहना मुश्किल है।

हिन्दी आलोचना में तमाम उतार-चढ़ावों के बावजूद मुझे उसमें एक तरह की निरन्तरता और क्रमिक विकास दिखाई देता है और इसकी बहुत लोगों ने समय-समय पर चर्चा भी की है। रचना और आलोचना यों भी एक-दूसरे का साथ निभाती हुई आगे बढ़ती है, ऐसा संभव ही नहीं है कि रचना तो विकसित हो और उसकी आलोचना कहीं पीछे छूट जाए। कुछ ऐसे बिन्दु भी उभरकर सामने आए हैं, जिनसे मेरी बुनियादी असहमति है –

१ यह कहना सही नहीं है कि आलोचना कृतिधर्मी या व्यक्तिधर्मी हो गई है, यह ठीक है कि प्रसंगानुरूप कहीं वह व्यक्ति-संदर्भों से मुक्त न हो।

२ कुछ पाठ्यक्रम आधारित अध्यापकीय आलोचना से यह भ्रम हो सकता है कि वह टीकावादी या शब्दार्थवाची हो गई है, हिन्दी आलोचना की मुख्य धारा में ऐसी कोई प्रवृत्ति नहीं है।

३ विमर्शपरकता (Discourse) वैसे भी हिन्दी के लिए एक विजातीय प्रवृत्ति है और इसका न रहना ही उसके जातीय चरित्र की पहचान है।

४ निजी विधा वाला चलताऊ बोध एक जल्दबाजी में ईजाद की गई टर्म है, इसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है। इसी तरह वस्तुनिष्ठ विचारबोध की कमी भी एक मनोगत आक्षेप है।

बहुत से नए रचनाकारों और युवा आलोचकों की अध्ययनशीलता, बहुज्ञता और तार्किकता का मैं कायल हूँ, लेकिन हिन्दी रचनाशीलता और आलोचना के साथ चार दशक का मेरा भी साझा है, साहित्य की रचना-प्रक्रिया पर काम करते हुए उसे करीब से जाना समझा है, इसलिए जब कोई आलोचना की समूची विरासत को नकारने का स्वर अख्तियार करता है, तो स्वाभाविक रूप से चिन्ता होती है। हिन्दी की रचनाशीलता और उसकी आलोचना पर तो बाहर से हमला करने वालों की पहले ही कमी नहीं है, इधर नए विवाद से क्या दशा होनी है, कहना मुश्किल है।

हिन्दी आलोचना की समृद्ध विरासत को याद दिलाने में अगर कुछ नामोल्लेख करना ज़रूरी हो जाए तो मुझे उसमें किसी तरह का वितंडावाद नहीं दीखता। कई बड़े आलोचकों से वैचारिक असहमतियों के बावजूद रामचंद्र शुक्ल की आलोचना परंपरा में जहाँ हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नामवरसिंह, देवीशंकर अवस्थी, विद्यानिवास मिश्र, मलयज, मैनेजर पाण्डेय, परमानंद श्रीवास्तव, निर्मला जैन, नंदकिशोर नवल, रोहिणी अग्रवाल जैसे आलोचकों की अपनी विशिष्ट पहचान है, तो वहीं सृजनधर्मी आलोचकों में अज्ञेय, मुक्तिबोध, विजयदेव नारायण साही, निर्मल वर्मा, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, रमेशचंद्रशाह, नंदकिशोर आचार्य, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, विष्णु खरे, विजयकुमार आदि के आलोचनात्मक लेखन को कतई अनदेखा नहीं किया जा सकता। रचना और आलोचना के बीच एक शाश्वत विरोध देखनेवाले बहुत से लोगों की सोच से मेरी कुछ विनम्र असहमतियाँ है, जिनको हिन्दी आलोचना की रचनात्मकता और उसके ऐतिहासिक योगदान को रेखांकित करने की दृष्टि से मुझे व्यक्त करना बहुत ज़रूरी लगता है।

000

एक भेंट मंत्री जी से

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल

डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2, सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा) 122018
मोबाइल- 7838090732
ईमेल- giriraj3100@gmail.com

खचेडू परमार चुनाव जीतकर जब दनदनाते हुए प्रदेश की राजधानी में जा पहुँचे तो उनसे ज़्यादा ख़ुशी के मारे छाती हमारी फूली, क्योंकि उनके चुनाव में गला फाड़-फोड़कर सबसे अधिक नारे हमने लगाए थे। हम ही ने जनता को अवगत कराया था और कहा था, 'भाई खचेडू परमार की जीत आप सबकी जीत होगी, हम सबकी जीत होगी और वाकई हम भाई खचेडू परमार की जीत को अपनी सबकी जीत समझ ही रहे थे। हमें विश्वास था कि भाई खचेडू परमार भी अपनी जीत को हम सबकी जीत, जनता की जीत समझकर काम करेंगे और उन सब वायदों को याद रखेंगे, जो उन्होंने हम सबसे यानी जनता से किए थे। हमें गुमान था कि हम कोई एक व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि हम पूरी-की-पूरी यानी समग्र जनता हैं। जैसे पतीली का एक चावल बाक़ी सारे चावलों का दशासूचक होता है, इसी तरह हम यह मानते आए थे कि हम भी समाज की पतीली का एक ऐसा ही चावल हैं, जो इस क्षेत्र के रहनेवाली सारी जनता की दशा का भंडाफोड़ कर सकता है। हमें यह भी गुमान था कि भाई खचेडू परमार चाहे नायक बन जाएँ या विधायक, जीते जी हमें नहीं भूलेंगे और हमें इस प्रकार याद रखेंगे, जैसे पंछी अपना नीड़ याद रखता है।

राजधानी से शपथ लेकर लौटे तो हमें ज्ञात हुआ कि भाई खचेडूसिंह परमार ने अपने सुधारवादी कार्यक्रम की शुरूआत स्वयं अपने-आपसे की है। उन्होंने सबसे पहले अपना नाम सुधारा है। अब वे खचेडूसिंह परमार नहीं हैं के. एस. परमार हैं। हमें यह सुनकर अच्छा लगा। अंग्रेज़ी वाकई में एक ऐसी बढ़िया भाषा है, जो आदमी और उसकी असलियत पर पर्दा डालने की योग्यता रखती है। हमें अपने जीवन में पहली बार यह बात भी महसूस हुई कि मनुष्य जब उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़नी शुरू करता है तो सबसे पहले वह अपना और फिर अपने परिवार का सुधार करता है। यदि वह यह सुधार न करे तो जीवन-भर खचेडूसिंह परमार बना रहता है, के. एस. परमार कभी नहीं बनता।

भगवान् झूठ न बुलवाए तो हम कम-से-कम ऐसे दर्जन-भर व्यक्तियों को जानते हैं, जो अपने मूल में ज़ीरो थे, किंतु जब वे आगे बढ़े तो उन्होंने अपने ज़ीरो को हीरो बनाकर प्रस्तुत किया और शाही परिवार के सदस्य बनकर पौतड़ों के रईस कहलाए।

भाई कलंदर अली खाँ तो हमें इस तरह याद हैं जैसे कल की बात हो। बड़े बूढ़े कहते थे कि कलंदर अली खाँ के बाप-दादा पेशे से कलंदर थे। मजमा लगाकर बंदर नचाने का काम किया करते थे। उनके दादा के एक हाथ में डुगडुगी होती थी और दूसरे हाथ में बँदरिया के गले की रस्सी। वे गली-गली घूमते, बंदर नचाते, पैसे कमाते कलंदर अली खाँ कुछ बड़ा हुआ तो बंबई भाग गया। बंबई में ऐसा छप्पर फटा कि नोटों के ढेर लग गए। लोग कहते हैं कि बंबई में उसका किसी बड़े माफ़िया गिरोह से संबंध हो गया था। माफ़िया गिरोहों को तो आप जानते ही हैं, वे न अधिकारी को माफ़ करते हैं, न व्यापारी को, उनके यहाँ माफ़ी का कोई खाना नहीं होता। सो कलंदर अली खाँ माफ़िया बने, जी भरकर धनपतियों को निचोड़ा, जो फँस गया उसे माफ़ नहीं किया। नंबर एक की विदेशी बीवी और नंबर दो का पैसा लेकर वापस लौटे तो वे कलंदर अली खाँ नहीं थे। के. ए. खाँ सेठ रेशमवाला हो गए थे। उन्होंने बड़े पैमाने पर रेशमी वस्त्रों के एक्सपोर्ट का काम आरंभ कर दिया था। हमने देखा कि यहाँ भी सबसे पहले अँग्रेज़ी ही उनके काम आई। वे कलंदर अली खाँ की जगह के.ए. खाँ बने और अपने पुराने संस्करण पर नया अवरण चढ़ाने में सफल हो गए। अँग्रेज़ी चीज़ ही ऐसी है। वह पुराने को नया और नए को और नया कर देती है। हमें याद है कि पुराने कलंदर खाँ ने पैसा आया तो सबसे पहले अपने नाम का ओवरहाल किया। फिर अपने पुरखों का। उन्होंने अँग्रेज़ी भाषा में एक पुस्तक लिखाई, जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि वे माँ के पेट से अपने मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा हुए थे। कलंदर खाँ ने पहले अपना ओवरहाल किया, फिर अपने पुरखों का बँदरिया नचाने-नचाते

दुनियाभर को अपनी उँगली पर नचानेवाले नायक बन गए। अपने देश में अमीर का बेटा होना गर्व की बात है, फ़क़ीर का बेटा होना शर्म की बात है। इसलिए समाज का प्रत्येक कलंदर खाँ पैसे वाला होते ही सर्वप्रथम अमीर का बेटा बनता है। अमीर का बेटा न बने तो उसे उठते-बैठते हरदम यह लगा रहता है कि कहीं कोई कसर रह गई है। तो साहब बँदरिया नचानेवाले बाप के बेटे कलंदर अली खाँ ने धन-दौलत आते ही सबसे पहले अपने आपको कलंदर अली खाँ की जगह के.ए. खाँ बनाया। फिर उसके साथ सेठ रेशमवाला जोड़ा और फिर वे जनाब के.ए. खाँ सेठ रेशमवाला सुपुत्र स्वर्गीय राजा महमूद खाँ तुर्रेवाला के नाम से प्रसिद्ध हो गए। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके पूज्य पिता जी अपनी पगड़ी में इतना ऊँचा तुर्रा लगाते थे कि उनसे ऊँचा तुर्रा क्षेत्रभर में किसी का नहीं था। कलंदर की चर्चा तो यहाँ लुभाव में चल रही है। बात तो आरंभ हुई थी खचेड़ूसिंह परमार की, जो विधायक बनते ही के.एस. परमार बन गए। हम भाई कलंदर खाँ को याद कर सिर्फ़ यह बताना चाहते थे कि पैसा और अँग्रेज़ी दो चीज़ें ऐसी हैं, जो आदमी की उस असलियत को छिपा लेती हैं, जिसे याद करके वह लज्जित होता रहता है। खचेड़ूसिंह चूँकि अपने नाम से लज्जित होते थे, सो उन्होंने विधायक बनते ही जो परिचय-कार्ड छपवाए उन पर लाल रंग से लिखा- के.एस. परमार विधायक। हम समझते हैं कि यह के. एस. के अक्षर और विधायक का शब्द अब स्थायी तौर पर उनके अस्तित्व के साथ जुड़ गया है। यह अब जीते-जी उनसे अलग होनेवाला नहीं है। क्योंकि जब वे विधायक नहीं रहेंगे तो परिचय-पत्र पर ही नहीं उनकी बाउंड्री वॉल पर भी लिखा होगा श्री के.एस. परमार भूतपूर्व विधायक। हिन्दी के शब्दकोश में भूतपूर्व ऐसा शब्द है, जो आदमी की हैसियत और उसके पद की रक्षा करता है।

के.एस. परमार विधायक बने, शपथ ली। फिर अपनी पार्टी के कुल तीन सदस्यों का साथ छोड़कर सत्तारूढ़ पार्टी की पंक्ति में जा घुसे। एक का साथ छोड़ने और दूसरे दल का साथ देने की जितनी क़ीमत वे ले सकते थे, उतनी क़ीमत उन्होंने ली, साथ में मंत्री का पद भी लिया, लालबत्ती की गाड़ी भी ली, सुरक्षागार्ड भी लिए। चमचों की सेना स्वयं आ गई। उसे किसी से लेना या माँगना नहीं पड़ा।

पद ऊँचा हुआ तो हमने सोचा कि खचेड़ूसिंह परमार जी, आज जो कुछ भी हैं, हैं तो हमारे ही कारण। उनकी जीत तो थी नहीं, हमारी जीत थी, सो हम चलते हैं और उनसे मिलकर आते हैं। मिल भी आएँगे और उन्हें उनके वायदे भी याद दिलाते आएँगे। उनसे कहेंगे कि क्षेत्र की जनता आपसे संपर्क करना चाहती है। पर कैसे करे क्योंकि संपर्क-मार्ग ही नहीं है। आपने संपर्क-मार्ग बनवाने का वायदा किया था, उसे याद कीजिए और जनता को अपने-आपसे संपर्क करने का मौक़ा दीजिए।

हम पहुँचे तो बड़ी मुश्किल से कई दिन धक्के खाने के बाद अपने भाई यानी पुराने खचेड़ूसिंह परमार और उनके नए डीलक्स एडीशन श्री के. एस. परमार से हमारी एकतरफ़ा भेंट हुई। एकतरफ़ा इसलिए कि उन्होंने अपने सुनहरी चश्मे के भीतर से झाँकते हुए हमें यों देखा मानों वे हमें पहचान नहीं रहे हों।

घूर-घूरकर देखते रहने के बाद बोले, 'आपका परिचय! हम आपको पहचान नहीं रहे हैं।' हमें क्रोध तो बहुत आया, पर हम जनता हैं और जनता क्रोध को पी जाने की अभ्यस्त होती है। हम अपना क्रोध पी गए। बोले, 'हम आपके पुराने बंधक, पुराने सेवक हैं। हमने तो आपके चुनाव में धरती-आकाश एक कर दिया था। आपकी जीत को अपनी जीत माना था।'

'ग़लत किया', वे धीरे से हमारी बात काटते हुए बोले, 'पर हमें तो कुछ भी याद नहीं आ रहा है भाई। बहुत से लोग थे, किस-किसको याद रखते।' कुछ क्षण रुककर परमार जी फिर बोले, 'विधायक बनने की एक ख़राबी यह है जी कि आदमी की लाँग मेमोरी (एल.एम.जी.) क्षीण हो जाती है।'

हमने आश्चर्य से पूछा, 'लाँग मैमोरी? क्या मतलब?'

बोले, 'हाँ! तुम नहीं जानते। जिस प्रकार आँखों में साइट और लाँग साइट होती है, इसी तरह मस्तिष्क में शार्ट मेमोरी और लाँग मेमोरी भी होती है। आदमी जब विधायक बनता है और विधायक बनकर मंत्री बन जाता है तो उसे सामान्य तौर पर यह बीमारी चिपट जाती है। उसकी लाँग मेमोरी क्षीण हो जाती है। चुनाव के समय कौन-कौन था और क्या हुआ था, अब हमें कुछ याद नहीं है।'

'पर महाराज! अभी चुनाव को दिन ही कितने हुए हैं, केवल पंद्रह दिन। पंद्रह दिन तो शॉर्ट मेमोरी में आने चाहिए, लाँग मेमोरी में नहीं।'

उत्तर में तड़ाक से बोले परमार जी, 'पगला तो नहीं गए हो तुम। देखते नहीं हो कि समय की रफ़्तार कितनी तेज़ है। एक क्षण बीत जाए तो लगता है एक शताब्दी बीत गई। फिर यह तो तुम जानते ही हो कि बड़े-बूढ़े एक पते की बात कह गए हैं। कोई मर जाता तो बड़े बूढ़े कहा करते थे कि आज मरा कल दूसरा दिन। इसी तरह तुम यह समझो भाई कि आज मंत्री बना कल दूसरा दिन। यानी उसे इसी प्रकार भूल जाओ जैसे बूढ़े-बूढ़े अपने स्वर्गीय प्रियजन को भूल जाते थे। क्योंकि विधायक और मंत्री भी एक प्रकार से 'स्वर्गीय' ही हो जाते हैं।'

हमने देखा कि यहाँ हमारी दाल गलनेवाली नहीं है। सो हमने एक और तीर फेंका। बोले, 'मंत्रीजी! हम कुछ नहीं हैं। कम-से-कम अपनी लाँग मेमोरी के हिसाब से तो हम कुछ नहीं हैं, पर इस क्षेत्रीय जनता के प्रतिनिधि आप नहीं हो, हम हैं।' जनता ने हमें चुनकर भेजा है, आपको नहीं। आप अपने को जनता का प्रतिनिधि बताते हैं, यह झूठ है और इससे बड़ा कोई झूठ हो नहीं सकता। हम जनता से सीधा संपर्क करने में विश्वास रखते हैं। आप जैसे बिचौलियों की ज़रूरत नहीं है हमें। हमने देखा कि मंत्रीजी पुट्ठे पर हाथ रखने नहीं दे रहे हैं। उनकी लाँग मेमोरी जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है। हम अपनी कविता की अंतिम पंक्ति दागने की अभी सोच ही रहे थे कि मंत्री जी के अरदली ने हमें गरदन से दबोचा और सड़क का रास्ता दिखा दिया।

000

कैसे हो - बढ़िया हूँ

अखतर अली

कैसे हो – बढ़िया हूँ।

यह प्रश्नों की दुनिया में दिया गया सब से झूठा जवाब है।

सबसे ज़्यादा पूछा जाने वाला सवाल और सब से ज़्यादा दिया जाने वाला जवाब है।

इसके जैसे रटा हुआ सवाल और पिटा हुआ जवाब और कोई नहीं है।

यह एकमात्र ऐसा सवाल और जवाब है जिसके लिये ज़रा सी भी तैयारी नहीं करनी होती है। यह एक ऐसा सवाल है जिसका आज तक कुछ और जवाब हुआ ही नहीं है। इस सवाल और जवाब में कई रहस्य छुपे हुए है जैसे सवाल करने वाले को उसकी ख़ैरियत जानने में कोई दिलचस्पी नहीं होती। उसको जवाब मालूम है फिर भी वह सवाल करता है। इस सवाल का जवाब न मिले तो उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। ऐसा भी नहीं है कि एक बार जवाब मिल जाने के बाद यह सवाल हमेशा के लिये ख़त्म कर दिया जाता है।

कैसे हो – बढ़िया हूँ।

जवाब मिलने के बाद प्रश्नकर्ता न खुश होता है न परेशान। अक्सर सवाल वही किया जाता है जिसका जवाब मालूम नहीं होता है लेकिन प्रश्न का यह नियम यहाँ लागू नहीं होता है।

यह ऐसा सवाल है जो जवाब का मोहताज नहीं होता और जवाब न मिले तो इसका बाद में तकाज़ा भी नहीं किया जाता। फ़ोन कर के कभी नहीं पूछा जाता कि भाई साहब आपसे एक सवाल किया था उसका आप ने अभी तक जवाब नहीं दिया। यही एक ऐसा सवाल है जिसका जवाब तुरंत मिल जाता है। इसके लिये सोच-विचार की ज़रा भी ज़रूरत नहीं होती है, शिक्षा, ज्ञान और अनुभव से इसका कोई संबंध नहीं है। ऐसा ज़रा भी नहीं है कि पढ़ा-लिखा आदमी तो इसका जवाब तुरंत दे देगा लेकिन अनपढ़ आदमी सवाल सुनते ही सकपका जाए। दोनों लोगों का जवाब एक ही स्वर, एक ही समय में मिल जाता है। इस सवाल की सब से अच्छी बात यह है कि इसने बुद्धिमान और मूर्ख के बीच की खाई को पाट दिया है।

कैसे हो – बढ़िया हूँ।

यह एक मात्र ऐसा सवाल है जिसे जवाब के लिये भटकना नहीं पड़ता है। पहले मुर्गी आई या अंडा कि तर्ज़ पर यह सवाल भी किया जा सकता है कि पहले यह सवाल आया या इसका जवाब आया। यह बहुत ही क्रांतिकारी सवाल है, इस सवाल ने समाज से वर्गभेद को ख़त्म कर दिया है। इस सवाल ने समाज में कितना दिलकश नज़ारा बिखेर दिया है ज़रा नज़रें घुमा कर देखिए तो सही आपका दिल बाग़ बाग़ हो जाएगा जब आप देखेंगे कि यह सवाल ग़रीब अमीर से, मूर्ख बुद्धिमान से, शिष्य उस्ताद से, आलोचक कवि से और प्रकाशक समीक्षक से कर रहा है कि कैसे हो और वातावरण में यही जवाब गूँज रहा है बढ़िया हूँ।

कैसे हो – बढ़िया हूँ।

सामान्यत: सवाल पूछने का उद्धेश्य जानकारी हासिल करना होता है लेकिन दिन- रात रट्टू तोते कि तरह पूछे जा रहे इस सवाल में से जानकारी प्राप्त करने का पुट पूरी तरह नदारत है और

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हॉस्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छ.ग.)
मोबाइल- 9826126781
ईमेल- akhterspritwala@gmail.com

जवाब ? यह कैसे हो सकता है कि हर आदमी सुख, शान्ति और इत्मीनान से है ? लेकिन वह तो कह रहा है बढ़िया हूँ। अस्सी रुपये किलो प्याज़, पचास रुपये किलो आलू लेकर भी वह बढ़िया है, ईलाज का लाखों रुपये का बिल पटा कर भी वह बढ़िया है, हत्या और बलात्कार की ख़बर पढ़ कर भी वह बढ़िया है, टीवी के फूहड़ कार्यक्रम देख कर भी वह बढ़िया है।

इस सवाल में आग होनी चाहिए थी, स्पर्श जैसी सनसनाहट होनी चाहिए थी, बिजली जैसी दमक होनी चाहिए थी, इस सवाल को तंदूर होना चाहिए था और यह रेफ्रीजरेटर हो गया। व्यवस्था पिघल जाए, ज़ुल्म बह जाए, नाइंसाफ़ी राख हो जाए, भय और आतंक धुँआ बन उड़ जाए, इस एक प्रश्न में इतना तापमान होना चाहिए था लेकिन इसे झुनझुना बना दिया गया है, बर्फ़ का गोला बना खट्टा मीठा शरबत डाल इसकी तपिश को ठंडा किया जा रहा है।

बढ़िया हूँ ..... यह एक मुकद्धस सवाल का वाहियात जवाब है। जो बढ़िया नहीं है वह क्यों कह रहा है कि वह बढ़िया है ? इन्हीं लोगों के लिये परसाई जी ने लिखा था कि जो स्वयं के प्रति ईमानदार नहीं वह विश्व के प्रति कैसे ईमानदार हो सकता है ? ऐ लोगों ख़ुदा के वास्ते खून को ख़ाक नहीं कहो, बंदे बनो बंदर नहीं, एक सुलगते हुए सवाल पर यार पानी तो मत डालो। दु:ख के मौके पर ख़ुशी के गीत गाने वाले जब रोएँगे तो कोई आँसू पोंछने वाला नहीं मिलेगा।

कैसे हो, यह एक प्रश्न नहीं बल्कि जवाब देने का एक मौका है, यह एक मंच है, एक प्लेटफार्म है जिसके माध्यम से आप मन कि बात कह सकते हो, नाराज़गी ज़ाहिर कर सकते हो, विरोध के स्वर बुलंद कर सकते हो। दोस्त से भी सच बोलने का साहस नहीं है तो फिर इस धरती पर नपुसंकों की भीड़ बढ़ाने के अतिरिक्त तुम्हारा कोई और योगदान नहीं है। अगर यहाँ हर शख्स बढ़िया है तो फिर इस मुल्क को विपक्ष, कार्टूनिस्ट और व्यंग्यकार की ज़रूरत ही नहीं है।

000

लघुकथा

इतिहास

डॉ. वीरेंद्र कुमार भारद्वाज

"शेर को किसने और कब पकड़ा था?"

"भरत राजा ने, जब वे बालक ही थे।" शिक्षक के प्रश्न का बच्चों ने उत्तर दिया।

"सर ! सर ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ ?" एक गरीब-सा बच्चा हाथ उठाए था।

"हाँ बोलो, क्या कहना चाहते हो?" शिक्षक ने आज्ञा दी।

"भरत ने तो पकड़ा ही, मेरे बापू ने तो मार भी डाला था। वह उस समय चौदह साल के ही थे।" बच्चे की इस बात पर सभी तगड़े झटके में हिल गए थे।

"क्या कहना चाहते हो, स्पष्ट कहो ?" शिक्षक भी संशय दूर करना चाहते थे।

"जंगल में लकड़ी काटते वक्त सामने एक शेर आ गया। बस क्या था, ज्यों ही बापू पर पंजा मारना चाहा, उस पर दी कुल्हाड़ी, पंजा अलग। दूसरे पंजे को भी इसी प्रकार काट डाला। फिर तो मार कुल्हाड़ी, मार कुल्हाड़ी के जान ही निकाल दी। हाँ, उनका भी एक हाथ ग़ायब हो गया था।" शिक्षक और छात्र डर-भय की काँपती आँखों से उसे देख-सुन रहे थे। खुद को कुछ काबू में कर शिक्षक बोले, "नाम क्या है तुम्हारे बापू का?"

"जी पहले गंगू था, अब कुछ लोग शेरमरवा तो कुछ लोग हथकट्टा कहते हैं।"

शिक्षक तो शून्य में डूब गए। पर, उनके सामने एक चुनौती खड़ी हो गई- 'सच है इतिहास में ये लोग क्यों नहीं आते?'

000

डॉ. वीरेंद्र कुमार भारद्वाज,
द्वारा- धर्मेंद्र सिंह, आई. ओ. सी. रोड, प्रगति नगर, सिपारा, पटना
मोबाइल- 9334884520,
ईमेल- writervirendrabhardwaj@gmail.com

कलकत्ता उर्फ़ कोलकाता

पल्लवी त्रिवेदी

एकला चलो रे

घुमक्कड़ी की तलब एक ऐसी तलब है कि एक यात्रा ख़त्म होती नहीं कि कैलेंडर में आगे के महीनों की छुट्टियों पर नज़र घूमने लगती है। एक ऐसी हार्मलेस तलब जो जिस आदमी को लग जाए उसका जीवन बदल दे। दस पैसे ख़र्च करके सौ पैसे की समृद्धि लाने वाली शै है घुमक्कड़ी। तो इस तलब के मारे हम अक्टूबर में नवम्बर के महीने को खोले बैठे थे सरकारी कैलेंडर में और तीन छुट्टियाँ लगातार देखकर आँखें चमक उठीं। बस दो दिन की छुट्टी ले लूँ तो पाँच दिन में कहीं घूमने जाया जा सकता है।

पर कहाँ?

पिछले दो साल से लगातार परिवार और दोस्तों के साथ घूमने जा रही थी तो इस बार पहले से ही तय था कि यह एक सोलो ट्रिप होगी। आठ नवम्बर से बारह नवम्बर, बस पाँच ही दिन हाथ में हैं, तो लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि ऐसी जगह चुनी जाए जहाँ जाने में वक्त ज़ाया न हो, जो अन-देखी हो, जो ट्रांसपोर्ट के लिहाज़ से भी बेहतर हो और लड़कियों के हिसाब से सुरक्षित भी। तो अनदेखी जगहों को दिमाग़ में सोचते–सोचते एकदम से कौंधा 'कलकत्ता'। गुरुदेव, शरद बाबू, सत्यजित रे, रितुपर्णो घोष और मदर टेरेसा का कलकत्ता, बाउल, रवीन्द्र संगीत, तांत, काथा का कलकत्ता, मिष्टी दोई, सोन्देश और रोशोगुल्ला का कलकत्ता, हुगली और हावड़ा ब्रिज का कलकत्ता।

कलकत्ता के साथ ही अपनी पुरानी विशलिस्ट से निकल कर आया 'सुन्दरबन'।

अहा परफेक्ट– दो दिन कलकत्ता और दो दिन सुंदर-बन नेशनल पार्क के डेल्टा में सफारी। इससे बेहतर क्या हो सकता है। उसी वक्त फ्लाईट की आने जाने की टिकिट्स बुक करवाईं गईं और होटल भी कलकत्ता और सुन्दरबन में बुक करवा लिए गए। दोस्तों के साथ सारी ट्रिप अनप्लांड करती आई हूँ। लेकिन अकेले जा रही हूँ तो सब प्लान्ड रहे तो बेहतर है। नवम्बर का मौसम भी सबसे खुशनुमा मौसम है कलकत्ता घूमने के लिए। हलकी सर्दी की आमद और बदन पर मखमली धूप का स्पर्श। सिटी ऑफ जॉय को एन्जॉय करने के लिए सबसे सुंदर वक्त बस महीने भर बाद ही आने वाला था।

पहला दिन (बुलबुल के आने की आहट)

दोपहर दो बजे हवाई-जहाज़ कलकत्ता के आसमान पर अपनी आमद दर्ज करा चुका था और मैं देख रही थी विंडो से कि गहरे काले घने बंजारे बादलों का पूरा कुनबा कलकत्ता शहर के ऊपर डेरा जमाये हुए था। हवाई-जहाज से बादल सुंदर दिखते हैं। 'चलो अच्छा है, मौसम सुहाना होगा और धूप में तेज़ी भी नहीं होगी' मैंने मन ही मन सोचा। कलकत्ता एयरपोर्ट पर उतरते ही देखा कि रिमझिम बारिश हो रही थी। कूल ...मज़ा आएगा। नवम्बर में बारिश देखना भी एक आह्लाद भरे कौतुक की तरह है।

लेकिन उतरते ही यह कौतुक सदमे में बदल गया। पता चला कि बुलबुल नाम का साइक्लोन भी नवम्बर के सुहाने मौसम में कलकत्ते की सैर को आ पहुँचा है। यह रिमझिम बारिश इसके आने की सूचना लेकर आये कारिंदे मात्र हैं, तूफ़ान साहब शाम तक कलकत्ता पधारेंगे। दो दिन लगातार भारी बारिश और तूफ़ान की चेतावनी मौसम विभाग जारी कर चुका है। माथे पर उभर आईं चिंता की दो लकीरों को इस आशाभरी योजना के साथ मैंने मिटाया कि 'कोई नहीं। बीच

पल्लवी त्रिवेदी
एफ़ - 6 / 16
चार इमली, भोपाल, मध्यप्रदेश 462001
मोबाइल- 9425077766
ईमेल- trivedipallavi2k@gmail.com

बीच में जब बारिश रुकेगी तब खुले में घूमेंगे और बाकी टाइम म्यूजियम और इंडोर जगहों को देखा जाएगा। परसों सुंदरबन चले जाएँगे और जब 11 तारीख को सुन्दरबन से लौटेंगे तब तक बुलबुल उड़ चुका होगा और तब मज़े से बचा हुआ कलकत्ता घूमा जाएगा।' मगर शाम होते होते सुंदरबन से फ़ोन आ गया कि तूफ़ान के कारण सारी बुकिंग्स और सफारी रद्द कर दी गई हैं। आपका पैसा आपके अकाउंट में पहुँचा दिया जाएगा।

लो ..सुंदरबन भी गया। चिंता की दो लकीरें अपने साथ दो लकीरें और लाकर माथे पर विराजमान हो गईं। शाम छह बजे होटल की वॉल साइज़ खिड़की से बाहर नज़र डाली तो बाहर बारिश तेज़ हो गई थी और पेड़ों की तेज़ हिलती हुई शाखें बता रहीं थीं कि तूफ़ान भी शहर का मेहमाँ हो चुका है। क्या किया जाए ऐसी तूफ़ानी रात में ? तभी साहित्यकार और दोस्त अलका सरावगी जी का संकट मोचक फ़ोन आ गया। वो डिनर के लिए बुला रहीं थीं। वाह ..आज की शाम तो बढ़िया गुज़रेगी। कल का कल से देखा जाएगा। और वही हुआ। अलका जी के साथ मटर के बढ़िया परौंठे खाते हुए उनसे ढेर सारी बातें हुईं और जब देर रात मैं होटल वापस लौटी तो तूफ़ान मुझ पर बे-असर था। क्योंकि इस मौसम में मैं एक बेहतरीन शाम गुज़ार के आ चुकी थी।

दूसरा दिन (एक लड़की भीगी-भागी सी)

सुबह आठ बजे आँख खुली और उठते ही सबसे पहले एक चमत्कार की उम्मीद में खिड़की के बाहर नज़र डाली। शायद रात भर में बुलबुल उड़ गया हो, शायद एक सुनहरा दिन मेरे स्वागत के लिए मुस्कुराता हुआ खड़ा हो। मगर कोई चमत्कार नहीं हुआ। सुबह का रंग गहरा सलेटी था और बारिश इतनी तेज़ थी मानों विशालकाय बुलबुल समन्दर में डुबकी लगाकर आने के बाद अपने पंख कलकत्ता के ऊपर झटक रहा हो। सूरज की किरणों पर बादलों का अभेद पहरा था और हवा इतनी तेज़ मानों पूरे शहर को उड़ा ले जाएगी।

मन उदास हो गया। अब क्या करूँगी ? न कलकत्ता घूम सकती और सुन्दरबन भी

कैंसिल हो गया है। आना ही बेकार हुआ। अपनी बदकिस्मती पर चिढ़ आने लगी।

'बुलबुल भाई ...तुम दो तीन दिन बाद आ जाते तो हम ट्राम में बैठ चेतना पारीक को याद कर लेते, कलकत्ते की सड़कों पर भटक लेते, हावड़ा ब्रिज पर अपने फोटो खींच लेते, सुहानी धूप में विक्टोरिया मेमोरियल पर सुबह गुज़ार लेते ! बुलबुल कहीं का...अभी आना था इस दुष्ट को।'

चलो... अभी तो कॉफ़ी पीकर नाश्ता करते हैं। दो घंटे बाद देखा जाएगा कि क्या करना है।

यह मन भी ना, बहुत प्यारी चीज़ है। जितनी जल्दी उदास हो बैठता है, इसे बस थोड़ा थपक दो, थोड़ा सहला दो तो फिर से चहकने लगता है।

चल रे मेरे मनवा... दुखी न हो। अब एक छाता खरीदेंगे और भीगते-भीगते पार्क स्ट्रीट में घूमेंगे, विक्टोरिया मेमोरियल भी देखेंगे और इंडियन म्यूज़ियम भी देखेंगे।

फिर क्या था ? बुलबुल तेज़ बारिश और हवा लेकर कोलकाता में भटकता रहा और हम एक छाता लेकर निकल लिए पैदल भटकने। इसी बारिश में न्यू मार्केट, विक्टोरिया मेमोरियल और इंडियन म्यूज़ियम देखे। कितना सुंदर है विक्टोरिया मेमोरियल। ब्रिटिश स्थापत्य कला की धवलता और भव्यता का एतिहासिक स्मारक। बड़े-बड़े हरे लॉनों और खूबसूरत तालाबों के बीच बना यह मेमोरियल अलसाती धूप में सारा दिन बिताने लायक है। इन्डियन म्यूज़ियम से बड़ा म्यूज़ियम मैंने नहीं देखा। इसकी सैर करना ऐसा है जैसे टाइम मशीन में बैठकर जीवों की उत्पत्ति से लेकर अब तक दुनिया के जैविक, वानस्पतिक इतिहास से आज तक का सफ़र तय कर लिया हो। इसे भरपूर समय लेकर देखना चाहिए।

एक फेमस रेस्टॉरेंट 'आहेली' में बंगाली थाली खाई। हाँलाकि कीमत बहुत ज़्यादा थी। टैक्स जोड़कर २१०० रुपये की पड़ी। सोचा कि कीमत अच्छी है तो थाली भी बेहतरीन होगी। पर ठगी है विशुद्ध। थाली में चार सब्ज़ियाँ, एक दाल, चावल, दही, भटूरे और मात्र एक मिठाई रसमलाई थी। पाँच सौ रुपये से एक पैसा ज़्यादा नहीं बनता था।

रास्ते भर तेज़ हवा और छाते में संघर्ष चलता रहा। छाते को उड़ने से बचाते हुए आधे से ज़्यादा तो हम भीग ही गए। खिलखिलाते मन में गाना चलता रहा-

सर भीगा है, तन गीला है

इसका कोई पेंच भी ढीला है।

वैसे पेंच ढीला हो तो सही रहता है। तनाव नहीं रहता। प्लान की हुई यात्रा अन-प्लांड हो जाए तो सरप्राइज़ हो जाती है। हमारी यात्राओं को किस्मत ही प्लान करेगी, यह तय हो गया था। शाम जब होटल में लौटे तो यह नहीं पता था कि कल क्या किया जाए। लेकिन किस्मत को ही जब प्लान करना है तो हमें क्या फिकर। शाम तक छोटी बहन की दोस्त ऋतु का फ़ोन आ गया –

'दीदी ..मैं पानागढ़ में आर्मी बेस में रहती हूँ। शान्तिनिकेतन यहाँ से करीब है। आप यहाँ आ जाइए। शान्तिनिकेतन घूमने।'

मैंने तत्काल स्वीकृति की मोहर लगाई। अब मन से सुंदरबन न घूम पाने का मलाल जा चुका था और गुरुदेव की भूमि शान्तिनिकेतन को छूकर आने का उत्साह जाग गया था। रात 8 बजे की बस पकड़कर अगले तीन घंटे बाद मैं पानागढ़ की आर्मी मेस में रात गुज़ार रही थी।

कहाँ तो सिर्फ अनदेखी जगह की यात्रा प्लान करके चली थी और अब एक अनसुनी जगह पर दो रातें गुज़ारने जा रही हूँ। वाह री किस्मत।

तीसरा दिन (गुरुदेव की चौखट, बाउल और हाट बाज़ार)

आज की सुबह बेहद खूबसूरत थी। ख़ालिस नवम्बरिया सुबह। चेहरे को चूमती मीठी धूप वाली सुबह। आज का सारा दिन शान्तिनिकेतन के नाम होने वाला है। संगीत, साहित्य से जिनको ज़रा भी लगाव है, शान्तिनिकेतन उनके लिए मक्का से कम हरगिज़ नहीं। टैगोर के घर जा रही हूँ मैं, यह सोचने मात्र से सिहरन हो रही थी। १७०० रुपये में पानागढ़ से टैक्सी हुई जो शान्तिनिकेतन ले जाएगी और वापस छोड़ेगी। उल्लसित मन से मैं सुबह १२ बजे शान्तिनिकेतन पहुँची। वहाँ पहुँचते ही भारी मात्रा में जगह-जगह पुलिस बल दिखाई दिया। बड़ी सुरक्षा है इस स्थान की ... पहला विचार यही कौंधा।

'आज राष्ट्रपति महोदय शान्तिनिकेतन भ्रमण के लिए आ रहे हैं जिसके कारण आज और कल शान्तिनिकेतन आम सैलानियों के लिए बंद रहेगा।'

टिकिट काउन्टर पर जाते ही यह सूचना वज्र की तरह हृदय पर गिरी।

'क्या ...शान्तिनिकेतन बंद है ? नहीं जा सकेंगे ?' मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। यह सच नहीं हो सकता।

पर यही सच था। इस बार शायद किस्मत पूरी तरह फिरकी लेने के मूड में थी।

दस मिनिट तो माथा पकड़कर वहीं बैठी रही। अब सचमुच मूड बेहद ख़राब हो गया था। अब क्या करूँ ? पूरा दिन पड़ा है। दस मिनिट बाद मन को फिर समझाया और सोचा कि गुरुदेव का घर नहीं तो उनका शहर ही घूम लिए जाए। फिर आसपास के कुछ स्थल शिल्प ग्राम और डियर पार्क देखे। शिल्प ग्राम में बाउल गाते एक कलाकार के गीत पर नृत्य किया। एक मीठे गले के लोक गायक के सामने बैठकर एकमात्र श्रोता के रूप में 'एकला चलो रे' सुना। डियर पार्क में कैमरा उठाकर इस मकसद से घूमी कि शायद पश्चिम बंगाल में पायी जाने वाली खूबसूरत चिड़िया डॉलर बर्ड मिल जाए तो ट्रिप सार्थक हो जाए। मगर मैना, ट्री पाई और वुड पैकर के

अलावा कोई नया परिंदा नहीं दिखा। लौटते हुए इतवार को लगने वाली स्थानीय कारीगरों की हाट में चली गई। जहाँ लिनेन और खेस की साड़ियाँ, टेराकोटा की ज्वेलरी और हस्तशिल्प के अन्य सामान खरीदे। अब बढ़िया लग रहा था। एक स्थानीय रेस्तौरेंट में खाना खाने गई तो मैंने पूछा कि वेज खाने में क्या-क्या मिलेगा ?

उसने पूछा "वेज या प्योर वेज ?"

मैंने कहा "प्योर वेज"

तब सिर्फ उबली दाल और ज़ीरा आलू की सब्ज़ी के साथ चावल आया। वेज भोजन में मछली भी शामिल होती है यहाँ।

शाम के चार बजे शान्तिनिकेतन को दुबारा आने का वादा कर डूबते सूरज की नारंगी, गुलाबी आभा में लिपटे ग्रामीण बंगाल को देखते हुए वापस पानागढ़ की ओर चल दी।

यूँ न कहूँगी कि कोई अफ़सोस नहीं था लेकिन मन ने होनी को स्वीकार कर लिया था। रात ऋतु के घर डिनर था और ऋतु, उसके पति शशि और दो प्यारी बच्चियों के साथ खाते पीते और गाने गाते कैसे रात हुई, पता नहीं चला। इस एकल यात्रा के पाँच दिनों में से तीन दिन बीत चुके थे।

चौथा दिन (गरियाहाट, शोमेन दा और सोन्देश)

आज वापस कलकत्ता जाना और वहीं घूमना तय किया है। मौसम विभाग बता रहा है कि कलकत्ता में बढ़िया धूप खिली हुई है।

सुबह दस बजे उस पानागढ़ के हाइवे पर अपना लगेज लेकर खड़ी मैं कलकत्ता जाने वाली बस का इंतज़ार कर रही थी जिसका कल से पहले कभी नाम भी न सुना था। यह है मज़ा धार के हवाले खुद को कर देने का। जब अपने बनाये प्लान फेल हो जाएँ तो किस्मत की योजनाओं को खुशी-खुशी स्वीकार कर लेना चाहिए। किस्मत के प्लान फुल ऑफ सरप्राइज़ेज़ हैं। नए अनुभव, नई जगहें, नए दोस्त। आँखों और दिमाग़ को नएपन की छुअन से तरोताज़ा कर देना सुखद है। पानागढ़ से कलकत्ता के रास्ते में बर्दवान आया जहाँ पहली बार झालमुड़ी लेकर खाई। भेलपूरी की सूखी और स्वादिष्ट बहन झालमुड़ी।

दोपहर दो बजे तक कलकता आकर मैं होटल आकर सो गई। शाम से शहर घूमने निकला जाएगा।

पाँच बजे शाम मुझे बालीगंज से गरियाहाट जाना था। रोड पर आकर ऊबर से टैक्सी बुक करने लगे। ३४८ रुपये बता रहा था सात किमी के।

तभी सामने सिटी बस आकर रुकी। कंडक्टर गेट से बाहर लटका सवारियों को आमंत्रित कर रहा था।

'गरियाहाट जाएगी क्या बस ?' हमने पूछ लिया।

'जाएगी।'

हम चढ़ गए बस में। खचाखच भरी बस में सामने की लेडीज़ सीट खाली थी। बैठ गए और कंडक्टर से किराया पूछा।

'नौ टका'

'कितना...' हमने अविश्वास में पूछा।

'नाइन रुपया।' उसने हमें गैर बंगाली समझ अंग्रेज़ी में बोला।

हमने दस टके का नोट दिया और टिकिट और एक टका वापस पाया।

३३९ रुपये बचा लिए। कितना मज़ा आ रहा है। रुकती-चलती बस में शहर दर्शन भी हो रहे हैं। पब्लिक ट्रान्सपोर्ट ज़्यादा इस्तेमाल करना चाहिए। जेब और पर्यावरण दोनों के लिए बढ़िया। गरियाघाट बाज़ार बहुत देर तक पैदल-पैदल घूमते रहे। बाज़ार कोई बहुत खास नहीं लगा। घर की ज़रूरतों के सामान

वाला सस्ता सामान्य-सा लेकिन बहुत बड़ा बाज़ार है। चलते-चलते हमने पुचके खाए और इस नतीजे पर पहुँचे कि हमारे भोपाल की फुल्की ज़्यादा स्वादिष्ट है।

अब बारी थी बंगाल की मिठाइयों के रसास्वादन की। बालीगंज की बेस्ट मिठाई शॉप का पता किया और ऑटो के लिए सड़क पर खड़े हो गए। पास से गुज़रते एक सज्जन ने बताया कि दूसरी तरफ से मिलेगा ऑटो। पास ही है बालाराम मलिक की मिठाई शॉप। अगर पैदल जाओगी, तो भी दस मिनिट लगेगा। मैं तो पैदल ही जा रहा हूँ।

'आपको एतराज न हो तो मैं भी पैदल चलूँ आपके साथ ?' मैंने पूछा।

वो तैयार हो गए। और यूँ बारह मिनिट की एक वॉक और वार्ता उनके साथ हुई। उनके दो बेटे हैं और दोनों भारत से बाहर हैं। बेटों के बाहर रहने की तकलीफ बार बार उनकी बातों में आ रही थी।

'कहने को तो दो बेटे हैं पर अब बुढ़ापे में कोई साथ नहीं। मैं अगले साल रिटायर हो रहा हूँ।'

'बढ़िया है ना। आप चले जाया करिए उनके पास।'

'जाते हैं ना हम। जाते रहते हैं। अभी जब बेटे के कंधे की हड्डी टूटी थी तब हम ही गए थे। जब भी उनको काम पड़ता है तो हम जाते हैं।' कहते–कहते उनकी आवाज़ में एक अजीब-सा ठंडा खालीपन आ गया था।

अगर पेरेंट्स और बच्चे दोनों के नज़रिए से देखा जाए तो दोनों अपनी जगह सही हैं। मगर विदेश में रहने वाले बच्चों के अकेले रह गए ज़्यादातर माता-पिता ऐसी ही भावनाओं के साथ जीते हैं।

उनको जब पता चला कि मैं अकेले कलकत्ता घूम रही हूँ तो बहुत आश्चर्य हुआ उन्हें।

'ध्यान से घूमना। रात में अकेले पैदल मत निकलना।' उन्होंने चिंता में कई हिदायतें दे डालीं।

उनका घर पीछे छूट गया था पर मुझे दुकान तक पहुँचाने वे मेरे साथ आगे तक चले आए थे।

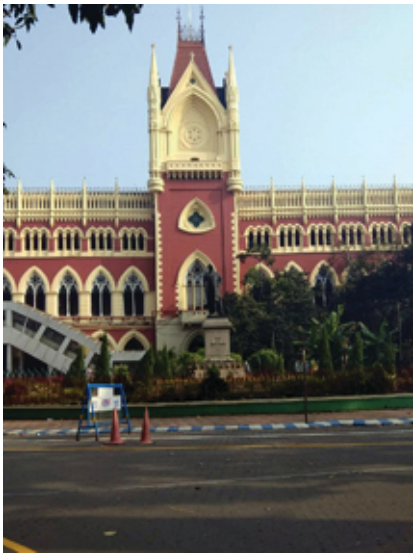

दूर से मिठाई शॉप दिखाई उन्होंने और मैंने शुक्रिया कहते हुए उनका नाम पूछा

'शोमेन विश्वास'

उन्होंने बताया और एक प्यारी-सी पप्पी हवा में ही मुझ तक पहुँचाकर लाड़ भरा आशीर्वाद दिया-

'खुश रहो और अपने माँ-पापा का ख़याल रखना।' आह...फिर से वही टीस।

'जी..आप भी ख़याल रखियेगा अपना।'

मुझे लग रहा था कि काश वो कह दें कि मेरे घर चलो चाय पीने तो मैं उनके घर जाऊँ और उनकी और उनकी पत्नी के साथ बैठकर देर तक उनकी बातें सुनूँ।

शायद यही चाहते है अकेले रह गए वृद्ध। कोई हो जो ख़याल रखे, उनके पास बैठे और उनकी बात सुने, कुछ अपनी बात शेयर करे।

अच्छा लगा शोमेन दा से मिलना। कब कौन अजनबी आपके जीवन के एक छोटे हिस्से का साथी बनेगा,पता नहीं होता। और यात्राओं से बेहतर यह काम कौन कर सकता है भला। अगले दो मिनिट बाद मैं बालाराम मलिक की प्रसिद्ध मिठाई की दुकान पर थी। वहाँ रेस्तराँ नहीं था केवल दुकान थी जहाँ बैठकर नहीं खाया जा सकता था लेकिन मेरे अनुरोध पर काउन्टर बैठे एक बालक ने मुझे हर मिठाई का एक-एक पीस वहीं काउन्टर पर खड़े होकर खाने के लिए देना सहर्ष स्वीकार किया और फिर एक एक करके मैंने छह छेने की मिठाइयाँ खाईं और आधा किलो संदेश पैक करवा लिया।

लौटते हुए होटल जाने के लिए टैक्सी की और उसको बोला कि हावड़ा ब्रिज दिखाते हुए ले जाए। बड़ा सहृदय ड्राइवर था। उसने न केवल हावड़ा ब्रिज बल्कि ईडन गार्डन, रेसकोर्स और रात की रौशनी में जगमगाता विक्टोरिया मेमोरियल भी दिखाया। मन तृप्त हो गया।

पाँचवाँ दिन (डलहौजी रोड, वाटरलू स्ट्रीट और गंगा घाट)

रात को ही सोचकर सोए थे कि सुबह जल्दी उठकर गंगा घाट जाना है। सुबह की गुनगुनी धूप में गंगा में पैर डालकर बैठने का सुख ही अलग होगा। ठंड शुरू हो गई है तो शायद माइग्रेटेड बर्ड्स भी आ गई हों।

नींद बहुत देर से लगी थी। लेकिन ७ बजे उठ गए। कैमरा, मोबाइल और कुछ पैसे जेब में डालकर स्लिपर पहनकर निकल लिए। रोड पर आकर सबसे करीबी घाट का रास्ता पूछा तो बाबू घाट बताया गया। करीब ही था होटल से करीब डेढ़ किमी। पैदल ही चल पड़े सुबह-सुबह का शांत कलकत्ता देखते हुए, वरना कलकत्ता के बारे में सोचते ही भीड़भाड़, शोर शराबे का दृश्य पहले बन जाता है। यह डलहौज़ी इलाका कहलाता है और हमारे होटल की स्ट्रीट वाटरलू स्ट्रीट।

आगे बढ़े तो चौड़ी सड़क क्रॉस करते ही गवर्नर हाउस दिखा। जितना बड़ा गवर्नर नहीं होता,उससे कई गुना बड़े उनके घर होते हैं। यह पूरा सरकारी भवनों वाला इलाका है। बरगद के पेड़ों पर लाल–लाल फल आये हुए हैं अभी। चिड़ियों की भीड़ टूटी पड़ रही है नाश्ता करने। मैना, कौवे और बैबलर ज़्यादा संख्या में नज़र आ रहीं। लेकिन बारबेट और गोल्डन ओरियोल की आवाज़ सुनाई दे रही कहीं पास ही। देखने की कोशिश की मगर विशाल बरगद के पत्तों में कहीं छुपे बैठे होंगे। कौवे तो सारी सड़क घेरे बैठे हैं और अचानक इतनी नीची उड़ान भरते हैं कि लगता है कि बोलूँ-

'अबे, मुँह में ही घुस जाएगा क्या?'

करीब एक किमी तक तो चप्पल चटकाते हुए ब्रिटिशकालीन बड़ी-बड़ी इमारतों से गुज़रते हुए अच्छा लग रहा था। पर जैसे ही

ऑर्डिनेंस फेक्ट्री क्रॉस हुई और जैसे सारा दृश्य ही बदल गया। मानों गुरुदत्त के सिनेमा में किसी मसाला साउथ इंडियन मूवी की रील जुड़ गई हो। यह बाबू घाट के समीप आने की घोषणा थी।

घाट के बाहर सड़क से ही श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ी पड़ रही थी। तिलक लगाए स्त्री पुरुष, सफेद केन में गंगा जल लिए जाते भक्त, सपरिवार मंजन कुल्ला करते, कपड़े बदलते लोग। उफ्फ...कितने लोग। जैसे-तैसे इस भीड़ से गुज़रकर घाट पहुँचे पहली सीढ़ी से आख़िरी सीढ़ी तक रंग-बिरंगे कपड़ों के ऊपर सैकड़ों काले सर नज़र आ रहे थे। घाट पर जगह-जगह फूल, प्रसाद, अगरबत्ती बिछाकर पूजा कर रहे थे लोग। सीढ़ियों से लेकर नदी तक गाद ही गाद। मेरी न तो हिम्मत हुई और न ही इच्छा कि नदी तक जाऊँ। घाट के दाहिने किनारे पर एक स्त्री नहाने के बाद कपड़े बदल रही थी और ठीक उसके बगल में उसकी ओर पीठ किये एक पुरुष मूत्र विसर्जन कर रहा था। हावड़ा ब्रिज बाईं तरफ दिखाई दे रहा था और दाहिनी ओर द विद्यासागर सेतु दिखाई देता था। खूब सारी फैरी लगी थीं घाट पर। नदी के दूसरी ओर बड़ी-बड़ी इमारतें। जून में ही बनारस के घाटों पर भी कुछ वक्त बिताया था। वहाँ भी धार्मिक माहौल था पर घाट इतने बड़े थे कि अपना एकांत खोजा जा सकता था और घाट पर घटते दृश्यों को साक्षी भाव से देखा जा सकता था। यहाँ यह एकांत नहीं पाया जा सकता और भीड़ से खुद को अलग कर पाना भी संभव न था।

घाट से बाहर आये और हावड़ा ब्रिज का पूरा फ़ोटो लेने घाट के फुट ओवर ब्रिज पर चढ़ गए। यहाँ खाली था ब्रिज। सिर्फ एक बन्दा हमारी तरह कैमरा लेकर फ़ोटोग्राफी करने आया था। दस मिनिट ब्रिज से हावड़ा ब्रिज और हुगली के फ़ोटो लेने के बाद मैं वापस होटल की ओर चल पड़ी। लौटते वक्त भीड़-भाड़ से निकलते हुए याद आती रहीं ज्ञानेन्द्रपति की कविता 'ट्राम में एक याद' की पंक्तियाँ–

'देखता हूँ अब के शहर में भीड़ दूनी है
देखता हूँ तुम्हारे आकार के बराबर जगह सूनी है'

दो मिनिट बाद ही शोर मचाता कलकत्ता फिर शांत हो गया। जैसे खुद ही भीड़ से उकताकर इधर चला आया हो। बरगद के पेड़ पर एक हरे परिंदे की उड़ान ने ध्यान खींचा। नज़र घुमाई तो ब्लू हैडेड बारबेट नज़र आया। पत्ती के आकार और पत्ती के ही रंग का यह बारबेट सिर्फ अपने गले के नीले रंग और सर पर चटख लाल रंग से पहचान में आ रहा था। बहुत खुश होकर दो-तीन फ़ोटो लिए।

आगे बढ़े तो एक सफाई कर्मचारी कचरा उठाते हुए भुनभुना रहा था। बड़े ग़ुस्से में मालूम होता था। उसकी ओर चलकर आते दूसरे सफाईकर्मी को देखकर उसका गुस्सा फूट पड़ा-

'ये बिनोद भी चूतिया-पन्ती के काम करता है हमेशा'

'चूतिया आदमी चूतिया-पन्ती के काम नहीं करेगा तो हम लोग करेंगे क्या?'

दूसरे वाले ने यह जानने की भी कोशिश नहीं की कि बिनोद ने आख़िर क्या किया।

पहले वाला भी यह सुनकर खुश हो गया कि बिनोद चूतिया है और वह नहीं है। अब ठीक था। दोनों कचरा समेटते हुए हँस रहे थे।

चलते-चलते वाटरलू स्ट्रीट आ गई थी। सारी स्ट्रीट पर नज़र घुमाई तो इतिहास जगह-जगह अपनी कहानी कह रहा था। इतनी पुराने घर कि उनकी दीवारों के भीतर से बरगद की बड़ी–बड़ी जड़ें झूल रहीं थीं।

ईंट, पेड़ और मनुष्य एक साथ रह रहे थे। सह-जीवन का अच्छा उदाहरण।

कितनी भली और खुशनुमा सुबह थी। कलकत्ता की आख़िरी सुबह।

हासिल-ए-सफ़र

पाँच दिन की छुट्टी लेकर अकेले कलकत्ता घूमने जाना, उसमें भी साइक्लोन के कारण दो दिन ख़राब होना, सुंदरबन सफ़ारी रद्द हो जाना, १६० किमी दूर सफ़र करके शांति निकेतन पहुँचना और उसे भी उस दिन बन्द पाना.... ये सारी बातें किसी भी यात्रा का हासिल हों तो उस यात्रा को कितने स्टार दिए जाएँगे?

मैं देती हूँ पूरे फाइव स्टार।

सारी मुश्किलों और बने हुए प्लान्स के फेल होने के बाद भी इस यात्रा ने इतना समृद्ध किया मुझे जितना शायद योजना के मुताबिक घूमना नहीं कर पाता। मेरे लिए यह यात्रा खुद को एक्सप्लोर करना था।

अगर दो दिन लगातार बारिश न होती तो मैं कैसे जान पाती कि मैं उस बेहद ख़राब मौसम में होटल में बैठ स्पा का आनन्द लेने की बजाय छतरी खरीदकर भीगते हुए शहर में पैदल घूमना पसन्द करती हूँ।

अगर सुंदरबन सफ़ारी जो कि मेरा सपना था कई बरसों से, कैंसिल न होती तो कैसे जान पाती कि अपनी प्रिय चीज़ न मिल पाने का दुख महज पन्द्रह मिनिट का था और तुरन्त दिमाग़ उसका विकल्प ढूँढ़ने लग गया था।

अगर शांतिनिकेतन बन्द न मिलता तो कैसे जानती कि हर नई जगह अद्भुत है और नया शहर, नए लोग, नई संस्कृति को जानना कभी मायूस नहीं करता, भले ही जहाँ आप जाना चाहते थे, वहाँ न पहुँच पाए हैं। ये कैसे जानती कि मुझे कुदरत ने ऐसे मन से नवाज़ा है जो सामने उपस्थित विकल्प पर आनन्दित होना जानता है।

अगर टैक्सी का मोह छोड़, अपना कम्फर्ट ज़ोन छोड़ बसों में सफ़र नहीं करती तो कैसे जान पाती कि असुविधाएँ सिर्फ दूर से ही डराती हैं। जब उनका सामना करो तो वही अच्छा लगने लगता है। परेशानियाँ तभी तक परेशानियाँ हैं, जब तक उनका लुत्फ़ न लिया जाए। अगर सिर्फ खूबसूरत स्थान ही चुन-चुन कर देखती और शहर की तासीर और उसकी आत्मा को समझने गलियों, बाज़ारों और घाटों पर न गई होती तो कैसे जानती कि मुझे सिर्फ खूबसूरत स्थानों में नहीं बल्कि जगहों को ठीक वैसे ही जानने में रुचि है, जैसे वे हैं।

इस एकल यात्रा की राहें खुद के भीतर की ओर जा रहीं थीं। इसने मुझे मज़बूत किया, आत्मविश्वास बढ़ाया, खुद की ताक़त जानने का अवसर दिया और खुद की कंपनी एन्जॉय करने की सुंदरता से परिचित कराया।

इससे ज़्यादा सफल और सार्थक यात्रा कोई हो सकती है क्या भला ?

000

शार्लोट
एक घरेलू मेट्रो सिटी

रेखा भाटिया

एक शहर कब आपको अपनाता है, कब आपका अपना घर बन जाता है; जब वह शहर आपकी रूह में बस जाता है। जब उस शहर के लिबास, विचारों, स्वभाव और व्यक्तित्व को आप स्वयं दिल से अपनाते हैं और वह शहर हमेशा के लिए आपका अपना हो जाता है। आपका घर, जिसके साथ आप अपनी ज़िंदगी बिता सकते हैं। दूसरा होता है सपनों का शहर, जिसकी खूबसूरती, चकाचौंध, पहनावा आकर्षित करता है। जिसमें भविष्य अधिक सुरक्षित और सफल होने के कई सुअवसर महसूस होते हैं। मेरी कहानी में ऐसा कुछ भी नहीं है। रोटी-रोज़ी की ज़रूरत इस शहर में लेकर आई। किस्मत ने तय किया था। न ही यह मेरे सपनों का शहर था, न ही बहुत प्रसिद्ध, जिसका नाम मैंने पहले सुना हो। पर यह कब अपना हो गया, अपना बन गया पता ही नहीं चला।

अमेरिका के नॉर्थ कैरोलाइना स्टेट के मध्य दक्षिण में अप्पलेचन पर्वतमालाओं और पूर्व के समुद्री समतल क्षेत्र के मध्य में पीडमोंट के पठार पर कटाबा नदी के पूर्व में प्रकृति की गोद में मेक्लेनबर्ग काउंटी में बसा शार्लोट राज्य का सबसे बड़ा और सघन आबादी वाला शहर है, यह शहर नॉर्थ कैरोलाइना और साउथ कैरोलाइना राज्यों की सीमा पर बसा है। यहाँ की जलवायु और रहन-सहन मुझे मेरे शहर इंदौर की याद दिलाता है। यहाँ की जलवायु बहुत सुहानी है। कुछ हफ्तों की गर्मी और शीत ऋतु के साथ यहाँ चारों ऋतुएँ देखने को मिलती हैं। मध्य में होने ही वजह से पहाड़ों की और समुद्र की जलवायु दोनों का शार्लोट की जलवायु पर मिला जुला प्रभाव पड़ता है। मौसम बदलने के साथ यहाँ थोड़े-थोड़े दिनों में वर्षा होती है और यह शहर मेट्रो शहर होकर भी बहुत हरा-भरा रहता है। यहाँ शीत ऋतु में दो-तीन बार बर्फ भी पड़ जाती है। इस शहर की ख़ासियत है, सुहाना मौसम, बड़े शहर का वातावरण, आस-पास कई उप नगर, कई फारेस्ट। तीस-चालीस मिनटों की दूरी पर खेत-खलिहान, मीलों फैली हरियाली, ग्रामीण क्षेत्र, प्लांटेशन, झीलें, हाइकिंग, ट्रैकिंग की कई जगहें हैं। पठार पर बसा होने की वजह से यह शहर समतल ना होकर घुमावदार सड़कों और उतार-चढ़ाई वाला शहर है। यहाँ से पहाड़ दो घंटों की दूरी पर और समुद्र किनारा तीन घंटे पर ! यहाँ की दो बड़ी झीले लेक नार्मन और लेक वैली मनुष्य द्वारा बनाई गई कुछ बड़ी झीलों में से हैं। बोटिंग, फिशिंग, स्विमिंग, काया किंग की सुविधा है, बोट पर रेस्टोरेंट्स भी हैं।

अमेरिका में लोग लाँग ड्राइव करना और घूमना बहुत पसंद करते हैं। वीकेंड पर समुद्र किनारे छुट्टियाँ मनाना लोगों को बहुत भाता है। शहर में भी झीलों किनारे लोग आंनद उठाते हैं। अमेरिका के सबसे अधिक खूबसूरत हाईवे में से एक ब्लू रिज़ पार्कवे शार्लोट से दो घंटे दूरी पर है। शार्लोट से आप एक ही दिन में पहाड़ों की सैर कर वापस आ सकते हैं, यहाँ गर्मियों में झरनों की सैर और हाई किंग बहुत प्रसिद्ध है। पतझड़ में जब पत्ते रंग बदलते हैं तब सितम्बर से लेकर

रेखा भाटिया
9305 Linden tree lane,
Charlotte,NC-28277
मोबाइल- 704.975.4898
ईमेल - rekhabhatia@hotmail.com

नवम्बर तक हर वीकेंड आप जाकर पहाड़ों पर हरे, पीले, लाल, बैंगनी, कत्थई, नारंगी रंगों के पत्तों का लुत्फ़ ले सकते हो, जो विश्व प्रसिद्ध है। पतझड़ में शार्लोट शहर में भी पत्ते रंग बदलते हैं और बसंत में रंग-बिरंगे फूलों से लदे वृक्ष प्राकृतिक सुंदरता में चार चाँद लगा देते हैं। सैर-सपाटे के तमाम सुअवसर प्रदान करनेवाले शहर शार्लोट को "क्वीन सिटी" उपनाम से पुकारा जाता है और रानी का मुकुट चिह्न इस शहर की पहचान है।

कई शहरों के पास बड़ी बहती नदी, पोर्ट्स, समुद्र किनारे होते हैं। शार्लोट के पास पेड़ हैं, इसे पेड़ों का शहर भी कहा जाता है। वर्तमान में छियालीस प्रतिशत शहर का हिस्सा पेड़ों से ढका है और दो हज़ार पचास तक इसे पचास प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य है। शार्लोट शहर का पिछले तीस सालों में बहुत अधिक विकास हुआ है, कभी भी इस शहर को एक बड़े विकसित शहर के रूप में प्लान नहीं किया गया था। विकास की तेज़ गति के बाद भी हरियाली शार्लोट की पहचान है और यहाँ के सुहाने मौसम को बहुत खुशगवार बनाती है। एक बड़े शहर में वातावरण में, सड़कों पर, घर के आँगन में, गली-मोहल्लों में हिरणों के झुण्ड अक्सर दिखाई देते हैं साथ ही विभिन्न प्रजातियों के चहचहाते पछीं, खरगोश, रैकून, कछुए, बत्तख, गूस (हंस) जैसे कई वन्य जीव यहाँ बसर करते हैं और दृष्टिगोचर होते हैं। खुले नील आकाश में विभिन्न पंछियों के झुण्ड यहाँ भीड़-भड़ाके में भी जीवन में सुकून देते हैं। शहर में रहकर भी प्रकृति की गोद का आनंद महसूस किया जा सकता है।

शार्लोट शहर बहुत नया शहर है लेकिन इसकी जड़ें अमरीकी क्रांति से बहुत पहले जमनी शुरू हो गईं। इतिहास के अनुसार सन १५६७ में अमेरिका के मूल इंडियन कटाबा कबीले के आदिवासी कटाबा नदी के आसपास यहाँ आकर बसे। कटाबा का अर्थ होता है "नदी के लोग"। सन १७५९ तक कबीले के आधे से अधिक आदिवासी स्माल पॉक्स बीमारी से मारे गए और उनकी जनसंख्या बहुत घट गई। यूरोप के विभिन्न

देशों से पलायन कर प्रवासी सेटलर्स अमेरिका में बस रहे थे। सन १७५० में ग्रेट वेगन रोड से आगे चलते फिलाडेल्फ़िया से उत्तरी आयरलैंड के यूरोपियन प्रवासी और कुछ जर्मन प्रवासी इस क्षेत्र में आये और यहाँ बसने लगे। १७६३ में ब्रिटिश कॉलोनी के साथ संधि हुई और कटाबा कबीले के लोग कटाबा नदी के पास १,४४,००० एकड़ ज़मीन पर चले गए। यूरोपियन कोलोनियन जिनमें अमेरिका के एक पूर्व राष्ट्रपति जेम्स पोल्क के एक पूर्वज भी थे जिन्होंने विवाह के बाद अपना घर अमरीकी कबीलों के दो व्यापारिक रास्तों पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण के मिलने के स्थान पर बनवाया। जब शहर बसा तब इन्हीं दो मुख्य रास्तों को ट्रेड स्ट्रीट और ट्रायन स्ट्रीट नाम दिया गया और यहीं से शुरू होकर इस शहर की डाउन टाउन की नींव पड़ी और यह

शहर आगे विकसित होने लगा। सन १७६८ में इस शहर की स्थापना हुई। किंग जार्ज थर्ड की रानी और जर्मनी की राजकुमारी शार्लोट के सम्मान में इस शहर का नाम शार्लोट रखा गया और काउंटी को जर्मन राजकुमारी के गृहगाँव के नाम पर मैक्लेनबर्ग नाम दिया गया। आज क्वीन सिटी शार्लोट सही मायनों में नॉर्थ कैरोलाइना की बेंकिंग क्वीन है। सन १७७५ में यहाँ के स्थानीय नेताओं ने ब्रिटिश रूल से आज़ादी की घोषणा कर दी जो सचमुच की आज़ादी की घोषणा नहीं थी लेकिन बाद में यही घोषणा उन चंद घोषणाओं में से थी जिनकी वजह से अमरीकी क्रांति की शुरूआत हुई।

इस शहर में शुरू में पाँच-छह लॉग हॉउस थे। इसकी किस्मत बदली १७९९ में, अचानक बारह वर्षीय एक लड़के कॉनरेड रीड को नाले किनारे सतरह पौंड की एक चमकीली चट्टान मिली, जिसका उपयोग उसके माता-पिता द्वार पर सीढ़ी की तरह करते थे। एक दिन एक व्यापारी की नज़र पड़ी, उसने साढ़े तीन डॉलर में उस चट्टान को ख़रीद लिया और इतिहास बदल गया, शार्लोट पैसे के नक़्शे पर अंकित हो गया। अमरीकी ज़मीन पर पहली बार सोने की खोज हुई। रीड गोल्ड माईन देश की पहली सोने की खदान थी, जो १९१४ तक अस्तित्व में रही, आज वह म्यूज़ियम में संरक्षित है। इस क्षेत्र में कई स्थानों पर सोने के खनन का काम होने लगा। अमेरिका में गृह युद्ध के दौरान शार्लोट के डाउनटाउन में १८३७ की बनी सोने की टकसाल को कॉन्फेडरेट के मुख्यालय और अस्पताल में बदल दिया गया। वर्तमान में उसे रैंडोल्फ रोड पर पुर्नस्थापित कर मिंट म्यूज़ियम में बदल दिया गया, जो आज शार्लोट का कला, संस्कृति का केंद्र है। वहाँ पर अमरीकी, मूल अमरीकी, अफ्रीकन, यूरोपियन, एशिया के कलाकारों की विभिन्न विधाओं में बनाईं गई कलाकृतियों का संग्रह है।

गृह युद्ध के असर से शार्लोट जल्द ही शक्तिशाली बन उबर आया। अश्वेत अब ग़ुलाम नहीं थे, सभी को अधिकार मिल चुके

थे। उद्योगीकरण और शहरीकरण के दौर में यहाँ रेल लाइनों के जंक्शन थे अब कॉटन मीलों की, फ़ैक्टरीज़ की स्थापना के साथ शार्लोट आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने लगा। शार्लोट कॉटन के कपड़े का व्यापारिक केंद्र बन गया। उस दौर के बदलाव की पुरस्कृत प्रदर्शनियाँ लेवाइन म्यूज़ियम ऑफ़ न्यू सॉउथ में प्रदर्शित है, जिसे देखा जा सकता है। आज शार्लोट के कई स्थानों पर और आसपास के उप नगरों में ईंटों से बनी पुरानी कॉटन की मिलें रेस्टोरेंट, शॉप्स और मनोरंजन की जगहों में बदल गई हैं। छोटे-छोटे व्यापार यहाँ से शुरू होकर बड़ी कंपनियाँ, बड़े उद्योगों में बदल गए जैसे बेल्क, लोस स्टिल और हार्ड वेयर, हेरिस टिटर, लेंस क्रेकर, फ़ैमिली डॉलर, बोजेंगल चिकेन, ड्यूक पॉवर कंपनी जो देश की सबसे बड़ी एनर्जी कंपनियों में से है। कुछ स्थानीय बैंक थे शार्लोट में और अस्सी के दशक में एक बैंकर हुघ मैक्कॉल ने राज्य के बाहर से एक बैंक खरीदा और नब्बे के दशक में सेनफ्रांसिस्को के बैंक ऑफ़ अमेरिका को ख़रीदा और नेशनल बैंक से साथ मिला दिया जो पूर्व से पश्चिम छोर का पहला बड़ा बैंक ऑफ़ अमेरिका जायंट बैंक बना, जिसका हेड क्वार्टर शार्लोट बना। फर्स्ट यूनियन बैंक बना वाकोविया बैंक, बाद में वेल्स फॉर्गो बैंक जिसका पूर्वी छोर का हेड क्वार्टर शार्लोट बनाया। आज शार्लोट न्यूयार्क के बाद अमेरिका का दूसरा बड़ा बैंकिंग सिटी है और नॉर्थ कैरोलाइना की आर्थिक राजधानी है। पाँच सौ फार्च्यून में से छह आज शार्लोट में हैं। नब्बे के दशक से लेकर दो हज़ार बीस तक शार्लोट शहर और उसके डाउनटाउन में तेज़ी से विकास और निर्माण हुआ। शार्लोट डाउनटाउन में बैंक ऑफ़ अमेरिका कार्पोरेट सेंटर, ड्यूक एनर्जी, ट्रुइस्ट, वेल्स फार्गो सेंटर और अन्य कई बड़ी इमारतें नॉर्थ कैरोलाइना राज्य की सबसे ऊँची इमारतें हैं, कई ऊँचे होटल्स हैं ठहरने के लिए। यहाँ की स्कायलाइन दिन में, रात में और आसमान से बहुत सुन्दर दिखती है। रात में जब चमचमाती गगनचुम्बी इमारतें विभिन्न रंगों रोशनियों में नहातीं हैं, मानों इस शहर की नए युग की

रोशन सफलता की कहानी कह रही हों। फाइनेंस के साथ कई अन्य महत्त्वपूर्ण कंपनियाँ जिनमें तकनीकी, खाद्य, कोकोकोला बॉटलिंग, पैकेजिंग, स्टील प्रोडक्शन, रासायनिक कंपनियाँ, ट्रकिंग इंडस्ट्री और माइक्रोसॉफ्ट, सोनिक ऑटोमोबाइल, हनीवेल, सेंटिन, कोम्पस कंप्यूटर कंपनी जैसी अन्य कई कंपनियाँ हैं।

डाउनटाउन में दुनिया के सभी तरह के व्यंजनों के उच्च दर्जे के रेस्टोरेंट्स हैं, जहाँ दुनियाभर के स्वाद का लुत्फ़ उठया जा सकता है। राज्य की आर्थिक राजधानी होने के कारण यहाँ युवाओं की संख्या बहुतायत है। कई पब, बार और अन्य मनोरंजन के स्थान हैं। युवाओं में मशहूर नापा वैली की तरफ शार्लोट के आसपास के ग्रामीण इलाकों में वाइनरी के कई स्थान जहाँ अंगूर की खेती कर

ताज़ी शराब बनाई जाती है और टेस्ट कराई जाती है। रात ठहर कर प्रकृति के करीब आप वीकेंड का मज़ा ले सकते हैं। ताज़ी बियर और मदिरा बनाने के पचास स्थान शार्लोट में हैं। नॉर्थ कैरोलाइना एक रूढ़िवादी राज्य है लेकिन कामगार युवाओं की संख्या ने शार्लोट को आधुनिकता का जामा पहना दिया है। शॉपिंग के लिए डाउनटाउन में कई छोटी-बड़ी शॉप्स हैं, शहर में दो बड़े ऑउटलेट मॉल और तीन बड़े मॉल हैं, शॉपिंग के लिए यह स्थान बहुत लोकप्रिय है। जो लोग रेसट्रेक का अनुसरण करते हैं उनके लिए नासकार हॉल ऑफ़ फेम म्यूज़ियम है, यहाँ कई ऐतिहासिक रेसिंग कारें हैं और एक बड़ा थिएटर है। शहर के उत्तर में प्रसिद्ध लौस मोटर स्पीड वे स्टेडियम है, यहाँ कारों की कई रेस आयोजित होती हैं।

स्वच्छ और ऊर्जा से भरे हुए इस शहर में कई कला संग्रहालय हैं। बेचटलर संग्राहलय में बीसवीं सदी के आधुनिक कलाकारों की कलाकृतियाँ संग्रहित हैं और देश में यह अपने तरह का दूसरा है। डिस्कवरी प्लेस में हर वर्ग के लिए विज्ञान का संग्राहलय और गतिविधियों के कई अवसर है, बड़ा आईमैक्स थिएटर है, एक्वेरियम है। शार्लोट का मुख्य पुस्तकालय, ट्रेन स्टेशन, लाइट रेल लेन, बस स्टेशन, सिटी सेंटर, कोर्ट, बेल्क ब्लू मेंथाल हाल और कई पार्क डाउनटाउन में हैं। यहाँ ट्राम बसें चलती हैं। कई पार्क और थिएटर इस शहर में हैं।

अब बात करें रोमांच की। शार्लोट में कई खेल टीमें हैं जिनमें एनऍफ़ ऐल की पैंथर्स फुटबॉल टीम, एनबीए की हार्नेट नेस्ट बास्केट बॉल टीम, चेकर्स आईस हॉकी टीम, शार्लोट नाईट बेसबॉल टीम प्रमुख्य हैं। यह अमेरिका के टॉप स्पोर्ट्स सिटी में से एक है। बैंक ऑफ़ अमेरिका स्टेडियम और स्पेक्ट्रम सेंटर भी डाउनटाउन में हैं और आये दिन कई खेल सीरीज़ आयोजित होते हैं। केरोविंड्स नॉर्थ कैरोलाइना का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध एम्यूज़मेंट और वॉटर पार्क शार्लोट के मुख्य आकर्षणों में से एक है। यहाँ रोलर कोस्टर राइड्स और वॉटर स्पोर्ट्स के साथ हैलोवीन

पर घोस्ट टाउन और सर्दियों में विंटर विलेज का लुफ्त उठाया जा सकता है। वाइट वॉटर सेंटर शार्लोट से तीस मिनट दूर हाईवे ८५ पर है, इसमें राफ्टिंग, कायाकिंग, ज़िप लाइनिंग, आइस स्केटिंग होती है। उत्तर में ही ७५० खुले जंगली जानवर जिराफ, भैंस, बकरी, गाय, हिरन, ज़ेब्रा, ऊँट की एक रैंच है, लेज़ी फॉर्म रैंच जो परिवारों में खासकर बच्चों में बहुत लोकप्रिय है।

शार्लोट के स्कूल देश के औसत स्कूलों से कहीं बेहतर हैं। यहाँ कई चार्टर, प्राइवेट, मेग्नेट, स्टेम और पब्लिक स्कूल्ज़ हैं। शहर में कई श्रेष्ठ कॉलेज और यूनिवर्सिटीज़ हैं जिनमें यू एन सी शार्लोट, सी पी सी सी कम्यूनिटी कॉलेज, क्वींस यूनिवर्सिटी, जॉनसन स्मिथ यूनिवर्सिटी, डेविडसन कॉलेज, जॉन्सन एंड वेल्स यूनिवर्सिटी प्रसिद्ध हैं। शार्लोट में सिटी बस की सुविधा है एक स्थान से दूसरे स्थान जाने के लिए। लाइट रेल सुविधा जो नॉर्थ से डाउनटाउन और साउथ एन्ड को जोड़ती है जिसके सत्ताईस स्टेशन हैं, यह सुविधा राज्य में केवल शार्लोट में है। यात्रा की सुविधा के लिए शार्लोट का इंटरनेशनल एयरपोर्ट अमेरिका का दसवाँ व्यस्त एयरपोर्ट है। शार्लोट में अस्पतालों और डॉक्टर की भी अच्छी सुविधा है। राज्य की सभी मुख्य यूनिवर्सिटीज़ का एक बायोटेक रिसर्च पार्क शार्लोट के उप नगर केनियापॉलिस में हैं, बहुत सुन्दर ३५० एकड़ में बना कैंपस। यहाँ कृषि,पोषण और स्वास्थ के क्षेत्र में रिसर्च की बेहतरीन सुविधाएँ हैं।

यहाँ ७०० से अधिक ऐतिहासिक और खूबसूरत चर्च, आराधना स्थल और टेम्पल हैं। कहते हैं शार्लोट में हर धर्म को मानने वाले और भाषा बोलने वाले लोग रहते हैं और उनके पूजा स्थल इस शहर में हैं। जिनमें प्रमुख बिली ग्राहम लाइब्रेरी है। कला, संस्कृति, खेल, शिक्षा, रोमांच, मनोरंजन, स्वास्थ, विज्ञान, धर्म, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, प्राकृतिक, शॉपिंग सुख-सुविधाओं से भरपूर, विकास में अग्रणी विविध नस्लों के लोग, एक स्वच्छ सुहानी जलवायु वाला जीवंत शहर है शार्लोट। अमेरिका के टॉप रहने

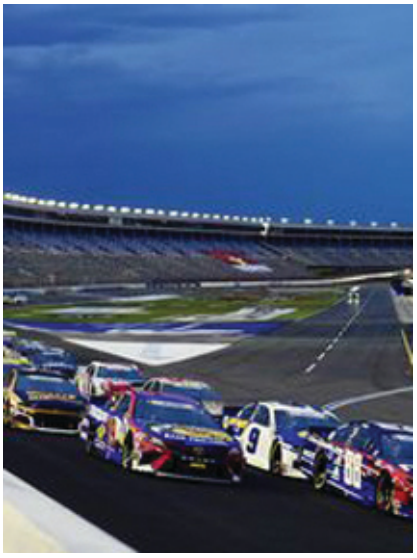

लायक शहरों में शार्लोट छठे नंबर पर है।

सन १९८२ में में हिन्दू सेंटर ऑफ़ शार्लोट टेम्पल बना, जो की यहाँ के भारतीयों का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक गढ़ है। शार्लोट में कई सांस्कृतिक गतिविधियाँ होती हैं। सारे तीज-त्यौहार, गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, दीवाली, नव दुर्गा उत्सव, गणेश उत्सव, दशहरा, होली, जन्माष्टमी सब बहुत हर्षोउल्लास से मनाए जाते हैं। नृत्य, संगीत, आर्ट के कई रंगारंग कार्यक्रम होते हैं। यहाँ हिन्दी भाषा, गुजराती भाषा, योग, ध्यान, श्लोक की कक्षाएँ चलती हैं। बच्चों के लिए क्रॉप स्कूल चलाया जाता है जो गुरुकुल शिक्षा पद्धति पर आधारित है; जिसमें हिंदुत्व, गीता, रामायण, महाभारत के बारे में पढ़ाया जाता है। बुज़ुर्गों को विभिन्न स्थानों की यात्रा करवाई जाती है, हफ्ते में दो बार बुज़ुर्ग मंदिर में एक्टिविटीज़ के लिए मिलते हैं।

शार्लोट में हज़ारों की संख्या में हर जाति, धर्म, प्रान्त के भारतीय लोग रहते हैं। २००३ में एक खूबसूरत गुरुद्वारा बना। यहाँ जैन मंदिर, श्रीनाथ जी की हवेली, साईं बाबा का मंदिर, जैन मंदिर, स्वामी नारायण टेम्पल और त्रिमूर्ति टेम्पल मुख्य हैं। कई गैस स्टेशन, मोटल, रेस्टोरेंट्स और कपड़े के व्यवसायी हैं। स्थानीय भारतीय कंप्यूटर इंजीनियर, डॉक्टर्ज़, वैज्ञानिक, टीचर्ज़, फाइनेंस जैसे क्षेत्रों में कार्यरत हैं। शार्लोट में भारतीय नृत्य कला की बहुत सारी शिक्षिकाएँ हैं जो भरतनाट्यम, कत्थक, गरबा, बॉलीवुड, भंगड़ा आदि की शिक्षा देती हैं। शार्लोट में नृत्य के साथ संगीत भी बेहद लोकप्रिय है और भारतीय संगीत भी बहुत बच्चे सीखते हैं। पारंपरिक चित्रकलाएँ जैसे वरली, मधुबनी, गोंड, कमलकारी के कई आर्टिस्ट हैं जो बच्चों को और युवाओं को कला की शिक्षा देते हैं। सभी क्षेत्रों के कलाकार शहर में हो रही, कला और सांस्कृतिक गतिविधियों में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते हैं। शार्लोट में कई भारतीय रेस्टोरेंट्स हैं, जिनमें कई प्रांतों का खासकर पंजाबी, दक्षिणी भारतीय और इंडोचाइनिस व्यंजन परोसे जाते हैं। हर साल शार्लोट में फ़ेस्टिवल ऑफ़ इंडिया का आयोजन होता है। इसमें भारतीय पारंपरिक नृत्य और बॉलीवुड नृत्यों की प्रस्तुति होती है। भारतीय परिधान, आभूषणों, व्यंजनों की दुकानें लगती हैं। भारतीय संस्कृति, पेंटिंग्स, कला की वस्तुओं की प्रदर्शनी लगती है। हज़ारों लोग भारतीय कला, संस्कृति, खाने और नृत्यों का लुत्फ़ उठाने फ़ेस्टिवल में आते हैं। मेंहदीं के कई कलाकार इस फ़ेस्टिवल में अपनी सेवाएँ देते हैं और स्थानीय लोग इसे बहुत पसंद करते हैं। बोजेंगल्स कोलिसियम में हर साल गरबा दांडिया रास होता है और हज़ारों में भारतीय और कई श्वेत,अश्वेत भी इसमें मिलकर गरबा करते हैं, इसका आयोजन नवदुर्गा उत्सव में होता है। सन २००८ में ऐतिहासिक ओल्ड काउंटी कोर्ट भवन के मुख्य प्रांगण में आठ फुट ऊँची ब्रॉन्ज़ की गाँधी जी की प्रतिमा को स्थापित किया गया। पार्क को गाँधी पार्क नाम दिया गया। इक्कीस सालों के प्रवास में यह शहर हमारा भी घर बन चुका है, इसकी कहानी के साथ हमारी कहानी भी जुड़ गई, जहाँ बड़े शहर की सुख-सुविधाएँ हैं लेकिन वहाँ का धुआँ, आपाधापी और दौड़ भाग नहीं, एक ग्रामीण सुकून भरी जीवनशैली है।

तो देर किस बात की! आप जब भी शार्लोट आएँ, किसी बिज़नेस ट्रिप पर, सैर-सपाटा करने, काम से, पढ़ाई करने, परिवार-दोस्तों से मिलने थोड़े या लम्बे अंतराल के लिए या हमेशा के लिए, ज़रूर आइये और इसे अपना घर मानिए या अपनों का।

000

आधी रात का चिंतन

डॉ. वंदना मुकेश

'सर' के यहाँ घुसते ही लगा कि शायद घर पर कुछ भूल आई हूँ। लेकिन समझ में नहीं आया। अरे, आप सोच रहे होंगे, ये 'सर' कौन हैं? तो बताऊँ कि 'सर' हैं डॉ. केशव प्रथमवीर, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग पुणे विद्यापीठ। कब गुरु से पितृ-तुल्य हो गए, पता ही नही चला। ...और भारत–यात्रा पर बेटी पिता से न मिले वह तो संभव ही नहीं है। सो पुणे पहुँचते ही रात सर के पास रुकने की तैयारी से चल दी। दिमाग में घूम रही थी उनकी वह दीवार जिस पर पुस्तकें ही पुस्तकें सजी हैं। मेरे सोने की व्यवस्था कर के सर बात्रा 'सर' के पास सोने चले गए।

उनके कमरे में रखे किताबों के भंडार को देख कर मैं बहुत ही उत्साहित हो रही थी कि रात-रात में सारी किताबें पढ़ लूँगी किंतु सर के जाते ही सोचा कि अगले दिन के लिये पति महोदय को फ़ोन पर कुछ निर्देश दे दूँ, बैग में फ़ोन नहीं मिला। उसे पूरा खंगाल डाला, नहीं मिला। सर जा चुके थे। भारत का नया फ़ोन नंबर जो शाम को ही लिया था, मैंने फ़ोन पर ही नोट कर लिया था। टेबल पर सर का फ़ोन था, लपक कर उससे अपनी भानजी गरिमा का नंबर मिलाया। घंटी जा रही थी, घड़ी देखी, फिर स्वयं ही फ़ोन काट दिया। मन परेशान हो गया। यह मन भी बड़ा बेईमान है, जो है वह नहीं, जो नहीं है वही चाहिए। फिर गीता-ज्ञान से मन को प्रबोधित करने का प्रयास किया। बेचैनी भरे मन से सकारात्मक विचारों को निमंत्रण देने और दिन भर की थकान से कब आँख लग गई पता ही न चला। वैसे भी रात के ठीक बारह बज रहे थे। सो लेटते ही इस जगत् के कार्यकलापों से नाता टूट गया।

घड़ी के अलार्म बजने से आँख खुली, सर कह कर सोये थे कि वे सुबह साढ़े पाँच बजे उठकर तैयार होकर छह बजे घूमने निकल जाते हैं। मैंने सोचा, मैं थोड़ा और सो लूँ, सर के आने पर ही उठूँगी। लेकिन अलार्म ने जब तीसरी बार बीप बीप किया तो मैं उठ ही गई। फिर पानी पीकर घड़ी देखी तो दो बजकर तीस मिनिट ही हुए थे। बस फिर क्या था मन को पति महोदय से तुरंत संपर्क करने के लिये परेशान होने का मौका मिल गया। मुश्किल से उसकी लगाम कस के सोने की कोशिश करने लगी। फिर आँख लगी ही होगी कि कुत्तों के रोने से आँख खुल गई। आधी रात की अखंड शांति में कुत्तों का यों रोना! उनकी मनहूस-सी आवाज़ ने परेशान मन को और ज़्यादा विचलित करने में एकदम आग में घी का काम किया। प्रभु से सबके लिये उत्तम स्वास्थ, सुख-शांति की कामना की। फिर मन भटक कर फ़ोन की ओर पँहुच गया। मेरा फ़ोन चार्जर के साथ शायद, जल्दबाज़ी में गरिमा के यहाँ छूट गया। शुक्र है कि लैपटॉप मय चार्जर के, मेरे ही पास था। तभी तो यूँ आधी रात को आपसे बातें करने बैठ गई।

बचपन की कुछ यादें ताज़ा होने लगी। कई बार मम्मी–पापा सुबह की चाय पर यही चर्चा

डॉ. वंदना मुकेश
35 Brookhouse Road, Walsall
WS5 3AE, England
मोबाइल- 9413169433
ईमेल-vandanamsharma@hotmail.co.u

करते होते कि आज रात भर नींद नहीं आई क्योंकि रात को कुत्ते रो रहे थे। कुत्तों का रोना बड़ा अशुभ माना जाता था। मुझे हँसी आ गई। बेचारा कुत्ता, रोये तो भी आफ़त ! रात में तो बच भी जाता है क्योंकि दिन में यदि आस-पास रोए तो मारकर तुरंत उसे भगा दिया जाता था।

मैं सोचने लगी कि कब मैं आख़िरी बार में कुत्ते के भौंकने या रोने से जागी होऊँगी? फिर हँसी आई, पिछले पंद्रह वर्षों से इंगलैंड में हूँ तो यह सौभाग्य कैसे प्राप्त होता? यहाँ तो कुत्ते स्वेटर टोपा पहने अपने अच्छे- गुदगुदे बिस्तरों में, सॉफ्ट टॉय लिये सोते होंगे आधी रात को।

सो कुत्तों की गोष्ठी हुई और उसमें ससम्मान अपने इंग्लैंड से पधारे मेहमान के पक्ष में निर्णय लिया और इतने वर्षों की कमी पूरी करने में सारी कॉलोनी के कुत्ते बिल्डिंग के ठीक सामने, उस कमरे के नीचे जमा होकर रोने–कूल्हने और भौंकने लगे। तरह-तरह की आवाज़ें, रात में माहौल को और डरावना बना देती हैं। कुत्तों का भौंकना ख़त्म हुआ तो एक बिल्ली कहीं मिआउँ, मिआऊँ की धमकी देने लगती।

मेरे मन पर बैचैनी हावी होने लगी, जिसे अंग्रेज़ी में एंगज़ायटी कहते हैं। स्वाभाविक है, रामनाम का जाप शुरू होता है। मन नहीं लगा। मैं सोचने लगी कि कुत्ते का रोना अशुभ क्यों होता है। उसे अपने दुख-तकलीफ़ व्यक्त करना क्यों मना है। भई, दुख-तकलीफ़ घड़ी देख कर थोड़े ही न आती है। और मुझे तो लगता है कि घनीभूत पीड़ा की अभिव्यक्ति तो रात की निस्तब्धता में ही होती है। बेचारे कुत्ते! लेकिन बेवक्त अपने दुखड़े का डंका तो नहीं पीटना चाहिए, समय और मौका टटोल कर ही बात उठाई जाए तो बेहतर।

मेरी दृष्टि में, कुत्ता ही नहीं, रात की निस्तब्धता को भंग करने वाला कोई भी जीव नहीं सुहाता, चाहे उल्लू हो, टिटहरी हो या कोई और... बस फिर उड़ चला मन, कि प्रकृति हमें प्रति पल सिखाती है कि हम कैसे व्यवहार करें, कैसे बोलें, कैसे जागें, कैसे सोएँ। लेकिन हम मनुष्य नामधारी जीव आधुनिकता और तकनीकी विकास के नाम पर उसे नज़रअंदाज़ करते हैं। बात बोलने की हैं। सुबह-सुबह पक्षियों की चहचहाहट से आँख खुले तो मन भी चहकता है। लेकिन आधी रात टिटहरी बोल पड़े तो मन बैचैन हो जाता है! तो पहला पाठ तो यही कि बेवक्त न बोला जाए। दूसरा पाठ, धीमी आवाज़ में बातचीत की जाए और तीसरा- मीठा बोला जाए।

तीनों बातें ही आधुनिक समाज के मानदण्डों के आधार पर सही नहीं हैं। आज प्रजातंत्र के नाम पर जो अराजक तंत्र चल रहा हैं उसे क्या कहा जाए। बोलने की स्वतंत्रता के नाम पर नेताओं के उलजलूल वक्तव्य, फिर खिसियानी बहस परिणामस्वरूप मोर्चाबंदी, सार्वजनिक जान-माल को हानि..... क्या कुछ नहीं करते यह लोग।

और समाज में यह स्थिति है कि मीठी बानी की दुहाई देते-देते कबीर जैसे कई संत पोथियाँ लिख गए लेकिन हमें तो न तब समझ आई न अब। हमारे कई ऐसे परिचित हैं जो 'चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी' के फलसफे पर जीते हैं। सहजता से कोसों दूर। एक परिचिता हैं, अव्वल तो वे खुद होकर कभी फ़ोन नहीं करतीं। उन्हें फ़ोन करो तो उन्हें सारे विश्व के समाचार चाहिए होते हैं और समझदार इतनी कि कोई उनसे कोई उनके परिवार के बारे पूछना-जानना चाहे तो फट से कहती हैं कि अरे काफी देर हो गई आप व्यस्त हैं अब रखती हूँ। दूसरी उनसे भी महान् हैं, वे फ़ोन तो स्वयं करती हैं लेकिन पहला वाक्य होता है कि आप व्यस्त होंगी इसलिये बस। दरअसल दूसरे व्यक्ति की व्यस्तता उन्हें फ़ोन में से दिख जाती है।

बस सचमुच के कुत्ते-बिल्लियों और उल्लुओं के दुखड़े सुनते- सुनते साढ़े पाँच बज गए और देखिए दिन की शुरूआत भी हुई तो काँव-काँव से।

यह हिंदुस्तान है यहाँ सब एक साथ रहते हैं। कुत्ते, गधे, उल्लू, बिल्ली और हमारी क्या बिसात है सो हम इन्हें रोक सकें। प्रजातंत्र तो है ही, सो भइया बोलो, खूब बोलो, बोलते रहो। लेकिन, यहाँ तुम्हारी सुनेगा कौन?

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।
पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

हम शब्दों के ऋणी हैं

डॉ.शोभा जैन

संस्कृत की एक सूक्ति अनुसार –''साहित्य संगीत कला विहीन:,साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन: ।''अर्थात् साहित्य संगीत कला से विहीन मनुष्य पशु के समान है। माना जाता रहा है समाज भाषा में जीता है और साहित्य में संस्कारित होता है। समाज भाषा में तो जीता ही है यह तो हर समाज का आचरण है किन्तु जब यही भाषा सृजन का माध्यम बन जाती है तो उसमें अभूतपूर्व सौन्दर्य शैली के साथ और भी बहुत कुछ और जुड़ जाता है। वरिष्ठ साहित्यकार शिक्षाविद् डॉ. रमेश दवे अपने एक लेख में इस सदर्भ में बहुत खूबसूरती से लिखते हैं- साहित्य में भाषा की देह में 'शब्द' प्राण की तरह होते है। भाषा का सर्जनात्मक रूप ही तो महान् साहित्य का आकार लेता है 'शब्द' इस सृजन-यज्ञ में समिधा की तरह होता है। साहित्य मनुष्य की भावनात्मक उपज है। मनुष्य जब अपने अनुभवों अध्ययन को काग़ज़ पर उकेर देता है तब वह साहित्य बन जाता है। मनुष्य की वैश्विक सार्वभौम अक्षता जिजीविषा और कालयात्रा को आज तक किसी न किसी रूप में साहित्य ने ही वाक् शक्ति दी है। जो अनेक अबूझ प्रश्नों का उत्तर बनी। अपने गद्य के माध्यम से चिंतन के नए आयाम रचने वाले राष्ट्रकवि दिनकरजी स्पष्ट घोषणा करते हैं- 'आज सारा विश्व जिस संकट से गुज़र रहा है, उसका उत्तर बुद्धिवाद नहीं, अपितु धर्म और अध्यात्म है जिसे कहीं न कहीं हम साहित्य में जीते हैं।' कम से कम भारतवर्ष के आधे हिस्से की सहस्रवर्ष-व्यापी आशा-आकांक्षाओं का मूर्तिमान् प्रतीक हिन्दी साहित्य से ही हैं।

नेपोलियन ने कहा है –दुनिया में दो ताक़तें है तलवार और लेखनी। अंतत: तलवार कलम से हारती ही है और फिर मनुष्य के भीतर की घुटन साहित्य के माध्यम से व्यक्त होने लगती है। विभिन्न कलाओं में साहित्य ही एक मात्र ऐसी कला है जिसकी सीमाएँ जीवन की हर विधा से संस्पर्श है। शिशु के जन्म की शुरूआत लोरी से होती है जो कविता का वात्सल्य रुप है। अगर जन्म सत्य है तो मृत्यु भी पूर्ण सत्य है आचार्य रजनीश ने भी मृत्यु का उत्सवी रूप स्वीकारा है। और साहित्य हर उत्सव में निहित है। साहित्य में हर आदमी के हिस्से की तलाश मौजूद है जिसमें जन्म देने वाली संवेदनाएँ हैं जो सृजन को जन्म देती है। पर इन तक हर कोई नहीं पहुँच पाता क्योंकि ''कविता सबके लिए नहीं है।'' इसलिए जिनके जीवन में साहित्य नहीं उनके जीवन में एक अजीब सा सूनापन सघनता से भरा पड़ा है साहित्य में शब्द की भूमिका इतनी महत्त्वपूर्ण है कि कभी वही शब्द शोक बनकर व्यक्त होता है कभी श्लोक बनकर अपने विवध रूपों में शब्दबद्ध होकर साहित्य मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की प्रेरणा देता है। जब यह किसी चित्रकार के पास होता है, तो चित्र भाषा के रूप में, संगीतकार के पास से जब गुज़रता है तो यह भाषा रूप से कला रूप में परिणित होकर एक उत्सव में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार जो

डॉ.शोभा जैन
'शुभाशीष' 201-A/369 सर्वसम्पन्न नगर,
इंदौर, पिन –452016 मध्यप्रदेश
मोबाइल - 9424509155
ईमेल- idealshobha1@gmail.com

साहित्य को जी रहा है, वह न तो कभी अकेला है न एकाकी। भूमंडलीकरण के इस दौर में भोगवादी मानसिकता और ऐसे अराजक तथा मूल्यहीन समय में अंतिम उम्मीद साहित्य ही बचती है। हारे हुए आदमी की अंतिम शरणस्थली साहित्य ही हो सकता है। प्रेमचंद ने लिखा है-''साहित्य की गोद में उन्हें आश्रय मिलना ही चाहिए जो निराश्रय हैं,पतित हैं। इसलिए रचना केवल लेखक की संपत्ति नहीं होती। उससे जाने अनजाने जाने कितने भाव स्वत: ही जुड़ जाते हैं। जो उसे अपना समझने लगते हैं। शायद इसलिए साहित्य के परिसर में प्रवेश करने वाले कभी खाली हाथ लौटकर नहीं जाते। साहित्य ही एकमात्र है जो बाज़ार की माँग आपूर्ति के समीकरण से नहीं चलता इसलिए हमारी व्यवस्था के पुनर्निर्माण में साहित्य की भूमिका अग्रणी है। हमारे प्रतिभासंपन्न ज्ञानसंपन्न, कवि, कथाकार, आलोचकों से लेकर अन्य सभी विधाओं के सशक्त हस्ताक्षरों ने अपनी लेखनी से समाज का यथार्थ चित्रण देकर अपने 'सरेहित' के प्रयोजन को सार्थक किया है। साहित्यकार अपने साहित्य से केवल समाज की विसंगतियों और विडम्बनाओं पर कटु प्रहार नहीं करते अपितु उसे यथेष्ट और अपेक्षित दिशाबोध देने के लिए प्रयत्नशील भी रहते हैं। साहित्य में समाज का अनागत रूप भी काल्पनिकता के साथ संकेत कर आगाह करता है। 'गोदान', 'रागदरबारी' जैसी कालजयी कृतियाँ इसी के उदाहरण हैं। समाज जैसी बड़ी वैचारिक संस्था में साहित्य सभ्यता को पोषित करता है।

लेखन के क्षेत्र में नई पीढ़ी का आगमन कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है वो पीढ़ी जिसके नैतिक मूल्यों की नींव पत्र –पत्रिकाओं में प्रकाशित शिक्षाप्रद लघुकहानियों और पंचतंत्र जैसे सार्थक संग्रह को पढ़कर रखी गई। बस बाज़ारवाद ने सृजन में संवेदनाओं को थोड़ा धूमिल कर दिया है क्योकि यह अंतर्द्वंद्व का समय है आदमी की ज़रूरतें उसकी भावनाओं पर भारी पड़ रही हैं। एक प्रश्न का दायरा निर्मित हो गया है कि- क्या एक कलाकार केवल कला के सहारे जीवित रह सकता है ? शायद इसलिए पाठक और साहित्य के मध्य दूरियाँ पैदा हो रही हैं। साहित्य से आदमी का कटना ही उसके जीवन का अधूरापन बन जाता है। इसलिए 'बिन साहित्य सब सून' कहना ग़लत नहीं होगा। हमें आभार व्यक्त करते रहना चाहिए टैगौर, परसाई, जेनेंद्र जैसे साहित्यकारों का जिन्होंने हमें भाग्यवादी उपदेशवादी पाठ्य सामग्री से बाहर लाकर बौद्धिक उत्कर्ष का मंच दिया। संस्कृत साहित्य में कालिदास, शूद्रक, भास जैसे अनमोल रत्नों के प्रादुर्भाव की जानकारी हमें साहित्य के माध्यम से ही मिली, जिन्होंने इन शताब्दियों में उत्पन्न होकर भारतीय विचारधारा को अभिनव समृद्धि से समृद्ध किया। साहित्यवलोकन से ही हमें इतिहास बोध मिला। आदिकाल के तात्कालिन समाज की परिस्थिति और विचार मिले। रीतिकालीन विलासिता ने जीवन की विकृतियों का बोध कराया। और भक्तिकालीन रचनाओं ने ही तत्कालीन समाज की हीन पराभव परिस्थिति को सबल बना एक अभूतपूर्व इतिहास स्थापित किया। हमारे महान् ग्रन्थ, पुराण, उपनिषद ऐसे ही विचारकों ने लिखे जिनका साहित्यिक महत्त्व शाश्वत बना हुआ है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि तकनीकी संसाधनों के चलते साहित्य अब अपने वांछित पाठकों तक त्वरित पहुँच रहा है। समकालीन साहित्य का परिवेश बदलाव के अनेक परिदृश्य अपने भीतर समेटे हुए है। विविध विमर्शों से चिन्तन को नया आयाम मिल रहा है उत्तर आधुनिक दौर में साहित्य पूरे सामर्थ के साथ उपस्थित रहा है। भोक्ता और दृष्टा की संवेदना में अंतर करता स्त्री लेखन भी स्वयं को और समाज को पहचानने की एक ईमानदार चेतना से जुड़ा है। इन दिनों हमारी शताब्दी की बुनियादी समस्याएँ ज़ख्म और उपलब्धियों ने समूचे विश्व के रचनाकारों को आंदोलित किया है। दरअसल साहित्य और समाज का अन्योनाश्रित संबंध मनुष्य और ईश्वर के संबंधों के ही समकक्ष है जिस प्रकार विधाता सृष्टि का नियंता होता है कवि कथाकार युग दृष्टा है। नि:संदेह आगामी पीढ़ी गंभीर दायित्व बोध के साथ सार्थक साहित्य के लिए सजग है क्योंकि अंतत: साहित्य का विकल्प केवल साहित्य ही है। नई लेखनी नए समाज के अभ्युदय का निमित्त बनती है। आज पुराने शब्द पर नए अर्थ की कलम लिए नई पीढ़ी के रचनाकार साहित्य साधना में रत है। क्योंकि समाज की रचना और युग परिवर्तन के संकेत हमें साहित्य से ही मिले हैं। यह बदलाव अपने भीतर बहुत कुछ ऐसा समेटे है जिसमें मूल्यों के साथ चलकर समाज की बेहतरी की यात्रा अब भी जारी है क्योंकि जब भी कुछ नया और सकारात्मक सक्रियता से होता है, तो उसको निष्क्रिय करने वाली शक्तियाँ भी उतनी ही सक्रीय होती हैं। तभी इसकी बेहतरी की ज़रूरत हर युग में बनी रहती है, जिसका माध्यम साहित्य ही बनता है ज़िंदगी की एक-एक स्नायु के तनाव को एक बार जीवन में और दूसरी बार अपनी कविताओं में जीने वाले मुक्तिबोध ने इस दुनिया की बेहतरी के लिए लिखा है –'यह जैसी है इससे बेहतर चाहिए/ पूरी दुनियाँ साफ़ करने के लिए एक मेहतर चाहिए /'' इस बेहतरी के लिए शब्दों के आँगन में साहित्य का एक छोटा -सा 'दीप' गर जले तो निश्चित ही संवेदनाएँ पिघलकर एक दीप को और प्रज्ज्वलित कर अपने प्रकाश से समाज में आलोक के अभाव को पूरा कर सकेगी क्योंकि वास्तव में अंधकार स्वयं कुछ न होकर आलोक का अभाव है शायद इसलिए छोटा -सा दीपक भी उसकी सघनता को नष्ट करने का सामर्थ रखता है। ठीक वैसे ही जैसे एक 'शब्द' जब सर्जक से होकर गुज़रता है तो जाने कितने जीवन बदल देता है। हमें नहीं भूलना चाहिए सृजन की हर विधा भाषा की कसोटी पर ही कसी जाती है जिसमें 'शब्द' भाषा की देह में 'प्राण' की तरह होते हैं जिनसे साहित्य का सृजन होता है। यूँ ही नहीं कहा जाता किताबें जीवन बदल देती हैं। साहित्य ने केवल मनुष्य के जीवन को ही नहीं एक पूरे युग परिवर्तन से हमें गौरवान्वित इतिहास दिया है। यह साहित्य सर्जकों और सार्थक सृजन का ही सुखद परिणाम है इसलिए हम शब्दों के, साहित्य के ऋणी हैं इस बात को सहर्ष स्वीकारना चाहिए।

000

भूबल

(उर्दू लघुकथा)

नीलम अहमद बशीर

लिप्यांतरण-

डॉ. अफ़रोज़ ताज

जो भी मेरे घर आता, मेरी काली भुजंग कम सूरत, नाटे क़द की काम वाली अम्माँ पर एक आध फ़िक़रा ज़रूर कसता।

मैं कहती- भई देखो... अम्माँ का दिल शीशे की तरह साफ़ और ख़ूबसूरत है। काम में बड़ी ज़िम्मेदार और ईमानदार है। मेरे घर को अपना घर समझती है, हर वक़्त मुस्कुराती रहती है। मैंने शक्ल को क्या करना है?"

अम्माँ पाबंदी से सुबह काम पर आती और सारे काम निपटा कर शाम को अपने शौहर शफ़ीक़ के साथ साइकल पर बैठ कर घर चली जाती। शफ़ीक़ भी बस उस जैसा ही था, यानी इंसान का बच्चा कहलाया जा सकता था। सूखा मरियल जिस्म, ठिगना क़द, बेढंगी चाल, ग़ालिबन रिश्ते में कज़िन होंगे, मैंने दिल में सोचा। चलो, अल्लाह मियाँ ने ख़ूब जोड़ी बनाई, एक जैसे ही थे।

अम्माँ बड़ी अच्छी तबियत की मालिक थी। ख़ुश मिज़ाज, हँसमुख। उसे किसी चीज़ का न लालच था, न शौक़। बस एक ही बात थी, मैं जब भी सौदा वग़ैरा लेने बाज़ार जाती, मुझ से एक ही फ़रमाइश करती- बीबी मेरे लिए राख की भूबल में भुनी हुई एक छल्ली ज़रूर लेती आना। बहुत जी चाह रहा है। मैं भी उस की ख़्वाहिश पूरी करने पठान रेढ़ी वाले को ढूँढ़ लेती, जो मार्केट में इधर-उधर खड़े होते और उन से छल्ली ख़रीद कर ले आती। नर्म-गर्म छल्ली खाते हुए अम्माँ की ख़ुशी देखने योग्य होती। वह उस चाव से खाती कि मैं मुस्कुरा देती।

"अम्माँ...! तुझे बस छल्ली ही पसंद है? कहे तो कुछ और भी बाज़ार से ला दिया करूँ?" एक रोज़ मैंने उसे कहा।

"बस बीबी जी...! मुझे जवानी के ज़माने से ही छल्ली खाने का बहुत शौक़ था मगर शफ़ीक़ से जब भी फ़रमाइश की उस ने सौ-सौ बातें बनाईं। एक रोज़ मैंने एक पठान छल्ली बेचने वाले से बात कर ली कि तूने मुझे रोज़ की एक छल्ली ज़रूर देनी है। बस बीबी जी...! उधर शफ़ीक़ काम पर निकलता, इधर दरवाज़े पर खट-खट होती। मैं खोलती तो छल्ली वाला पठान मज़ेदार नर्म ताज़ी भुनी हुई छल्ली लिए बाहर खड़ा होता। मैं ख़ुशी ख़ुशी उस से ले लेती।"

अम्माँ अपनी छल्ली की कहानी सुना कर बच्चों की तरह ख़ुश होने लगी।

एक रोज़ शफ़ीक़ अम्माँ को लेने न आ सका। उसे किसी काम से गाँव जाना था।

"आज मेरा सब से छोटा बेटा मुझे लेने आएगा।" अम्माँ ने मुझे इत्तला दी। काम ख़त्म करने के बाद अम्माँ सीढ़ियाँ उतर कर नीचे चली गई। मैंने गली में यूँ ही झाँका कि देखूँ अम्माँ जा रही है कि नहीं? अम्माँ के बेटे पर नज़र पड़ी तो मैं हैरान रह गई। एक ख़ूबसूरत, गोरा-चिट्टा, लम्बा तड़ंगा नौजवान साइकल लिए उसे लेने के लिए आया हुआ था। अगले रोज़ अम्माँ काम पर आई तो मैं उस से कहे बग़ैर न रह सकी- "अम्माँ तेरा बेटा किस क़दर प्यारा है माशाल्लाह, तेरा बेटा तो लगता ही नहीं। किस पर गया है?" मैं ने उसे छेड़ते हुए पूछा।

"लै बीबी जी...! बच्चे माँ-बाप पर ही जाते हैं और किस पर जाना है?"

उस के चेहरे पर ऐसे रंग पिचकारियाँ छोड़ने लगे जैसे वह उन्नीस बरस की अल्हड़ मुटियारन हो।

000

नीलम अहमद बशीर
28b, Lane V, Cavalry Ground,
Lahore Cantt. Punjab, Pakistan
ईमेल- chaarchand@yahoo.com

कविताएँ

वसंत सकरगाए की कविताएँ

आदत ही कुछ ऐसी है

क्या कहिए कि आदत ही कुछ ऐसी है,
सलवटें होती नहीं बरदाश्त ज़रा
बात फ़क़त पोशाक़ या बिस्तर की नहीं

ये जो राहें गुज़रती हैं ज़माने भर की
बदस्तूर एक ज़माने से दूसरे की जानिब
दरहक़ीक़त एक तहज़ीब है
जिनका आगाज़ है मेरे भीतर,
इन पे कदम रखता हूँ तो मिटाता हूँ
हर शिकन चेहरे की पहले
हाथों से पोंछता हूँ हर सिकुड़न राहों की

एक आईना कुछ यूँ तज्वीज़ कर रखा है
अपने घर मैंने
ज़मीर भी साफ नज़र आए मुझको अपना
और जो आईने में और गहरी उतरे आँखें
मेरी
मुझे साफ दिखाई दे..हर शख़्स
रास्तें जो गुज़रते हैं हर वक्त मेरे घर से
होकर...

000

माँ धूप सेंक रही है

आज सुबह से शीत लहर चल रही है
और माँ
घर के आँगन में बैठकर
धूप सेंक रही है
माँ घर के आँगन में धूप सेंक रही है
कि धूप को टुकड़ा-टुकड़ा तरसती एक
बूढ़ी स्त्री
माँ के हालचाल के बहाने
सामने के फ्लैट से उतरती है
और माँ के पास बैठकर, अपने बाँटे की
धूप सेंक रही है

माँ के कदमों में पड़ा हमारा पालतू कुत्ता
शीरो
धूप सेंक रहा है
बॉउंड्री-वाल पर बैठी गिलहरी
कुछ खाते-खाते
धूप सेंक रही है

एक दाने के लिए इधर-उधर
भटक रही एक चींटी
अपनी भूख के साथ
कुछ-कुछ धूप सेंक रही है

माँ मुझसे कह रही है-
"जीउ सबको एक सो छे
बस सरीर को आकार अलग-अलग छे!"

000

अ और ब

अ और ब
एक टीम के बहुत उम्दा खिलाड़ी हैं
कड़े परिश्रम, सच्ची लगन और समर्पण से
इतना निखारा है अपने खेल को
कि दोनों पर्याय हैं टीम के
दोनों के बग़ैर मुमक़िन नहीं टीम की
कल्पना कर पाना
कप्तान की मजबूरी है दोनों को साथ
खिलाना

हालाँकि कप्तान और बाक़ी खिलाड़ी
जानते हैं भलिभाँति
कि दोनों फूटी आँख नहीं सुहाते एक-दूसरे
को
और वैमनस्यता ऐसी
कि अ के पास गेंद हो और ब के पास
पूरा-पूरा मौक़ा हो
गोल दागने का
तब,अ इतनी होशियारी और चालाकी से
गेंद पास करता ब को
कि ब
मौक़ा चूक जाता गोल बनाने का

और ब के सामने पड़ जाए अगर अ
तब, भरसक कोशिश होती ब की,
कि अ पर
निशाना साधकर
इतनी ज़ोर से लात जमाए गेंद पर
कि गेंद के प्रहार से बुरी तरह चोटिल हो
जाए अ
और पूरे खेल के दौरान
टीम से बाहर हो जाए

कभी-कभी तो दोनों ने यहाँ तक किया
कि एक ने दूसरे की ख़ासीयत को ख़ामी में
बदल दिया
एक ने दूसरे के क़दमों में
कुछ इस तरह डाली गेंद
कि अपने ही गोल में
करवा दिया गोल !

पता नहीं लोग बाग सच कहते हैं या
अफ़वाह उड़ाते हैं
कि दोनों अपनी नहीं, विपक्षी टीम की तरफ़
से खेलते हैं!

अ और ब दोनों से
जब भी पूछा जाता एक-दूसरे के बाबत्
तो दोनों एक-दूसरे की तारीफ़ करते हुए
नहीं अघाते हैं

अ और ब
दोनों बहुत मँजे हुए खिलाड़ी हैं
और पूरी खेल भावना से एक ही टीम से
खेलते हैं !

000

वसंत सकरगाए
ए - 5, कमला नगर
भोपाल, मध्यप्रदेश 462003
मोबाइल- 9977449467

श्रीविलास सिंह की कविताएँ

युद्ध

रात के वनों में
बारिश आती है सहमी हुई सी
जैसे चाँदनी पिघल रही हो धीरे-धीरे और
दूर तक फैले काले समुद्र में टिमटिमा रही हों
मछलियों की आँखें।

युद्ध अपने दाँतों को पैना करता
आकाश के दूर वाले छोर पर
रच रहा होता है काले दिनों की पूर्वपीठिका,
किसी उफ़नाई नदी की नीली पड़ चुकी देह
अनागत की विषाक्त पीड़ा से ऐंठी होती है।

कोई गिरता हुआ उल्कापिंड लिख देता है
आसमान पर
बिजलियों के संस्मरण
और सब कुछ मिट जाने के बाद भी
मुट्ठी भर प्रकाश बचा रहता है आँखों में
जैसे तुम्हारे के चले जाने के बाद भी
बचा रहता है एक उजला एहसास देर तक।

पहाड़ की उदास और एकाकी चोटियों पर
जहाँ अपने मज़बूत कंधों पर उठाए
हमारी वृद्ध और हिंसक राजनीति का बोझ,
जाग रहे होते हैं कुछ युवक
सारी राजनीति और कूटनीति से परे
अपने प्रेम की आकाशगंगाओं में तैरते
जैसे तैरती हैं काग़ज़ की किश्तियाँ
बच्चों की आँखों की नदी में।
भावनाओं के सबसे कोमल तन्तुओं से ही
बनती हैं
दुनिया की सबसे मज़बूत दीवारें

इतिहास के सबसे निर्जन पलों में लिए गए
होते हैं
मनुष्यता के दुखों की सृष्टि के सबसे
कुरूप निर्णय
और युद्धों का घोषित लक्ष्य हमेशा ही होता
है
उन्हीं का हित जो मिटा दिए जाते हैं सबसे
अधिक क्रूरता से
इन युद्धों के दौरान।

बूढ़ी और नपुंसक महत्त्वाकांक्षाएँ होती है
सबसे अधिक रक्तपिपासु और
युवा सपनों के ढेर पर खड़े तमाम तानाशाह
जब मानवता की लोरी गुनगुना रहे होते हैं
धर्म और राष्ट्र की लम्पट दीवारों के दोनों
ओर
बह रही होती है पीड़ा की एक नदी
हत्या और ध्वंस की बाढ़ के गुज़र जाने के
बाद।

रात के वनों में अब भी पिघलती है चाँदनी
और प्रेम का स्वप्न देखती मछलियों की
आँखें
अब भी सो जाती हैं चुपचाप
हमारी नींदों को सहलाती, अपने प्राणों की
उँगलियों से।
युद्ध अब भी जाग रहा है
पहाड़ों की एकाकी उदास चोटियों पर
चाटता युवा स्वप्नों का रक्त।

000

प्रेम करेंगी वे फिर भी

वे दुलारी हैं तुम्हारी
टुकड़ा तुम्हारे हृदय का,
रोशनी हैं तुम्हारे अँधेरों की
और हैं रक्षा-सूत्र
जो सजा है तुम्हारी बलिष्ठ कलाइयों पर,
तुम्हारा मान हैं और गर्व भी।
पर वे जानती हैं
ये सब हैं वे तभी तक
जब तक
वे उठ रही हैं,
बैठ रहीं हैं,
बोल रहीं हैं,
पहन रही हैं कपड़े
और सोच भी रही हैं
तुम्हारी सुविधा से।
जिस दिन भी
उन्होंने आज़ादी से सोचा,
जुर्रत की प्रेम करने की,
अपने शरीर को
मान लिया अपना
उसी दिन तुम्हारी संस्कृति को
हो जाएगा सन्निपात और
तुम अपने भीतर की
सारी कुरूपता के साथ
टूट पड़ोगे उन पर
चबा जाने को
उनका अस्तित्व।
मगर तुम्हारे इस भयानक
दोगलेपन के बावजूद
वे सोचने भी लगी हैं आज़ादी से
और करने लगी हैं
प्रेम भी।

000

विचार

तलवारें
हक़ छीनती भी हैं
और
हक़ दिलाती भी हैं।
फ़र्क़ सिर्फ़
इन्हें पकड़ने वाले
हाथों का होता है।
विचार भी शायद होते हैं
तलवार की तरह।

000

श्रीविलास सिंह
A-5 , आशीष रॉयल पार्क, बीसलपुर
रोड,बरेली, उत्तर प्रदेश 243006
मोबाइल- 8851054620
ईमेल - sbsinghirs@gmail.com

कविताएँ

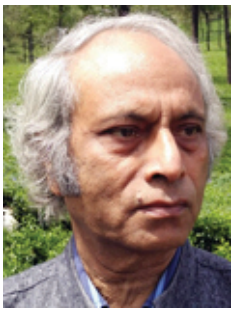

नरेंद्र नागदेव की दो कविताएँ

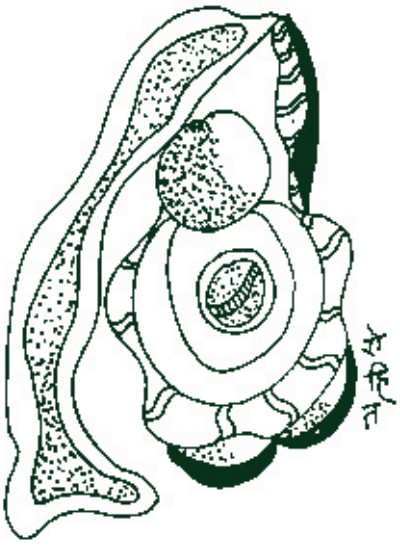

एहसास

ज़िंदगी भर
ईश्वर के होने के
एहसास से ही तो
तय हुआ
कि उसका साथ
कभी नहीं मिला

जब बन्द कमरे के
अँधेरे में
महसूस हुआ
कि कोई अवश्य
साँस ले रहा है आसपास
तभी तो पता चला
कि वहाँ कोई
था ही नहीं

सुनसान पगडंडी पर जब
लगा कि कोई चल रहा है
साथ-साथ
तभी तो डर लगा था अपने
अकेलेपन से

उम्र भर
अपने कंधों पर
स्नेहिल हाथों का
भ्रम रहा
तभी तो तय हुआ था
कि अपना तो कोई
मिला ही नहीं जीवन में

इसलिए
इस शहर से
चले जाने के बाद
जब उन्हीं गलियों में
वैसे ही खुलेगी
सुबह की सिंदूरी रौनक
उन्हीं उन्हीं शाखाओं से
वही वही परिंदे उड़ेंगे
चहचहाते हुए
उन्हीं पेड़ों को हिला कर
रात रानी के फूल बिखराएगी
अल्हड़ हवाएँ
तब उन सभी के बीच
तुम्हें एहसास होगा
हमारे होने का
और
तभी तो पता चलेगा
कि अब हम
वहाँ नहीं है

000

नट

पुण्य की कोशिश में हमेशा
पाप करते चले जाने के
और सही की कोशिश में हमेशा
ग़लत करते चले जाने के
कितने तो रिकॉर्ड बनाते रहे हम
अपने नाम
पाप और पुण्य के
सही और ग़लत के
इन दोनों ऊँचे पहाड़ों के बीच
बँधी हुई रस्सी पर
बड़े ही कुशल
अथवा शातिर
नट की तरह चलते रहे हम
उम्र भर
जबकि नीचे खाई में
एक शेर
टकटकी लगाकर
ताकता रहा हमें
मौके की तलाश में

हम उस शेर को
ऊँचे पहाड़ पर भेज कर
चाहते हैं एक पल
सुकून का

जिसमें दोनों पहाड़ों के बीच
ऊँचाई पर
उग आए एक
शीतल जल का तालाब
जिसमें पैर डालकर
बैठे रहें
गुनगुनी धूप में

नीचे तैनात कर दें
लौह कवच से सज्जित
अपनी ही आत्मा का
एक रोमन सैनिक
हाथ में भाला लिए
शेर पर निगरानी के लिए

कम से कम
एक सुनहरा ख़्वाब तो देखें
ज़िंदा रहने की आसानी के लिए

000

नरेंद्र नागदेव
B-2/2376, वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070
मोबाइल- 9873498873
ईमेल- nknagdeve@gmail.com

अनामिका अनु की कविताएँ

ख़ालिस सच्चाई से रोमांटिक कुछ भी नहीं

मेरे दोस्त कौन होंगे
तय तो मैं ही करूँगी

मुझे पसंद नहीं
अगर चिकने चेहरे
तो तुम क्या करोगे?
ब्राँडेड कपड़े
और विलासिता से अलंकृत
यह जीवन
और यह उफ़-सी नफ़ीसी तुम्हारी
मेरी नज़र को रुचती ही नहीं
तो भी तुम ज़िद्द करोगे
यह ठीक बात नहीं

जात, बच्चे, पति, पिता
और पता पूछने वाले लोग
अजीब से होते हैं
शहर वालों से डर बहुत लगता है मुझे
कि मेरी यादों में मेरा
शहर वाचाल और हिंसक
बहुत है

मुझे मेरी चीज़ों पर गर्व भी नहीं
वैसा
जैसा तुम कर लेते हो
देश, धर्म, ज़मीन, जाति
और शहर पर अपने

नम्र लोगों के साथ गुज़ार कर
एक गुम-सी मुलाकात
में कितने दौर का सच
जान जाती हूँ

वह कम बोलता है
पर सच बोलता है
वह देखता है खिड़की से बाहर
और कोई एक नज़्म भी बुदबुदाता है कभी-कभी
वह बातों से अपनी
पोंछ देता है हर ऐसी-वैसी छोटी सोच को
वाचाल भी नहीं, न कोई हिंसा
वह आक्रमक भी नहीं है
दुबला-पतला
साधारण-सी कद-काठी
सलीक़े से अलविदा कहता है
मिले वर्षों गुज़र गए
न जात पूछी
न पूछा उसने
कितनी पढ़ी हो?

मेरे ख़्वाब में खुरदरे चेहरे आते हैं
ख़ालिस सच्चाई से रोमांटिक कुछ भी नहीं
यहाँ।

000

जी नहीं रहे हैं जनाब थेथरई कर रहे हैं (रेणु जी की रसप्रिया)

रिमझिम बारिश बारहमासा
धूप में बिरहा, चाँचर, लगनी
झरजामुन की छाया
बाकी सब कोरी माया

जी कहाँ रहे हैं लोग
सब थेथरई कर रहे हैं।

सबकी सुनकर मर जाएगा
आदमी अगर थेथर न हो
तो क्या जी पाएगा?

दसदुआरी के प्रेम में मारी
गई रमपतिया
मनमोहना बेटा
होंठ पर बीड़ी की कालिख और
पेट में तिल्ली !

भूखा मर जाएगा भीख नहीं माँगेगा।
पिता का नाम भी नहीं लेगा
किसी ऐसे वैसे दसदुआरी पगलेट से।

पर मृदंग बजता रहेगा
रमपतिया जागती रहेगी
सिर पर रखा बोझ हिलता-डुलता रहेगा
गिरते-गिरते सँभलेगी
और बैठ जाएगी मेड़ पर धम्म से
दोनों हाथों से पकड़ कर सिर अपना
जेठ के शाम की पुरवाई में
मन का मृदंग फूटता जाएगा

ढाई साल के नंगे बच्चे को बाप कहता
मृदंगिया
अब नहीं कहेगा किसी को भी बेटा
और नहीं गाएगा रसप्रिया

मृदंगिया अब बस निर्गुण गाएगा
पाप का प्रायश्चित
उसकी टेढ़ी उँगली में राग रोप देगी

वह चीख कर कहेगा-
हाय रे रमपतिया
हाय रे मनमोहना
मेरे करेजवा के सब काठ में
तीली लगा जा
और धूधू कर जलने दे
मेरा सब फरेब!

मन निर्गुण, गीत मौन
चील की टिं-टिं
और भीतर का गंभीर आर्तनाद

000

अनामिका अनु
Anamika Villa, House Number 31,Kavu lane,Sreenagar, Vallakadavu, Trivandrum, Kerala, PIN 68900087
मोबाइल- 0807584517
ईमेल- anamikabiology248@gmail.com

कविताएँ

नमिता गुप्ता "मनसी" की कविताएँ

एक लेखक..

लेखक, सुनों..
सिर्फ "लिखने" के लिए ही मत लिखो
जब तक कि तुम्हारा ही अंतस
न झकझोरे तुमको,
मत लिखो कि..
तुम्हें बटोरने हों एवार्ड,
मत लिखो अगर..
फैलानी हों भ्रांतियाँ ही,
मत लिखो कि..
शब्द तुम्हारे न हों भावुक,
मत लिखो..
अगर नहीं हों तर्क तुम्हारे पास,
मत लिखो..
अगर पैसों से तौलोगे लेखन !!

सुनों, एक लेखक कभी पक्षपाती नहीं होता
उसे पारदर्शी होना होता है
ठीक, पानी की तरह !!
000

सब छूटने से पहले..

आज फिर ऐसा लगा..
मानों बहुत कुछ बीतने के बाद भी
"अनबीता" ही रहा कुछ,
क्या बीतने दूँ उसको !!

चिर-परिचित नामों में..
छूट गया कोई

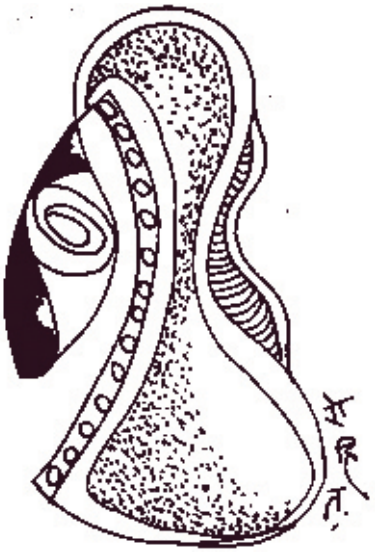

"अपरिचित" सा,
परिचय कर लूँ क्या उस से !!

इतने सारे चेहरे..
इतनी सारी दृष्टि..
दूर तक फैले विस्तार में,
छूट गया कुछ "अनदेखा" ..
देख आऊँ एक बार
सब छूटने से पहले !!
000

वे चिड़ियाँ

प्रतिदिन..
नन्हीं-नन्हीं कुछ चिड़ियाएँ
चुपके से
प्रवेश कर जाती हैं
मेरी कविताओं में !!

शुरूआत में कुछ सहमी सी थीं
कुछ डर भी था,
पर अब इतनी चहकतीं हैं कि
कविताएँ भी हँसती रहती हैं
सारा दिन !!

वे आसमान नापती उड़ती हैं..
बतियाती हैं पेड़ों से,
दिन-भर के सारे किस्से-कहानी
सब सुना देती हैं,
और..
ले आती हैं तिनके
घोंसले के लिए !!
मैं चाहती हूँ
वे आती रहें रोज़ इसी तरह
मेरी कविताओं में,
ताकि, आसमान भी भरा रहे
चहचाहट से उनकी !!
सुनो,
अब "ट्वीटर" की ज़रूरत नहीं है मुझे !!
000

नए इंद्रधनुष..

बीतते-बीतते..
कुछ "रंग" भी बीत रहे हैं
उसकी ज़िंदगी से,
हो रहे हैं फीके
कपड़ों की तरह,
दिन-ब-दिन,
जबकि तेज़ रोशनी सूरज की
हो रही है और भी तीखी !!

वह नहीं करती कोई भी शिकायत
न सूरज से
न इंद्रधनुष से,
छिपा देती सब उदासियाँ
साड़ी की तहों के बीच,
आँसुओं को खिसका देती है
तकिये के नीचे,
वह नहीं उलझना चाहती अब
किन्हीं भी तर्कों में !!

सुनो.. वह खींच रही है "नए इंद्रधनुष"
अपनी कविताओं में,
वो ला रही है वापस सभी रंग
अपनी ही तरह
सिर्फ अपने ही लिए !!
000

नमिता गुप्ता मानसी
द्वारा अरविंद कुमार गुप्ता, मकान नंबर 161, आर्य नगर, सूरज कुंड रोड, मेरठ, उत्तरप्रदेश, 250002
मोबाइल- 8077531992
ईमेल- namitagupta2873@gmail.com

ग़ज़लें

दीपक शर्मा 'दीप' की ग़ज़लें

मुझे बेकार की हुज्जत बताकर छोड़ देता है
मिरा अपना मुझे पागल बनाकर छोड़ देता है
हमारा चाक-कुरता तक नहीं हम दूर कर पाए
कुई कैसे किसी को पास लाकर छोड़ देता है
न जाने लुत्फ़ आता है उसे इस खेल में कैसा
गिराता है, उठाता है, उठाकर छोड़ देता है
ज़रा-सा फ़ासिला उससे रखो तो वो निबाहेगा
वगरना वो बहुत नज़दीक पाकर छोड़ देता है
हमारी भी कमी है जो कुएँ में कूद पड़ते हैं
मगर वो आँख में पट्टी लगाकर छोड़ देता है
यहाँ के शातिरों में ख़ैर अव्वल नाम है उसका
बुलाता है, घुमाता है, घुमाकर छोड़ देता है
फ़लक़पे बैठने वाला कुई बदमाश कम है क्या
हमारी ज़ात मछली है, फँसाकर छोड़ देता है
मिरा उस्ताद जो के है मुझी में, है वही सच्चा
लगाता है हुनर के पर, लगाकर छोड़ देता है
ज़माने को पलटकर के न देखो 'दीप' बढ़ना है
ज़माना है, ज़माना तो बुलाकर छोड़ देता है

ooo

क्या ग़ज़ब तौर की मुहब्बत है
ख़ूँ-सने कौर की मुहब्बत है
एक घंटे में इश्क़ो-वस्लो-हिज्र?
जी.!नए दौर की मुहब्बत है
क्यों मुझे कस रही है गलबहियाँ
तू किसी और की मुहब्बत है
जिसका धंधा है बस उदासी का
वो किसी ठौर की मुहब्बत है?
जिस्म उरियाँ है और दिल उधड़ा?
आह..बिजनौर की मुहब्बत है
दिल के कश्मीर की ये हालत,उफ़
किसके लाहौर की मुहब्बत है

ooo

दिल्लगी से नहीं बनी अपनी
आशिक़ी से नहीं बनी अपनी
ज़िंदगी में नहीं थे तुम तो कभी
ज़िंदगी से नहीं बनी अपनी
हम ग़मों से भी लड़ के बैठ गए
पर ख़ुशी से नहीं बनी अपनी
दिल-लगी? हाए दिल-लगी ऐ दिल!
दिल-लगी से नहीं बनी अपनी
कैसे-कैसों से बन गई या रब!
मौलवी से नहीं बनी अपनी
कल ही शादी थी उसकी वो बद-ज़ात
प्रेयसी से नहीं बनी 'अपनी'
हम बने थे फ़क़त उसी के लिए
इस बनी से नहीं बनी अपनी
जिस सदी में न मय न मैख़ाना
उस सदी से नहीं बनी अपनी
हम ख़ुदा से बना के बैठ गए
यों ख़ुदी से नहीं बनी अपनी
चाँद से, चाँदनी से, सूरज से
इन सभी से नहीं बनी अपनी
शाइरी से बनी बहुत थोड़ा
और किसी से नहीं बनी अपनी

ooo

फिर, नहीं मानते मुहब्बत से!
मानिएगा मुहब्बत ही कर के?
आप इतनी भी कोई ख़ास नहीं
ख़ास जितनी बताते थे लड़के
दिल के रेशों को मू-क़लम कर के
रंग डाले हैं फिर ख़ुतूत उसके
ज़िंदगी, इक दफ़ा तो मिलती जा
मुंतज़र! मुंतज़िर हैं ख़ल्कों से
इश्क़ तो मरने का शाफ़ ठहरा?
शब तो होने दे ढाई बजने दे
मौत वालों को क्या सहूलत? हट..
ज़िंदगी वाले मर भी सकते थे
चाँद शफ़्फ़ाफ़ था बिला-शक था
दाग़ आँखों में थे, दिखे उसपे
ट्रेन चँदिया से चल पड़ी थी और
हम जबलपुर में थे बड़े ख़ुश थे
कोई बोला मज़ाक में 'उल्फ़त'
और हम बे-तरह चिहुक उठ्ठे

ooo

बिस्मिल्लाह खान साहिब-सा पर निकले
उड़ने को शहनाई मिले, फिर सर निकले
अशफ़ाक़उल्लाह खां-सा इक दिलबर निकले
हुस्ने-क़ज़ा जो सझम गए, बेहतर निकले
असदउल्लाह खां 'ग़ालिब' जिनका तख़ल्लुस था
आम के आशिक साहब! वो शाइर निकले
'मंटो' लफ़्ज़ वो जिससे शराफ़त काँपती है
इक अफ़साना-निगार जो जादू-गर निकले
साहिर, दाग़, मजाज़, जिगर, मोमिन और मीर
इस मिट्टी से क्या-क्या उफ़...गौहर निकले
ख़्वाब आया शब ख़्वाब में आए हज़रत 'जौन'
शे'र लड़े, सिगरिट न बुझी, साग़र निकले
इस्मत-चुगताई का निकला ज़िक्र और फिर
'आपा' कहकर बस आँसू झर-झर निकले
'सर सैयद अहमद खां' की ये ख़्वाहिश थी
सर सैयद अहमद खां कल घर-घर निकले
जितना तुम्हें समझा था दीपक शर्मा 'दीप'
तुम कम्बख़्त नहीं, तुम तो दिलबर निकले

ooo

यहाँ की लड़ाई, वहाँ की लड़ाई
कहाँ आ गई है कहाँ की लड़ाई
गिरा दो, दबा दो, कुचल दो, मिटा दो
यही है न अहले-जहाँ की लड़ाई?
ख़ुदा-भोलेशंकर की बाते हैं केवल
जो है मुद्दआ वो 'गुमाँ की लड़ाई'
निकालेंगे अब लोग बरछे-ओ-भाले
शुरू हो चुकी है ज़ुबां की लड़ाई
तो मैंने मुझी को ही काटा पकड़ के?
अरे वाह रे पासबां की लड़ाई
निगल जाएगी ख़ुद ये नामू-निशां जो
छिड़ी है ये नामू-निशां की लड़ाई
अदू चह-चहा है तजरबे पे ख़ुद के
ठहर! ये नहीं नौ-जवां की लड़ाई

ooo

दीपक शर्मा 'दीप'
३४३ पेप्टिक सिटी कॉलोनी
सतना- ४८५४४१
मध्य प्रदेश
मोबाइल- 6265806404
ईमेल- deepaksharma434@gmail.com

पुस्तक मेले का ज़िक्र किया तूने हमनशीं, इक तीर मेरे सीने में मारा के हाये हाये

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

पुस्तक मेले का ज़िक्र किया तूने हमनशीं, इक तीर मेरे सीने में मारा के हाये हाये

(वज़न ठीक करने के लिए मिसरा ऊला से शब्द 'जो' को हटा दिया है, ग़ालिब चचा से क्षमा के साथ)

कोरोना ने यूँ तो बहुत कुछ किया है लेकिन पुस्तक प्रेमी पाठकों तथा विमोचन प्रेमी साहित्यकारों के लिए सबसे बड़ा नुकसान जनवरी का पहला सप्ताह लगते ही सामने आ गया है। उफ़्फ़... इस बार प्रगति मैदान पर नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला नहीं लग पा रहा है। पुस्तक प्रेमी पाठक इसी मेले से तो साल भर पढ़ने के लिए पुस्तकें ख़रीदते थे। और साहित्यकार इसी मेले से तो साल भर के लिए विमोचन ऊर्जा प्राप्त करते थे। पहले बात पाठकों की। बहुत अच्छा लगता था किसी पाठक को किसी एक किताब की खोज में स्टॉल दर स्टॉल भटकते हुए देख कर। ऐसा लगता था कि सच में जब तक यह पाठक बचा हुआ है, तब तक हमारी यह किताबों की दुनिया भी बची हुई है। कई पाठक तो बाक़ायदा हाथ में एक लिस्ट लिए घूमते नज़र आते थे। हर स्टॉल पर जाकर पूछते थे कि इसमें से आपके यहाँ कोई किताब मिल जाएगी क्या, और यदि एक भी किताब मिल जाती थी, तो ऐसे प्रसन्न हो जाते थे, जैसे कोई बड़ा ख़ज़ाना मिल गया हो। बड़े से ट्रॉली बैग को लुढ़काते हुए इस प्रकार के दीवाने पाठक पुस्तक मेले में आसानी से देखे जा सकते थे। इस ट्रॉली बैग में भरी होती थीं किताबें, वह किताबें जो भटक-भटक कर तलाशी गईं। इस बीच यदि कोई लेखक मिल गया, जिसकी किताब उस बैग में रखी है, तो मनुहार कर लेखक को रोकना, बैग से किताब निकालकर लेखक से हस्ताक्षर करवाना और फिर मोबाइल का कैमरा ऊपर कर लेखक के साथ सैल्फ़ी लेना। उस दौरान हिन्दी का लेखक भी अपने आप को सेलिब्रिटी महसूस करने लगता था। नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में जाकर इस बात का एहसास होता था कि न संपादकों, न प्रकाशकों, न समीक्षकों, न आलोचकों, न प्राध्यापकों; इनमें से किसी के कारण भी किताबों की यह दुनिया बची हुई नहीं है, हालाँकि इन सब को यही भ्रम है कि किताबों की दुनिया इनके कारण ही बची हुई है। असल में तो किताबों की दुनिया इसी दीवाने पाठक के कारण बची हुई है, जिस दिन यह नहीं होगा उस दिन ये सारे संपादक, प्रकाशक, समीक्षक, आलोचक और प्राध्यापक मिल कर भी कुछ नहीं बचा पाएँगे।

आइए अब बात करते हैं उस दूसरी प्रजाति की जो पुस्तक मेले में इसी प्रकार भटकते हुए मिल जाती थी। यह दूसरी प्रजाति उन साहित्यकारों की थी, जो विमोचन वीर कहलाते थे। अब इन विमोचन वीरों में भी दो किस्में थीं। एक तो वह जो अपनी किताब (या शायद किताबों) के विमोचन के लिए व्यग्र से पुस्तक मेले में इधर से इधर घूमते दिखाई देते थे, किसी सुयोग्य कर कमल की तलाश में। दूसरे वह जो अपने कर कमल लिए अल सुबह से पुस्तक मेले के हॉल में प्रवेश कर लेते थे और इधर से उधर यूँ ही घूमते रहते थे कि कहीं कोई रोक कर इन के कर कमलों का उपयोग कर ले। ये इस प्रकार घूमते थे, जैसे सारे माहौल से निस्पृह होकर घूम रहे हैं। लेकिन इनके कान व्यग्र रहते थे कि कहीं किसी स्टॉल से आवाज़ आए "आदरणीय आइए, पुस्तक विमोचित कर दीजिए।" जहाँ ये आवाज़ आई नहीं कि इनका उस दिन का पुस्तक मेले का भ्रमण सार्थक हो जाता था। यह इधर से उधर, उधर से इधर इसी प्रकार घूमते हुए किताबों के घूँघट उतारते रहते थे। शाम तक इनको भी याद नहीं रहता था कि आज दिन भर में इन्होंने किस-किस के और कितने घूँघट कुल उतारे हैं। हाँ इनके हाथ में जो थैला रहता था, उसमें रखी हुई किताबों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता था कि आज इनका दिन कैसा गुज़रा है। ख़ैर इस साल तो पुस्तक मेले की बस यादें ही हैं और उन यादों के कारण ही मैंने ग़ालिब चचा का शेर क्षमा के साथ शीर्षक में लगाया। याद तो आपको भी आ ही रही होगी..। **सादर आपका ही**

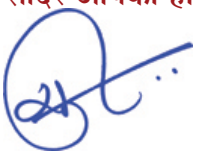

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

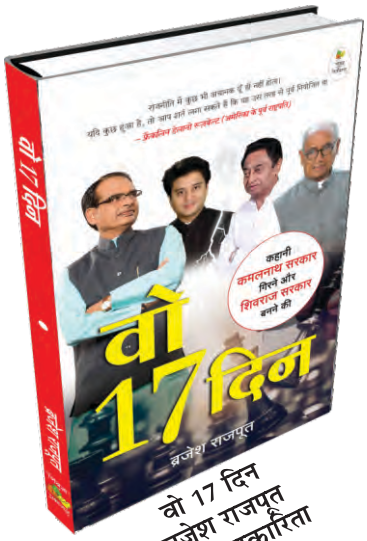

वो 17 दिन
ब्रजेश राजपूत
चुनाव पत्रकारिता

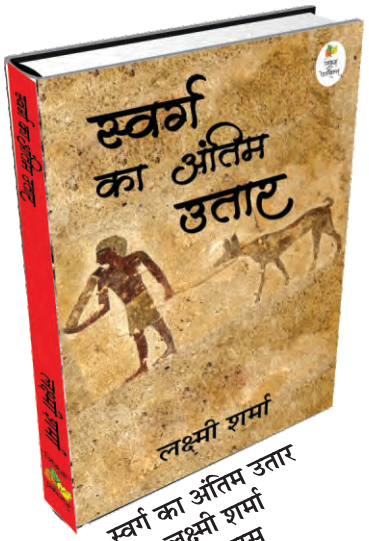

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

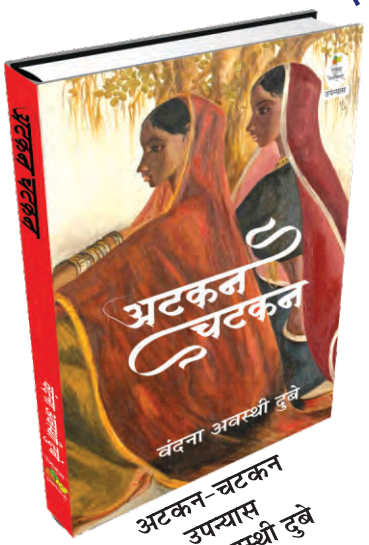

अटकन-चटकन
उपन्यास
वंदना अवस्थी दुबे

अल्पघात
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

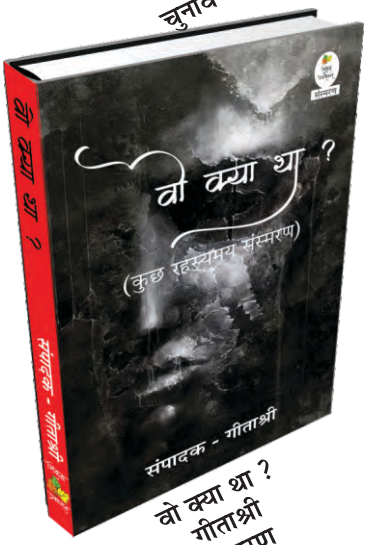

वो क्या था ?
गीताश्री
संस्मरण

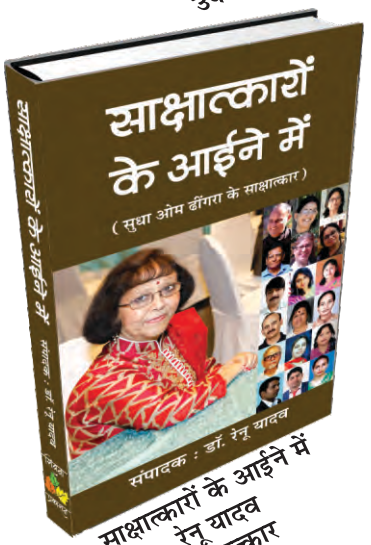

साक्षात्कारों के आईने में
रेनू यादव
साक्षात्कार

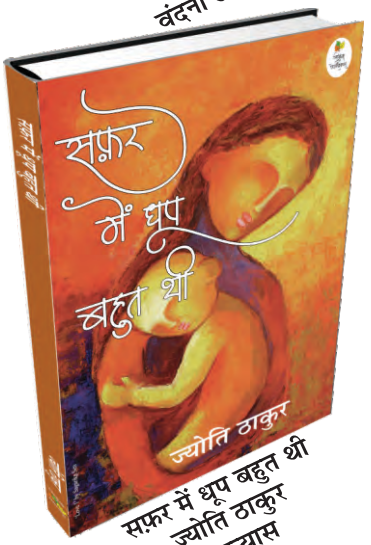

सफ़र में धूप बहुत थी
ज्योति ठाकुर
उपन्यास

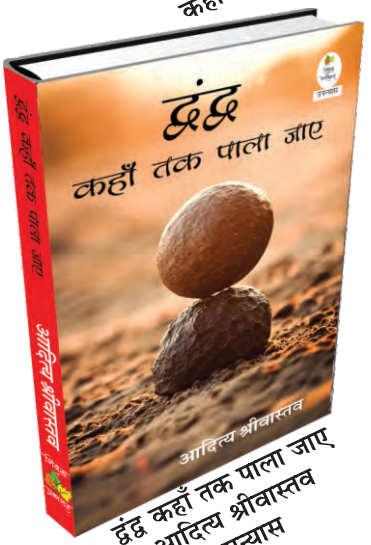

द्वंद्व कहाँ तक पाला जाए
आदित्य श्रीवास्तव
उपन्यास

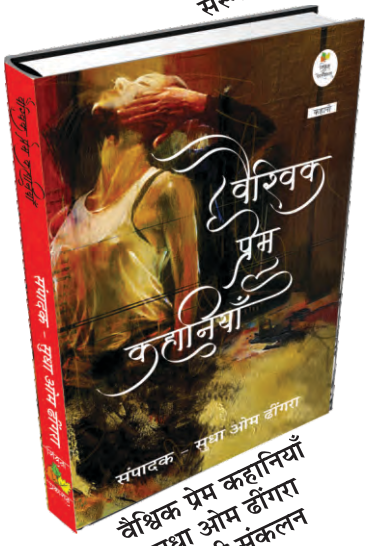

वैश्विक प्रेम कहानियाँ
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संकलन

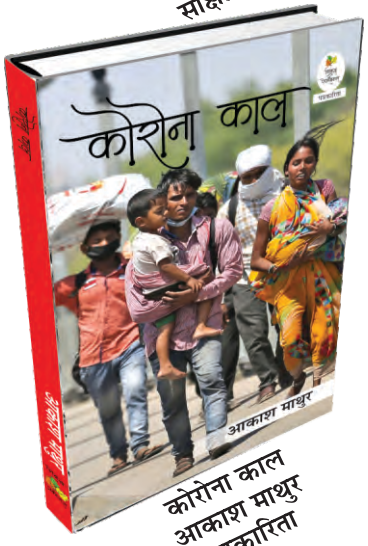

कोरोना काल
आकाश माथुर
पत्रकारिता

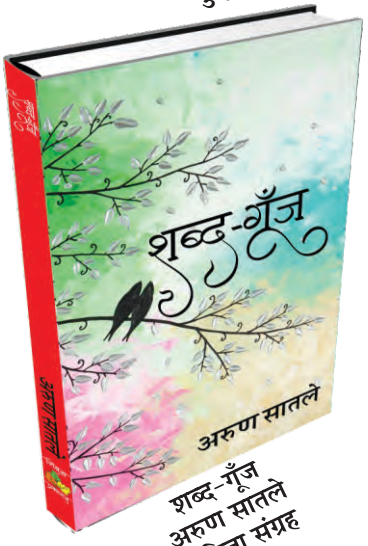

शब्द-गूँज
अरुण सातले
कविता संग्रह

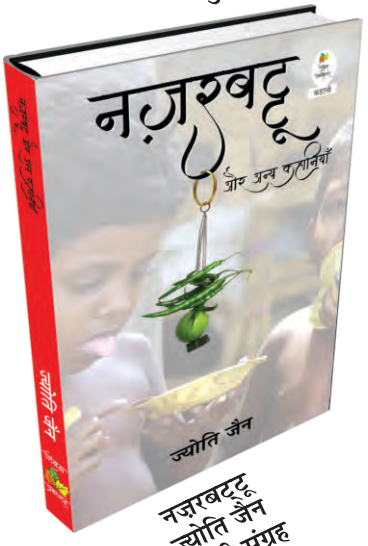

नज़रबट्टू
ज्योति जैन
कहानी संग्रह

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● January-March 2021 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

कम्प्यूटर सीखने से बढ़ जाते हैं नौकरी के अ
छात्राएं अपना 100 प्रतिशत दें: अखिलेश रा

निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र

कोरोना महामारी के कारण दो माह देर से प्रारंभ हुआ सत्र
को निशुल्क दिया जाएगा कंप्यूटर का प्रशिक्ष

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2020-21 का शुभारंभ वरिष्ठ समाजसेवी श्री अखिलेश राय, महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित द्वारा किया गया, इस अवसर पर अतिथियों ने बालिकाओं को संबोधित भी किया।

भोपाल डिविज़न की अजाक पुलिस अधीक्षक मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सुश्री ज्योति ठाकुर ने सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।